

# मृत्यु से मुलाकात श्री चन्द्रप्रभ





सौजन्य संविभाग  
स्व. श्री मोतीसिंहजी-सज्जनदेवी सुराणा  
की स्मृति में  
सरेन्द्रसिंह-लीलादेवी, अमित, सुमित सुराणा  
कांची रिसोर्ट, भीलवाड़ा



# मृत्यु से मुलाकात

कठोपनिषद् पर अमृत प्रवचन

श्री चन्द्रप्रभ



पुस्तक महल



प्रकाशक

पुस्तक महल

J-3/16, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

☎ 23276539, 23272783, 23272784 • फ़ैक्स: 011-23260518

E-mail: info@pustakmahal.com • Website: www.pustakmahal.com

विक्रय केन्द्र

• 10-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

☎ 23268292, 23268293, 23279900 • फ़ैक्स: 011-23280567

E-mail: rapidexdelhi@indiatimes.com

• हिन्द पुस्तक भवन

6686, खारी बावली, दिल्ली-110006

☎ 23944314, 23911979

शाखाएं

बंगलुरु: ☎ 080-2234025 • टेलीफ़ैक्स: 080-22240209

E-mail: pustak@sancharnet.in • pustak@airtelmail.in

मुंबई: ☎ 022-22010941, 022-22053387

E-mail: rapidex@bom5.vsnl.net.in

पटना: ☎ 0612-3294193 • टेलीफ़ैक्स: 0612-2302719

E-mail: rapidexptn@rediffmail.com

हैदराबाद: टेलीफ़ैक्स: 040-24737290

E-mail: pustakmahalhyd@yahoo.co.in

© पुस्तक महल, नई दिल्ली

ISBN 978-81-223-1227-0

संस्करण: 2011

---

भारतीय कॉपीराइट एक्ट के अंतर्गत इस पुस्तक के तथा इसमें समाहित सारी सामग्री (रेखा व छायाचित्रों सहित) के सर्वाधिकार “पुस्तक महल” के पास सुरक्षित हैं। इसलिए कोई भी सज्जन इस पुस्तक का नाम, टाइटल डिजाइन, अंदर का मैटर व चित्र आदि आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़ कर एवं किसी भी भाषा में छापने व प्रकाशित करने का साहस न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर वे हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार होंगे।

---

मुद्रक: परम ऑफसेटर्स, ओखला, नई दिल्ली - 110020

?



## आओ, करें मुलाकात

मृत्यु संसार का सबसे रहस्यमयी सत्य है। दुनिया में कोई भी व्यक्ति मरना नहीं चाहता। इसके बावजूद हर किसी व्यक्ति को मृत्यु का सामना करना पड़ता है। मृत्यु का नाम सुनते ही हर व्यक्ति हिल जाता है, लेकिन जितना हम मृत्यु से भयभीत होते हैं, मृत्यु उतनी डरावनी नहीं है। मृत्यु तो एक तरह से जीवन का उपसंहार है। हम जैसा जीवन जीएंगे, हमारी मृत्यु उसकी की परिणति कहलाएगी। मृत्यु हमें केवल परिणाम देती है। जिसका वर्तमान जीवन स्वर्ग होता है, उसके लिए मृत्यु के बाद भी स्वर्ग की गति होती है। जिसका वर्तमान जीवन ही तनाव, चिंता और कुंठाओं के चलते नरक बना हुआ है, उसके लिए मृत्यु के बाद भी वही नरक की दुर्गति होती है। प्रस्तुत ग्रंथ हमें मृत्यु से मुलाकात करवाता है, ताकि हम जीवन को अधिक से अधिक सार्थक तरीके से जी सकें।

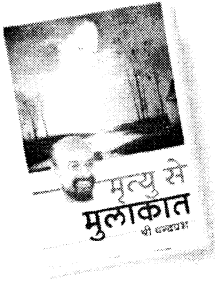
महान जीवन-दृष्टा पूज्य श्री चन्द्रप्रभ जीवन के वह सूत्रधार हैं, जिन्होंने जीवन के हर पहलू को अपनी आध्यात्मिक दृष्टि से देखा है। यह कोई कम महत्वपूर्ण बात नहीं है कि जीवन को प्रकाश से सराबोर करने वाले एक गुरु द्वारा मृत्यु जैसे रहस्यमयी तत्वों को प्रकाशित करना। उन्होंने मृत्यु को बिलकुल एक नए तरीके से देखा है। उन्होंने

कठोपनिषद् को माध्यम बनाकर हम सब लोगों का मृत्यु के साथ संवाद करवाया है। महान आत्म-जिज्ञासु नचिकेता अपने पिता द्वारा अभिशापग्रस्त होकर मृत्यु के पास चला जाता है, लेकिन अपनी तपस्या, निष्ठा और समर्पण के चलते न केवल मृत्यु के द्वार से वापस लौट आता है, बल्कि मृत्यु से ऐसे प्रश्नों का समाधान पाने में सफल होता है जो आमतौर पर सामान्य मनुष्य के द्वारा अनुत्तरित रहते हैं। मृत्यु के साथ होने वाले ये संवाद बड़े दिलचस्प हैं। श्री चन्द्रप्रभ जैसे चिंतक एवं दार्शनिक व्यक्तित्व के द्वारा कठोपनिषद् पर बोलना अपने-आप में किसी चमत्कार से कम नहीं है।

कठोपनिषद् नाम सुनने मात्र से लगता है कि यह कोई कठिन शास्त्र होगा, लेकिन कठिन से कठिन बात को जितनी सहजता और सरलता के साथ श्री चन्द्रप्रभ ने व्यक्त किया है, उससे उपनिषदों का गहन-गूढ़ ज्ञान भी आज के आम इंसान के लिए सहज हृदयंगम करने जैसा हो गया है। आप इसे पढ़ेंगे तब चमत्कृत हो उठेंगे। मृत्यु के बारे में आप निर्भय चेतना के मालिक बनेंगे। आपके लिए मृत्यु तब कोई काले भैंसे पर चढ़कर आने वाली काली छाया नहीं होगी, वरन् जीवन की यात्रा को पूर्णता देने वाली उपकारी कलयाण-मित्र बन जाएगी। मृत्यु को तब हम कोई संकट नहीं समझेंगे, बल्कि मृत्यु हमारे लिए जीवन का महोत्सव बन जाएगी।

ग्रंथ का हर पन्ना, हर बात इतनी सीधी सरल है कि मानो हम किसी मानसरोवर में उतरकर नौका-विहार कर रहे हैं। ग्रंथ का हर संवाद आपको आध्यात्मिक आनन्द प्रदान करेगा। आपको जीवन जीने की नई दृष्टि उपलब्ध होगी। ग्रंथ पढ़ने के बाद आपको लगेगा कि आप एक बोझ से मुक्त हो चुके हैं। आपमें एक नई ताज़गी, नई चेतना का संचार हुआ है।

—प्रकाश दप्तरी



# आप जानेंगे अंदर

1. कठोपनिषद् : मुमुक्षुओं के लिए अमृत	9
2. धर्म के महत्वपूर्ण चरण: यज्ञ और दान	24
3. धर्म चाहता है कुर्बानी	37
4. मृत्यु से मुलाकात	46
5. आतित्थ-सत्कार का आनन्द	54
6. आतित्थ-सत्कार का तरीका	66
7. स्वर्ग का राज	74
8. मरना मना है	85
9. मृत्यु या मुक्ति	99
10. यमराज के प्रलोभन	109
11. आत्मा में खिलाएँ अनासक्ति के फूल	120
12. विवेक ही सच्चा गुरु	129
13. जिज्ञासा: आत्मबोध का पहला कदम	142
14. अपने-आप से पूछिए: मैं कौन हूँ?	152
15. आत्म-ज्ञान के पाँच चरण	160
16. कैसे पाएँ तत्व-ज्ञान	171
17. शांति, समृद्धि के लिए ॐ ही क्यों?	181
18. आत्म-दर्शन का सरल तरीका	190
19. आत्म-साक्षात्कार के लिए क्या करें?	201
20. मन के सूक्ष्म रहस्य	210
21. कठोपनिषद् का सार-संक्षेप	221







# 1

## कठोपनिषद् : मुमुक्षुओं के लिए अमृत

आज से हम एक ऐसे उत्तुंग शिखर की ओर अपने कदम बढ़ा रहे हैं जिसकी उजास और ऊँचाई उन लोगों के लिए बेहद उपयोगी है, जिनमें ऊँचाइयों को छूने का जज़्बा है। दुनिया में शिखर तो कई हैं लेकिन ऐसे शिखर कम ही हैं, जहाँ से इंसानियत को आध्यात्मिक ऊँचाई देने का पैगाम मिलता हो। यदि हम एवरेस्ट की बात करें, तो वह सिर्फ़ ज़मीनी ऊँचाई की बात होगी, लेकिन हम जिस शिखर की बात कर रहे हैं, वह मनुष्य के ज्ञान का शिखर है, इंसान के अध्यात्म का, आध्यात्मिक ऊँचाई का शिखर है।

दुनिया में दो तरह का ज्ञान होता है - एक तो सांसारिक ज्ञान और दूसरा आध्यात्मिक ज्ञान। सांसारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए व्यक्ति एम.ए., एम.फिल. या एम.बी.ए. के रास्ते पर चलता है, लेकिन अध्यात्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें किसी आध्यात्मिक गुरु के सान्निध्य में चलना होता है; ऐसे गुरु के सान्निध्य में, जिन्होंने निरंतर चिंतन और साधना करते हुए अपने भीतर के प्रकाश को उपलब्ध किया है। जो मिट्टी के दीये नहीं रहे, बल्कि स्वयं ज्योति-स्वरूप हो गए। प्रकाश की धन्यता इसी में है कि वह केवल स्वांतः सुखाय ही प्रकाशित न हो, बल्कि जो भी उसके सान्निध्य में आए, वह भी प्रकाशित हो जाए।

हमें ऐसे लोगों के साथ रहना चाहिए जिनका दीप जला हुआ है। गुरु उसे ही कहते हैं, जिनके संस्पर्श से, जिनके सत्संग से, जिनके पास बैठने मात्र से हमारे भीतर आध्यात्मिक शांति और आध्यात्मिक हिलोर जागने लगती है। जीवन में गुरु का संयोग मिलना, एक अद्भुत क्रांति की बात है। जन्म-जन्मांतर के पुण्य जगते हैं, तो ही सद्गुरु का योग बन पाता है। यूँ कहने में तो हर कोई अपने आपको गुरु

कह लेता है, लेकिन वो गुरु जो हमें बदल डाले, हमारी चेतना में अपनी आध्यात्मिक शांति और आध्यात्मिक ज्ञान का प्रकाश प्रकट कर दे, ऐसे गुरु तो भाग्यवान को ही मिलते हैं। ऐसे गुरु की लख-लख बलिहारी।

आज से हम एक ऐसे मार्ग पर अपने कदम बढ़ा रहे हैं, जो केवल किसी ज्ञान की ज़मीन पर चहलकदमी नहीं होगी, वरन् चार कदम सूरज की ओर बढ़ना कहलाएगा। हम ज्ञान के प्रकाश की तरफ तो बढ़ रहे हैं, पर यह ज्ञान कोई किताबी ज्ञान नहीं है। यह ज्ञान आत्मज्ञान है। ऊपर-ऊपर चलेंगे, तो किनारों पर सागर की ठंडी हवाएँ भर मिलेंगी। इस दिव्य ज्ञान के भीतर उतरेंगे, तो इसके मोती हमें चमत्कृत कर डालेंगे। हम एक अद्भुत उजास से, एक अद्भुत मिठास से, एक अद्भुत लालित्य से भर उठेंगे। मैंने इस रस का खूब पान किया है, तर-ब-तर हुआ हूँ। मुझे इतना आनन्द मिला है कि मैं आनन्दित नहीं हुआ, खुद ही आनन्द हो गया हूँ।

अध्यात्म के इस दिव्य मार्ग पर हम लोगों को ज्ञान का जो दीप उपलब्ध है, जिसके सहारे हम जीवन के सत्य की तलाश करेंगे, वह उपनिषद् है। उपनिषद् यानी वेदों का विस्तार। वेद यानी दिव्य अनुभूतियों का कोष। अनुभूति यानी आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान; अनुभूति यानी सत्य का ज्ञान। 'उपनिषद्' शब्द का अर्थ है: अपने पास बैठना। तीन शब्द धार्मिक परंपरा में उपयोग में लाए जाते हैं। पहला, उपनिषद्। दूसरा है उपवास और तीसरा है उपासना। तीनों शब्द यूँ तो अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं, लेकिन बुनियादी तौर पर तीनों का एक ही अर्थ है। उपनिषद् का अर्थ होता है, खुद के पास बैठना। उपवास का अर्थ होता है, अपने में स्थित होना और उपासना का अर्थ होता है अपने में दिव्यता का आनन्द लेना।

उपनिषद्, उपवास और उपासना - तीनों एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। एक-दूसरे के पूरक हैं। भारतीय संस्कृति जिस ज्ञान-परंपरा को अपने साथ लिए हुए है, उसका बड़ा हिस्सा उपनिषदों में छिपा है। भारत के संपूर्ण आध्यात्मिक शास्त्रों को अगर किसी एक शास्त्र में देखा जा सकता है तो वह उपनिषद् है। कोई यह न समझे कि उपनिषद् किसी एक धर्म, पंथ या परंपरा के हैं। ज्ञान तो प्राणी मात्र के लिए होता है। जैसे सूरज किसी एक समाज, एक जाति के लिए नहीं होता, वैसे ही दुनिया का कोई भी शास्त्र या उपनिषद् किसी एक धर्म-परंपरा के लिए नहीं हुआ करता। जो भी आँख खोलेगा, सूरज उसको रोशनी देगा। आग सबकी रोटी पकाती है, जो भी पकाना चाहे। बादल सबकी प्यास बुझाते हैं। जो अपनी प्यास बुझाना चाहता है, उसे प्रयास करना पड़ेगा।

मैं उपनिषदों का सम्मान करता हूँ, आगमों और पिटकों का पारायण करता हूँ। ये उपनिषद्, आगम या पिटक हमारे लिए ज्ञान-पुंज की तरह हैं। यदि परम्परा का प्रकाश पाना है, तो अपनी परंपरा के शास्त्र ही पढ़ो, पर अगर ज्ञान का प्रकाश पाना है, तो अपने भीतर की खिड़की खोल डालो। आखिर पैराशूट पूरा खुलने पर ही हमारी हिफाजत करता है। हमेशा याद रखो, किसी भी शास्त्र में कोई भेद नहीं है। महावीर ने एक बहुत दिव्य सिद्धांत दिया, जिसका नाम है अनेकांत। अनेकांत का मतलब है, दुराग्रह-मुक्त सत्य का दर्शन। अनेकांत यानी तुममें भी सच्चाई और जिन्हें तुम पराया कहते हो, उनमें भी सच्चाई। अनेकांत यानी दूसरों की सच्चाई का विनम्रतापूर्वक किया जाने वाला सम्मान।

महावीर दुनिया में इसीलिए महान हैं कि उन्होंने अपने सत्य का दुराग्रह नहीं किया, वरन् उन्हें जहाँ, जिनमें भी सच्चाई की रोशनी मिली, उन्होंने उन सबको स्वीकार किया। शायद यह जो विशेषता महावीर में थी, मुझमें भी साकार हो गई। यही वजह है कि मुझे कोई शास्त्र गैर नहीं लगता। दुनिया की हल्की-से-हल्की किताब में भी कोई-न-कोई अच्छाई तो अवश्य होती ही है। आप आलोचना की दृष्टि को हटा दो और एक गुणानुरागी बनकर किसी जिज्ञासु की तरह इनके सामने पेश आओ। याद रखो, यदि हमारे भीतर कोई प्यास है, तो गाँव का कुआँ भी हमें गंगा-स्नान का आनंद दे देगा।

जब-जब भी व्यक्ति में अध्यात्म की अभीप्सा जगी है, तब-तब इन शास्त्रों ने उसकी अभीप्सा शांत करने में मदद की है। भविष्य में भी करते रहेंगे। उपनिषद् भारत की नींव हैं। आत्म-ज्ञान और ब्रह्म-विद्या जानने के लिए हमें उपनिषदों की शरण में आना होगा। जिन उपनिषदों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए पहले लोग गुरुकुलों में जाकर अध्ययन किया करते थे, अब वे उपनिषद् हमें सहज रूप में ही उपलब्ध हो रहे हैं।

जरा विचार कीजिए कि किसी रोशनी को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को जहाँ हिमालय की हजारों किलोमीटर की यात्रा करनी पड़े, यदि वही रोशनी इंसान के घर की दहलीज पर लाकर रख दी जाए तो हम उसे क्या कहेंगे? यह हमारा सौभाग्य ही है कि हमारी देहरी पर ज्ञान का दीपक, ज्ञान का सूरज उतर आया है। लोगों को गंगाजी में स्नान करने के लिए लंबी दूरी तय करनी पड़ती है। यदि वही गंगा हमारे घर-आँगन में पहुँच जाए, तो हम यही कहेंगे कि हे प्रभु, तुम्हारी महती कृपा हुई। जिसे पाने के लिए हमारे बुजुर्गों ने भगीरथ प्रयास किए थे, वह अनायास हमारे द्वार तक आ पहुँची है।

उपनिषद् हमारे लिए अध्यात्म की ऐसी ही गंगा है। ऋषि-मुनियों का समग्र चिंतन उपनिषदों के रूप में हमें उपलब्ध है।

उपनिषदों का ज्ञान सागर की भाँति विशाल है। जैसे पृथ्वी विशाल है, वैसे ही उपनिषद् भी विशाल हैं। हम उन उपनिषदों में से एक खास उपनिषद् का चयन अपने लिए कर रहे हैं। इसका नाम है : कठोपनिषद्। यह एक दिव्य शास्त्र है। बड़ी गहराई है इसमें। बड़े रहस्य छिपे हैं इसमें। यह सागर की तरह गहरा है और हिमालय की तरह ऊँचा। अध्यात्म की बड़ी बारीकियाँ हैं इसमें। आपको खूब मजा आएगा इसमें। ऐसा लगेगा कि मानो हम किसी शास्त्र से रू-ब-रू नहीं हो रहे हैं, बल्कि अपने-आप से मुलाकात कर रहे हैं।

वैसे भी जीवन की पूरी मुलाकात केवल जीवन के तल पर नहीं होती, पूरी मुलाकात के लिए हमें मृत्यु से भी मुलाकात करनी होगी, क्योंकि मृत्यु जीवन का उपसंहार है। लोग मृत्यु का नाम सुनते ही घबराते हैं। कठोपनिषद् तो मृत्यु से मुलाकात ही है। मृत्यु से अगर एक बार सही तौर पर मुलाकात हो जाए, तो शेष बचे जीवन को जीने का मजा ही कुछ और होगा। तब हम मृण्मय को नहीं, चिन्मय को जिएँगे। मिट्टी को नहीं, फूलों को और फूलों की सुवास को जिएँगे।

दुनिया में कुछ शास्त्र ऐसे भी होते हैं जिनका चिंतन सार्वजनिक स्थलों पर बैठकर किया जाता है। कुछ शास्त्र, ग्रंथ ऐसे होते हैं जिन पर चिंतन-मनन गिने-चुने लोगों के बीच बैठकर हो सकता है। ऐसे उपनिषदों पर चिंतन-मनन, उनकी व्याख्या करने के लिए पात्रता चाहिए। कठोपनिषद् भी ऐसा ही उपनिषद् है। यह सुनने का नहीं, आँखें मूँदकर पीने का शास्त्र है। इस पर चिंतन केवल आपकी भलाई के लिए नहीं कर रहा हूँ, आपके साथ मैं भी इसका आनंद लूँगा। इसे आकंठ पीऊँगा। और तब जो घुँघरू बजेंगे, उनकी खनक धरती पर फिर से किसी मीरा को बुलाएगी, किसी सूर का इकतारा बजाएगी, किसी कबीर से रसभीनी चदरिया बुनवाएगी, किसी तुलसी से चित्रकूट के घाट पर चंदन घिसवाएगी। तब दुनिया खुद ही गा उठेगी - पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे... !

बस, पात्रता चाहिए। बगैर पात्रता किसी के हाथ अमृत भी आ जाए, तो कारगर न होगा। दानवों के हाथ अमृत आ जाएगा तो वे अमर तो हो जाएँगे, लेकिन उनकी अमरता दुनिया के लिए परेशानी का सबब बन जाएगी। राम अगर अमृत पीते हैं, तो दुनिया का कल्याण होगा। रावण अमृत पी जाएगा, तो उसका अहंकार और घमंड और परवान चढ़ जाएगा। वह फिर से किसी सती के अपहरण का दुस्साहस कर बैठेगा।

आजकल परंपरा चल पड़ी है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने-आप को धर्म का अनुयायी कहता फिरता है, जबकि धर्म के लिए भी पात्रता चाहिए। हर कोई मंदिर चला जाए, इतने मात्र से काम नहीं चलने वाला। मंदिर जाने की भी पात्रता चाहिए। ज़रा सोचें, किसी व्यक्ति को अध्यात्म का पथ मिला हुआ है, उस व्यक्ति के साथ सांसारिक ज्ञान की चर्चा की जाए तो उसको कैसा लगेगा? उसे तो बोरियत ही होगी। ठीक वैसे ही जैसे कोई सांसारिक रंग में रंगा हो और उसके सामने आत्म-ज्ञान और अध्यात्म-ज्ञान की बात की जाए, तो उसे झपकियाँ ही आएँगी।

उपनिषदों के श्रवण के लिए अंतर-हृदय में गहरी प्यास चाहिए, गहरी मुमुक्षा चाहिए; तभी उपनिषद् का श्रवण और सत्संग सार्थक हो सकता है। दुनिया में दो तरह के रास्ते हैं, एक सफलता का और दूसरा सार्थकता का। सफलता का रास्ता सांसारिक ज्ञान का परिणाम है। सार्थकता का रास्ता आध्यात्मिक ज्ञान का परिणाम है। सांसारिक जीवन जीने वाले के लिए आशीर्वाद - 'ईश्वर तुम्हें सफल करे।' जबकि अध्यात्म के रास्ते पर चलने वाले के लिए आशीर्वाद होगा - 'ईश्वर तुम्हें सार्थकता प्रदान करे।' सफलता दुनिया से जुड़ी हुई है और सार्थकता जीवन की धन्यता से जुड़ा हुआ पहलू है।

कठोपनिषद् को भी पढ़ने और सुनने के लिए पात्रता चाहिए। 'कठोपनिषद्' शब्द ही बता रहा है कि जो उपनिषद् कठिन है, उसका नाम है कठोपनिषद्। जो काठ की तरह कठोर होता है, ऐसा उपनिषद् है कठोपनिषद्। यह कोई ऐसा बहता हुआ पानी नहीं है कि गए और डुबकी लगा ली। यह तो गंगासागर से गंगोत्री की तरफ चलना है। बाहर से भीतर की ओर लौटना है। कठोपनिषद्, यानी अंतर-यात्रा। बहिर्यात्रा आसान है, लेकिन भीतर चलना साधना है।

कठोपनिषद् के रास्ते पर चलने के लिए गुरु और शिष्य दोनों को तैयार होना होता है। शिष्य की अंतर-यात्रा में मदद करना ही गुरु का उद्देश्य है। इसके लिए गुरु को भी स्वयं को ब्रह्म-विद्या से जोड़ना होगा और शिष्य को भी पूरी तरह से ब्रह्म-विद्या से जुड़ना होगा। जिसके भीतर अध्यात्म की प्यास और ललक नहीं है, उसके लिए कठोपनिषद् को पढ़ने या सुनने का कोई अर्थ नहीं है। जब तक हम चातक नहीं बनेंगे, तब तक स्वाति-जल हमारे लिए परिणामदायी कैसे हो पाएगा? हालाँकि कठोपनिषद् कलेवर की दृष्टि से कोई बहुत बड़ा शास्त्र नहीं

है, लेकिन यह बहुत सारे रहस्यों को अपने में समेटे हुए है। यह तो सागर को सागर में लिए हुए है। कबीर कहते हैं, समुन्द समाना बूँद में। ज्ञान का पूरा सागर एक बूँद में आ गया है। कठोपनिषद् ऐसा ही है।

कठोपनिषद् कोई उपदेश नहीं है, कोई व्याख्या नहीं है, यह किसी गीता का गायन नहीं है। यह तो संवाद है, आत्म-संवाद। पुराने ज़माने में जो भी शास्त्र रचे जाते थे, उनको सहज रूप में कैसे कहा जाए, उन्हें सहज रूप से शिष्यों के अंतर्मन में कैसे उतारा जाए, इसके लिए गुरु-शिष्य के मध्य संवाद हुआ करते थे। गीता में कृष्ण और अर्जुन के बीच हुआ संवाद है। योग-वशिष्ठ जनक और वशिष्ठ के बीच का संवाद है। अष्टावक्र गीता जनक और महर्षि अष्टावक्र के बीच हुआ संवाद है। भगवती सूत्र महावीर और गौतम के बीच के संवाद को लिए हुए है। ऐसे ही कठोपनिषद् भी एक संवाद है, नचिकेता और यमराज के बीच का संवाद, एक ख़ास अंतरंगीय वार्तालाप का शास्त्र।

किसी भी तत्त्व का जन्म होता है तो उससे पहले कोई-न-कोई घटना घटित होती है, कोई-न-कोई ऐसा निमित्त बनता है जिसके कारण किसी तत्त्व को साकार होने का बीजारोपण होता है। किसी समय एक महान ऋषि हुए, महर्षि उद्दालक। उद्दालक गौतम वंश के वाजश्रवा के पुत्र थे। पहले ज़माने में ऋषि-मुनि विवाह करते थे, उनके संतानें भी होती थीं। धीरे-धीरे समाज में ऐसे संस्कार पड़े कि संन्यासी वही बने, जो विवाह न करे।

कहते हैं, महर्षि उद्दालक ने विश्वजित नाम का यज्ञ किया। जब भी किसी इंसान के मन में किसी ख़ास चीज़ को प्राप्त करने की तमन्ना जगती है, तो वह धर्म की शरण में जाता है। वह इसके लिए यज्ञ का आयोजन करता है। ऋषि-मुनियों के पास जाकर आशीर्वाद लेता है। उद्दालक ने भी यही किया।

जिस यज्ञ को करने के बाद इंसान दुनिया का दिल जीत सके, उस यज्ञ का नाम है, विश्वजित यज्ञ। यज्ञ की पूर्णाहुति पर परंपरा है कि यज्ञ में आए ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा दी जाती है। ऋषि उद्दालक ने भी यज्ञ की पूर्णाहुति के बाद दान-दक्षिणा देना प्रारंभ किया। दान हमेशा उन्हीं चीज़ों का किया जाता है, जो सर्वश्रेष्ठ हों। या तो दान दिया ही न जाए, लेकिन दान देने का फ़ैसला कर ही लिया है, तो हमें अपनी श्रेष्ठ वस्तुओं का ही दान देना चाहिए। अगर कोई व्यक्ति अनुपयोगी वस्तुओं का दान देगा, तो अच्छा होने की बजाय विपरीत परिणाम मिलेगा। आखिर लौट कर वही तो आएगा जैसा बीज हमने बोया है। सड़ियल अनाज का दान दोगे,

तो प्रभु के घर से वही सड़ियल अनाज मिलेगा। अरे भाई, जब देना ही है, तो अच्छा देओ न। अगले की दुआएँ दिल से मिलेंगी।

महर्षि उद्दालक यज्ञ के बाद ब्राह्मणों को दान देने लगे। उन्होंने अपनी बूढ़ी, बिन उपयोगी गायें दान देनी शुरू कर दीं। महर्षि उद्दालक के एक ज्ञानसंपन्न पुत्र थे - नचिकेता। इस तरह का गौ-दान देखकर नचिकेता के मन में विचार आने लगा कि ऐसी अपाहिज-अनुपयोगी गायें देकर उसके पिता किस महान फल की प्राप्ति की आकांक्षा कर रहे हैं। इन कमजोर गायों के दान से तो उनका इस यज्ञ से अर्जित सारा पुण्य समाप्त हो जाएगा।

नचिकेता ने अपनी ओर से पिता को संबोधित करते हुए कहा, 'पिताश्री, यह आपके लिए उचित नहीं है। आपको श्रेष्ठ का दान करना चाहिए।' कोई पुत्र पिता को कुछ समझाने का प्रयास करे, तो यह पिता को अच्छा नहीं लगेगा। शिष्य गुरु को ज्ञान देने लगे, तो यह तो उलटी गंगा बहना हो गया। उद्दालक को भी पुत्र की बात अच्छी न लगी।

पुत्र ने पिता को समझाना चाहा, 'पिताश्री! यज्ञ का नियम यह होता है कि पूर्णाहुति के बाद सर्वश्रेष्ठ चीजों का दान दिया जाए; इसलिए आपको अपनी सर्वश्रेष्ठ गायों का ही दान देना चाहिए।' पिता कहते हैं, 'सर्वश्रेष्ठ तो तुम भी हो।' पुत्र ने कहा, 'फिर तो आप मुझे भी दान कर दीजिए।' पिता ने फिर पूछा, 'क्या तुम्हें दान में दे दूँ?' नचिकेता ने कहा, 'हाँ, आप मुझे सर्वश्रेष्ठ मानते हैं तो मुझे भी निःसंकोच दान में दे दीजिए।' पिता ने आवेश में आकर कहा, 'तो फिर जाओ, मैं तुम्हें मृत्यु को देता हूँ।'

नचिकेता स्तब्ध रह जाते हैं, पर पिता की आज्ञा का पालन करते हुए वे वहाँ से यमलोक चले जाते हैं। यमराज से उनकी कई विषयों पर चर्चा होती है। कठोपनिषद् और कुछ नहीं, यमराज का नचिकेता के साथ हुआ विशिष्ट संवाद ही है। उनके संवाद में से हम अपने जीवन के लिए, कल्याण के लिए ज्ञान की कोई-न-कोई किरण ढूँढ़ने व उस किरण से अपना जीवन रोशन करने का प्रयास करेंगे।

कठोपनिषद् की शुरुआत होती है शांति पाठ से। इसका शुभारंभ ॐ से होता है। ॐ भारतीय संस्कृति का सबसे पवित्र शब्द है। ईश्वर की अभिव्यक्ति वाला शब्द है। ब्रह्म को व्यक्त करने वाला शब्द है। किसी को भी ब्रह्म-तत्त्व को अपने लिए आमन्त्रित करना हो, तो इसके लिए एक ही शब्द है - ॐ। ॐ का उद्घोष, ॐ की अनुगूंज, ॐ का जप, ॐ का स्मरण, ॐ का ध्यान। एक प्रकार से ॐ ब्रह्म-तत्त्व का ही ध्यान करना है।



इस एक छोटे से शब्द में ईश्वर का आह्वान छिपा है। ईश्वर को नमन करने का यह सीधा-सरल शब्द है ॐ। हम लोग अपने व्यावहारिक जीवन में भी ॐ नमः का स्मरण कर सकते हैं। किसी भी कार्य का शुभारंभ करना है, तो ॐ के उच्चारण से करें। नई कापी, नई डायरी, नए बहीखाते में, नए परीण्डे में सबसे पहले ॐ लिखें। ॐ लिख दिया, तो इसमें एक तरह से गणेशाय नमः, लक्ष्म्यै नमः, सरस्वत्यै नमः, कुल-देवतायै नमः - ये सभी ॐ में समाहित हो जाते हैं।

दुनिया की कोई ताकत ब्रह्म से अलग नहीं है। ब्रह्म को उपनिषद् में ॐ कहा गया है। ॐ ही ब्रह्म है। गीता कहती है कि 'ॐ इति एकाक्षरं ब्रह्मः'। ॐ ऐसा अकेला अक्षर है, जिसका क्षय नहीं हो सकता। इसीलिए पतंजलि कहते हैं, 'तस्य वाचकः प्रणवः'। ईश्वर का वाचक अगर कोई है, तो वह है प्रणव। प्रणव का अर्थ होता है ॐ। सिक्ख धर्म में ॐ को इतना महत्त्व दिया गया है कि 'एक ॐ कार सतनाम' उनके धर्म का प्रतीक ही बन गया।

सत्य क्या है, ॐ ही तो है। कहते हैं, जब सृष्टि का जन्म हुआ, तो सबसे पहली ध्वनि जो पैदा हुई, वह ॐ की थी। हम भी अपने साथ यह व्यावहारिक चरण जोड़ने का प्रयत्न करें कि जब भी हम किसी मंगल कार्य को प्रारंभ करें, तो सबसे पहले ॐ या ॐ नमः का उच्चारण करें। संत लोग जब मंत्र का ध्यान करते हैं, तो इसमें मुख्य रूप से ॐ की ही आराधना होती है। कोई यह न समझे कि इस मंत्र की साधना करके हम किसी तंत्र की साधना कर रहे हैं। ॐ की साधना करके हम ब्रह्म-तत्त्व की ईश्वर की ही साधना करते हैं।

कठोपनिषद् कहता है; 'हे ईश्वर, हम दोनों की साथ-साथ रक्षा करें। हम दोनों का साथ-साथ पालन करें। हम दोनों की पढ़ी विद्या तेजोमयी हो। हम परस्पर द्वेष न करें।'

भारतीय संस्कृति और समस्त हिन्दू समाज में जब भी कोई साथ बैठकर विशिष्ट ज्ञान धारण करता है, भोजन ग्रहण करता है, तो इस शांति-पाठ का उपयोग करते हैं। इसमें कहा गया है कि हम दोनों की साथ-साथ रक्षा करें।

गुरु की महानता देखें, शास्त्र की रचना शुरू कर रहे हैं तो अपने साथ शिष्य की भी भलाई चाहते हैं। कठोपनिषद् का निर्माण करते हुए गुरु अपनी भलाई के साथ ही शिष्य का भी भला सोच रहे हैं। 'हम दोनों की साथ-साथ रक्षा हो।' गुरु स्वार्थी नहीं हो सकता। गुरु और शिष्य, ये दुनिया में ऐसे पवित्र संबंध होते हैं जहाँ दोनों एक-दूसरे का भला चाहते हैं। शिष्य अपनी ओर से गुरु की सेवा का संकल्प लेता है। गुरु अपनी ओर से शिष्य की आध्यात्मिक समृद्धि का संकल्प

लेता है। गुरु और शिष्य होना एक बहुत बड़ा दायित्व है। पिता और पुत्र होना, सास और बहू होना खुद ही बहुत बड़ा दायित्व है।

गुरु और शिष्य का संबंध भी बड़े दायित्व लिये होता है। या तो किसी व्यक्ति को शिष्य बनाना ही नहीं चाहिए, पर किसी को शिष्य बना लिया जाता है, तो गुरु केवल अपना ही भला न करता रहे, अपने साथ-साथ शिष्य की भलाई का जो दायित्व उसने लिया है, उसे भी निभाए।

गुरु और शिष्य, दोनों ही महत्त्वपूर्ण लोग हैं। बिना शिष्य गुरु का ज्ञान ढक्कन लगे कलश में पड़े अमृत के समान है। किसी के पास कुछ भी क्यों न हो, पर यदि वह दुनिया के सामने उजागर नहीं होता है तो क्या काम का? दुनिया तुम्हें लाट साहब तभी तो मानेगी जब तुम अपनी लाट साहिबी उजागर करोगे। जरा सोचो, अगर महावीर अपने कैवल्य की रोशनी को दुनिया के सामने प्रकट न करते, बुद्ध अपने संबोधि के प्रकाश से संसार को प्रकाशित न करते, तो ऐसा कैवल्य और ऐसी संबोधि उन्हीं को मुबारक रहती।

गुरु वही हो सकता है जो शिष्य के साथ फिर से ज्ञान के पथ पर चलने को तैयार हो। गुरु को शिष्य के साथ चलना पड़ता है ताकि शिष्य भी गुरु के साथ चल सके। गुरु में पात्रता चाहिए तो शिष्य में भरोसा चाहिए। शिष्य का मतलब है श्रद्धा, शिष्य का मतलब है अध्यात्म का उन्माद, आध्यात्मिक ऊँचाइयों को पाने की अद्भुत तमन्ना कि जिसके लिए वह कुर्बान कर देता है अपनी हर अहमियत को, हर इच्छा को, हर रिश्ते-नातों को। इसलिए कठोपनिषद् में गुरु कहते हैं कि हे प्रभु, हम दोनों की साथ-साथ रक्षा हो। मेरा भी रक्षण हो और मेरे शिष्य का भी रक्षण हो। हम दोनों का साथ-साथ पालन करें। मेरा भी पालन हो और जिसने मेरे लिए जीवन समर्पित कर दिया है, उसका भी पालन हो।

हम ईश्वर के सामने बालक बनकर जाते हैं, अपनी रक्षा की प्रार्थना करते हैं। एक पुत्र अपने पिता के साथ इसी भावना से रहता है कि पिता उसकी रक्षा करेंगे। बहू अपने सास-ससुर के पास इसी भावना से रहती है कि ऐसा करने से उसका रक्षण होगा। पति गलत निकल जाए, उसे छोड़कर चला जाए तो उसका पालन-पोषण तो सास-ससुर ही करेंगे। हर कोई एक-दूसरे का सहयोग करता है, दुनिया इसी नैसर्गिक सिद्धांत पर चला करती है। कभी मैं आपके लिए उपयोगी बन जाऊँ, कभी आप मेरे लिए उपयोगी बन जाएँ। यह कहना गलत है कि दुनिया किसी एक व्यक्ति के कारण चलती है। हकीकत तो यह है कि दुनिया हम सभी के कारण चलती है। तुलसीदास कहते हैं, 'तुलसी या संसार में भांति-भांति के लोग, सबसे मिलकर चालिए, नदी-नाव संयोग।' यहाँ हर चीज एक-दूसरे से

जुड़ी है। प्रत्येक वस्तु एक-दूसरे पर टिकी है। आपस का वैर-विरोध हटाइए। प्रेम-नदी के तट पर आइए। प्रेम-नदी के तट पर ही प्रभु का धाम है।

कठोपनिषद् की शुरुआत में ही गुरु अपने शिष्य के साथ संवाद कर रहा है, ब्रह्म-विद्या और अध्यात्म के ज्ञान की परतें खोल रहा है। इसलिए वह प्रार्थना कर रहा है कि हे प्रभु, मेरे साथ मेरे शिष्य का भी भला करें। आप हम दोनों की साथ-साथ रक्षा करें, साथ-साथ पालन करें। इस संसार में एक ही शब्द महिमामंडित हो जाना चाहिए और वह है, साथ-साथ। परिवार में भी रहो साथ-साथ, समाज में भी रहो साथ-साथ, धर्म में भी रहो साथ-साथ, साधना में भी रहो साथ-साथ। यदि पूरी दुनिया में यही एक नारा हो जाए, यही एक पैगाम हो जाए, यही एक धर्म हो जाए कि हम सब साथ-साथ हैं, तो दुनिया की आधी आधाधियाँ खुद ही खत्म हो जाएँ।

मैं आपको ब्रह्म-विद्या की ओर गतिशील कर रहा हूँ तो इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं केवल आपको उस ओर भेज रहा हूँ। मैं भी आपके साथ ही चल रहा हूँ। हम सब साथ-साथ हैं। साधना का पथ तो साथ-साथ चलने का पथ है। यह भीतर का नौका-विहार है। केवल मेरे हाथ में ही पतवार नहीं है, आपको भी पतवार थमा रहा हूँ। मुझे भी पतवार चलानी होगी, आपको भी पतवार चलानी होगी। हाँ, कहीं भूल हो जाएगी, तो सुधरवाता रहूँगा। कहीं थक जाओगे, तो अपने आंचल में विश्राम भी दे दूँगा। पर एक बात तय है कि पतवार तो हम सब लोगों को ही चलानी पड़ेगी।

गुरु कहते हैं कि इस ब्रह्म-विद्या से केवल मुझे ही शक्ति की प्राप्ति न हो, वरन् मेरे प्रिय शिष्य को भी शक्ति की प्राप्ति हो। हम दोनों की पढ़ी हुई विद्या तेजोमयी हो, अर्थात् हमारा ज्ञान, हमारी विद्या तेजस्वी हो। ज्ञान वह नहीं है जो हमने रट लिया है। ज्ञान वह है जिसकी तेजस्विता हमें उपलब्ध हो गई है। जरा सोचें, सूर्य में अगर तेजस्विता न होती, तो क्या होता? सूर्य एक ठण्डा उल्कापिंड भर होता। सूर्य की ताकत तो उसका तेज ही है। तेज ही तीर्थकर की ताकत है। तेज ही अवतार और पैगंबरों की शक्ति है। इसीलिए प्रार्थना की जाती है कि हम दोनों के द्वारा जो ज्ञान अर्जित किया गया है, वह ज्ञान तेजोमय हो। वह विद्या और आगे बढ़े। हम परस्पर द्वेष न करें।

शिष्य और गुरु एक दूसरे के बीच खींचतान में न पड़ें। भला, जब आम सांसारिक प्राणियों के लिए राग-द्वेष और बैर करना वर्जित है, तो संन्यासी के लिए तो राग-द्वेष और बैर पूरी तरह वर्जित हैं ही। बैर और द्वेष की बात सोचना भी पाप

है। ऋषि का मतलब होता है ऋजुता। जिसमें ऋजुता आ गई, वह ऋषि। ऋजुता यानी सरलता। जो सरलता के मालिक हो गए, वे ऋषि। ऋषित्व यानी सरल, परस्पर द्वेष न करने वाले एक-दूसरे का भला चाहें। गुरु शिष्य का हित देखे और शिष्य गुरु का।

एक बार समर्थ गुरु रामदास अपने शिष्य छत्रपति शिवाजी के साथ दक्षिण भारत की यात्रा पर निकले। बीच रास्ते में तेज बारिश होने लगी। एक स्थान पर नदी आ गई। गुरु और शिष्य विचार करने लगे कि उसे कैसे पार किया जाए। गुरु ने शिष्य से कहा, 'शिवा, तुम ठहरो, पहले मैं नदी पार करता हूँ। यदि नदी पार करने योग्य स्थिति बनी, तभी आगे बढ़ेंगे। शिवाजी ने कहा, 'ऐसा नहीं हो सकता। आप रुकिए, मैं पहले नदी पार करता हूँ।' गुरु न माने। शिष्य भी जिद करने लगा। आखिर गुरु ने हथियार डाल दिए और शिवाजी ने कुछ ही देर में नदी पार कर ली। वे सकुशल दूसरे किनारे पहुँच गए, तो उन्होंने गुरु को आवाज़ दी, 'अब आप बेहिचक नदी पार कर सकते हैं।'

गुरु ने भी नदी पार की और दोनों फिर से साथ-साथ चलने लगे। यकायक गुरु ने शिवाजी से नाराजगी प्रकट करते हुए कहा, 'आज मुझे अफसोस हो रहा है। आज पहली बार मेरे शिष्य ने मेरी बात नहीं मानी।' शिवाजी हैरान, पूछने लगे, 'मैंने आपकी किस आज्ञा का पालन नहीं किया गुरुदेव?' गुरु रामदास बोले, 'नदी को पहले मैं पार करना चाहता था, लेकिन तूने मेरी बात नहीं मानी। ज़रा सोच, नदी गहरी होती और तू डूब जाता, तो मैं दुनिया को कैसे मुँह दिखाता?'

शिवाजी ने कहा, 'गुरुदेव, आपकी नाराजगी उचित है, लेकिन मैं आपको पहले नदी में कैसे उतरने देता? मैं नदी में डूब जाता तो आप मेरे जैसे छत्तीस शिवाजियों को पैदा कर देते, लेकिन यदि आपको कुछ हो जाता, तो मेरी इतनी औकात कहाँ है कि मैं एक भी समर्थ गुरु रामदास को पैदा कर पाता।'

घटना मार्मिक है। गुरु और शिष्य के बीच के संबंधों के साथ ही घटना इस बात की ओर भी संकेत करती है कि गुरु और शिष्य दोनों को एक-दूसरे की चिंता करनी चाहिए। वे किस तरह एक-दूसरे को आगे बढ़ाने के लिए काम करते हैं? एक-दूसरे की विद्या को और तेजोमयी बनाने के लिए किस तरह के भाव मन में रखते हैं? गुरु अपने शिष्य की रक्षा कर रहा है और शिष्य अपने गुरु की। इसी का नाम है, ओम! 'सह नावतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहै, तेजस्वि नावधीतमस्तु, मा विद्विषावहै।' यह है वह तरीका जिसे हम कह सकते हैं — दोनों

का साथ-साथ कल्याण हो, साथ-साथ भला हो, साथ-साथ संरक्षण हो, हम सब विद्यावान हों, शक्तिमान हों, तेजस्वी हों, हमारे पाप-ताप-संताप का नाश हो।

मंदिर में जाओ तो केवल अपने लिए ही प्रभु से दुआ मत माँगना। अपने साथ अपने माता-पिता के लिए भी प्रभु का आशीर्वाद माँग लेना। घर के मुखिया हो, तो पूरे परिवार के लिए सुख और शांति की कामना करना। गुरु हो, तो शिष्य के लिए भी सुख की प्रार्थना करना, सभी के कल्याण की कामना करना।

केवल खुद का भला चाहने वाला तो स्वार्थी होता है। सबका भला चाहने वाला परमार्थी होता है। गुरु का पथ परमार्थ का पथ है। गुरु के चरणों में बैठकर उपनिषदों का पारायण करना, उपनिषदों के ज्ञान का अर्जन करना, गंगा में स्नान करने जैसा ही है। गुरु के चरण गंगा के समान ही कहे गए हैं। गुरु के चरण तीर्थ के समान हैं। गुरु के चरणों में बैठना गंगा-स्नान करने जैसा है। गंगा नहाने से तो केवल तन का मैल धुलेगा, गुरु के पास बैठकर ज्ञानार्जन करने से मन का मैल धुलेगा। अज्ञान का अँधेरा छूटेगा। हम सब लोग अपने ही अँधेरो में भटक रहे हैं, अज्ञान की मूर्च्छा के अँधेरो में। गुरु का काम यही है कि वह हमें मूर्च्छा के अँधेरो से बाहर निकाले। जो सोते हुए को जगा दे, वही सच्चा गुरु है। 'य एषु सुप्तेषु जागर्ति', जो सोये हुआ के बीच भी जागृत रहे, उसका नाम है गुरु।

हम गुरु के चरणों में इसलिए बैठते हैं क्योंकि मूर्च्छा में हैं, अज्ञान की अंधेरी गुफाओं में भटक रहे हैं। वहाँ बैठने से हमें आध्यात्मिक ज्ञान की रोशनी मिलेगी। हम आध्यात्मिक ज्ञान के पथ पर चल पाएँगे। गुरु शब्द का अर्थ होता है - जो हमारे भीतर के विकारों को दूर करे, जो हमारे जीवन को तमस से निकाल दे, अँधेरो से हमें रोशनी में ले आए।

अँधेरा यानी तमोगुण और रोशनी यानी सतोगुण। प्रत्येक प्राणी में तीन गुण होते हैं, तमोगुण, रजोगुण व सतोगुण। ये तीनों हर किसी में किसी-न-किसी रूप में समाहित रहते हैं। इनका प्रतिशत अलग-अलग हो सकता है। प्रकृति गुणों के आधार पर चलती है। किसी में कोई गुण होता है, तो किसी में कोई गुण। जो लोग कारागार में कैद हैं, उनके लिए यह न समझें कि वे पूरी तरह गलत ही होंगे। कारागार में कैद व्यक्ति में भी दो सद्गुण हो सकते हैं। जो सद्गुणी कहलाते हैं, उनमें भी दो अक्वगुण मिल सकते हैं। हर व्यक्ति में अच्छाई और बुराई दोनों हो सकती है। अच्छाइयाँ जीने के लिए हुआ करती हैं और बुराइयाँ दूर करने के लिए होती हैं।

हम गुरु-चरणों में इसलिए जाते हैं ताकि हमारे भीतर पल रहे जन्म-जन्मांतर के अंधकार से छुटकारा मिल जाए। हमारे क्रदम प्रकाश की ओर, मुक्ति की ओर बढ़ सकें। हर व्यक्ति गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करता है, पर अधिकांश लोग गृहस्थ-आश्रम के ही बनकर रह जाते हैं। ये तो गुरु ही हैं, जो हमें घर-गृहस्थी के व्यामोह से बाहर निकालने में मदद करते हैं। गुरु हमें गृहस्थ-आश्रम से वानप्रस्थ और वानप्रस्थ से संन्यास-आश्रम की ओर ले जाते हैं। इस ताकत का नाम ही गुरु है।

किसी व्यक्ति के संत बनने का अर्थ यही है कि ईश्वर का उस पर महान अनुग्रह हुआ है। अब व्यक्ति घर-गृहस्थी में उलझा न रहकर अपने आत्म-कल्याण के लिए कुछ कर सकेगा। संत बनना सौभाग्य की बात है। ईश्वर की महती कृपा होती है, तब ही कोई व्यक्ति संत बन पाता है। संत बनना, यानी ईश्वर का अनुग्रह पा लेना। संन्यास लेना ईश्वर के करीब होने का मार्ग है, ब्रह्म-तत्त्व के करीब होने का रास्ता है। अमीर आदमी प्रभु के करीब नहीं होता। त्यागी व्यक्ति को यह सौभाग्य मिलता है। भोगी व्यक्ति ईश्वर के नहीं, संसार के करीब होता है। भोग हमें ईश्वर से दूर करता है और योग हमें ईश्वर के करीब ले जाता है।

ईश्वर की निकटता पाना है, तो भोग उसमें बाधा है। योग और भोग, दोनों एक-दूसरे के बाधक हैं। भोग हमें संसार की तरफ ले जाता है और योग ईश्वर की ओर। माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहिन, जमीन-जायदाद, तेरा-मेरा ये सब हमें संसार की ओर ले जाने वाले भाव हैं। ईश्वर के प्रति ले जाने वाला भाव यही है कि सभी हमारे संबंधी हैं, सगे हैं, पर सभी सहयात्री हैं। कोई व्यक्ति इस राजमार्ग पर दो घंटे पहले आया और कोई दो घंटे बाद। कुछ दूर साथ भी चलते हैं, सहयात्री बनते हैं, लेकिन फिर बिछड़ जाते हैं। कोई किसी पगडंडी पर बिछड़ जाता है, तो कोई किसी और पगडंडी पर निकल जाता है। यात्री आ रहे हैं, बिछड़ रहे हैं, लेकिन यह राजमार्ग वहीं का वहीं है।

यह प्रभु का पथ है, जिस पर हम सब चल रहे हैं। पति और पत्नी एक संयोग हैं। ज़मीन-जायदाद संयोग हैं। सारे रिश्ते-नाते संयोग हैं। तब बड़ी हँसी आती है, जब कोई दो सगे भाई आपस में कहते हैं, ये मेरी जमीन और ये तेरी जमीन। बीच रास्ते में रस्सी खींच दी जाती है। दीवार बना दी जाती है। इस तरफ मेरी ज़मीन, उस तरफ तेरी ज़मीन। ऊपर बैठा ईश्वर हँसता है, कैसे नादान हैं। क्या तेरा, क्या मेरा, 'सबै भूमि गोपाल की।' तेरे हाथ तो तेरा जीवन भी नहीं है, तो ज़मीन कैसे हो जाएगी।

एक महान सम्राट हुए हैं। उनका नाम था सम्राट इब्राहिम। सम्राट के राजमहल में अचानक एक फ़क़ीर पहुँचता है और वहाँ पहुँच कर महल के बीचोंबीच चारपाई लगाकर सो जाता है। राजमहल के कर्मचारी उसे समझाते हैं, सम्राट का भय दिखाते हैं। उसे अलग से बने सरायखाने में जाने के लिए कहते हैं। फ़क़ीर नहीं मानता, वह कहता है, यह महल भी सरायखाना है, मैं तो यहीं ठहरूँगा। सम्राट ये सारा नज़ारा देख रहा होता है। फ़क़ीर की बात सुनकर वह हैरान होता है। फ़क़ीर उसके अच्छे-भले महल को सरायखाना कह रहा है। यह पाग़ल हो गया लगता है।

सम्राट फ़क़ीर के पास पहुँचता है और उससे कहता है, ये कर्मचारी सही कह रहे हैं, आपके विश्राम के लिए सराय बनी है, आप वहाँ जाएँ। फ़क़ीर हँसते हुए कहता है, 'यह सराय ही तो है।' सम्राट उसे फिर समझाते हैं, 'यह राजमहल है, सरायखाना नहीं।' फ़क़ीर सम्राट से पूछता है, 'राजन्, अगर आप कहते हैं तो मान लेता हूँ, पर ज़रा मुझे इतना-सा बताइए कि आपके पिता कहाँ रहते थे?' सम्राट कहता है, 'इसी महल में।' फ़क़ीर ने पूछा, 'उनके पिताजी कहाँ रहते थे?' फिर जवाब वही होता है, 'इसी महल में।' फ़क़ीर का अगला सवाल था, 'तुम्हारे पड़दादा कहाँ रहते थे?' इसका जवाब भी यही होता है, 'इसी महल में।'

फ़क़ीर पूछता है, 'अब वे लोग कहाँ चले गए?' सम्राट कहता है, 'ऊपर वाले के घर चले गए।' फ़क़ीर हँसा, कहने लगा, 'इसका मतलब तू भी चला जाएगा।' यह सुनते ही सम्राट चौंका। फ़क़ीर कहने लगा, 'सम्राट, तुम कहते हो, यह राजमहल है, पर हकीकत यह है कि ये सरायखाना ही है। इतने मुसाफ़िर यहाँ आए और चले गए। तुम भी चले जाओगे। तुम्हारी आने वाली पीढ़ियाँ भी एक-एक करके चली जाएँगी। जहाँ इतने मुसाफ़िर आकर चले जाएँ, उसे सरायखाना न कहूँ तो और क्या कहूँ?'

कहते हैं, जीवन में कोई घटना सही तरीके से घट जाए, तो इंसान को वर्षों की नींद से, वर्षों की मूर्च्छा से जगा दिया करती है। ऐसा ही हुआ। सम्राट इब्राहिम की आत्मा को बोध जगा। वह उसी समय फ़क़ीर बन गया। मूर्च्छा टूटनी कठिन ज़रूर है, लेकिन कोई एक घटना भी मूर्च्छा को तोड़ सकती है। गुरु के चरणों में तो अनेक लोग पहुँचते हैं, लेकिन वे फिर भी सच्चे अर्थों में उनके चरणों तक नहीं पहुँच पाते। इसीलिए कहा गया, पात्रता आवश्यक है। पात्रता पहली अनिवार्यता है। भीतर अगर पात्रता नहीं होगी, तो ईश्वर भी हमारी दहलीज़ पर आकर खड़ा हो जाए तो हम उसे नहीं पहचान पाएँगे। पात्रता आ गई तो फूलों की खिलावट में

भी भगवान का नूर देख लेंगे, चिड़ियों की चहचहाट में भी कुरआन की आयतों का आनन्द ले लेंगे। कबूतरों की गुटर-गूँ में भी उपनिषदों के मंत्र सुन लेंगे। कठोपनिषद् ऐसे लोगों के लिए उपयोगी शास्त्र है, आत्म-विद्या और ब्रह्म-विद्या का शास्त्र है। जिन लोगों के भीतर आध्यात्मिक उत्कंठा, मुमुक्षा और प्यास है, उनके लिए कठोपनिषद् की बातें अध्यात्म की कुंजी का काम कर सकती हैं। यह एक ऐसा शास्त्र है जो हमारी यमराज से मुलाकात करवाता है; इंसान को उसकी मृत्यु से मिलवाता है। जिस व्यक्ति को अपने शरीर को बचाने की तमन्ना है, मोह है, वह कठोपनिषद् को समझने का प्रयास न करे। वह गीता की शरण में जाए, उसमें से जीवन जीने की कला सीखे। जिसको आध्यात्मिक उन्नति चाहिए, वह कठोपनिषद् जैसे महान उपनिषद् की शरण में आए। कठोपनिषद् ऐसा शरणदाता है, जो अपने द्वार पर आने वाले हर किसी प्राणी को तार दिया करता है। कठोपनिषद् कठिन है, पर हम अपनी विनम्र और जिज्ञासु बुद्धि से इसे समझने का प्रयास करेंगे। ईश्वर हमारी इसमें मदद करे। ईश्वर हम सब लोगों की रक्षा करे। हम सबको शक्ति की प्राप्ति हो। हम लोग कभी आपस में द्वेष न करें। एक-दूसरे से प्रेम करें, मोहब्बत करें। एक-दूसरे को गले लगाएँ।





# 2

## धर्म के महत्वपूर्ण चरणः यज्ञ और दान

कठोपनिषद् एक ऐसा उपनिषद् है जिसे कि हम दूसरों शब्दों में अध्यात्म-उपनिषद् कहेंगे। अध्यात्म-उपनिषद् इसलिए, क्योंकि इसमें शुरू से लेकर अंत तक, सीढ़ी से लेकर शिखर तक, मार्ग से लेकर मंजिल तक एक ही बिन्दु की चर्चा की गई है और वह है मानवजाति की आध्यात्मिक उन्नति। हकीकत में किसी भी इंसान की मुक्ति और आध्यात्मिक उन्नति के लिए उसे ऐसी पूँजी मिलनी चाहिए जिसके बलबूते पर वह साधारण से ऊपर उठकर असाधारण चेतना का मालिक बने।

भगवान महावीर का एक पवित्र शास्त्र है आचारांग सूत्र। इस सूत्र की शुरुआत अध्यात्म की प्यास के साथ की गई है। इसका पहला अध्याय जिज्ञासा का अध्याय है। इंसान की सोई हुई मुमुक्षा को जगाने का अध्याय है। महावीर कहते हैं कि व्यक्ति यह नहीं जानता कि वह कौन है। वह यह भी नहीं जानता कि वह कहाँ से आया है और उसे यह भी नहीं पता कि वह यहाँ से कहाँ जाएगा। जानने के नाम पर, अपने परिचय के नाम पर वह इतना-सा ही जानता है कि वह अमुक का पुत्र है, अमुक मोहल्ले में रहता है, अमुक गाँव में वह जन्मा है। अमुक उसके भाई-बहिन हैं। उसे जो जानकारी है, वह बहुत स्थूल है। हमें सब कुछ ऊपर-ऊपर की जानकारी है। हमें यह जानकारी नहीं है कि हम माँ के पेट में कहाँ से आए, हमें यह भी जानकारी नहीं है कि शरीर की मृत्यु के बाद हम कहाँ जाएँगे।

जीवन एक सनातन धारा है। संसार की नदिया में बहता पानी है। हमारी नज़रों के सामने जितना पानी आया, उतना ही पानी नहीं होता वरन् एक अखण्ड धारा चलती रहती है पानी की। आँखों के सामने से जो निकल गया, वह भी पानी ही है। जो आँखों के सामने है, वह भी पानी है और जो आँखों के करीब नहीं

पहुँचा, वह भी पानी है। हम इस संपूर्ण पानी की धारा को पानी इसलिए कहते हैं क्योंकि इसमें अखण्डता बनी हुई है।

जो जीवन हमारी आँखों के सामने है, वह तो जीवन है ही, लेकिन जो जीवन हम बिता चुके हैं, उसे भी जीवन की संज्ञा देंगे और आने वाला जीवन जो हमारे प्रारब्ध या तकदीर में लिखा है, वह भी जीवन है; अर्थात् जीवन एक धारा है और यह धारा जन्म-मृत्यु के दो द्वारों से गुजरने के बावजूद धारा ही बनी रहती है।

संसार है इक नदिया, सुख-दुख दो किनारे हैं।  
ना जाने कहाँ जाएँ, हम बहते धारे हैं॥

अज्ञानी कहते हैं - अमुक व्यक्ति जन्मा और अमुक व्यक्ति मरा। ज्ञानी लोग कहते हैं - न कोई जन्मा, न कोई मरा। नेवर बोरन, नेवर डाइड। न यहाँ जन्म है, न यहाँ मृत्यु है। हम सब सहयात्री की तरह इस धरती पर आए हैं। साथ-साथ जी रहे हैं। अपनी-अपनी रखवाली कर रहे हैं। यात्री बिछुड़ जाते हैं। बिछुड़ना हमारी भाषा में वियोग कहलाता है, मृत्यु कहलाता है। लेकिन तुम नहीं तो तुम्हारा भाई सही, कोई-न-कोई इस यात्रा में फिर जुड़ जाता है और नदिया की धारा की तरह जीवन बहता चला जाता है।

ज्ञानी लोग धैर्यपूर्वक आत्म-चिंतन करते हैं। वे प्रयोग करते रहते हैं। वे यह भी जानने का प्रयत्न करते रहते हैं कि वे कौन हैं, उनकी शुरुआत माता-पिता से ही हुई या इससे भी पहले उनकी कोई धारा रही है। उनका मूल उत्स क्या है? वे गंगा हैं या गंगोत्री? ज्यों-ज्यों कोई इंसान अपने आप से जुड़ता है, चिंतन-मनन करता है, उसे अपने भीतर अपना मार्ग मिलता चला जाता है। और तब वह समझने लगता है कि हम सब यहाँ निमित्त हैं। निमित्तमूलक जीवन जीते हैं। अनुकूल निमित्त हमें खुशियाँ देता है और प्रतिकूल निमित्त हमें उद्वेग, खिन्नता, पीड़ा दिया करता है। लेकिन जिसने जीवन के मर्म को समझ लिया, जीवन की गहराइयों को समझने का प्रयत्न किया, उसके लिए न तो अनुकूलता खुशी का निमित्त बनती है और न ही प्रतिकूलता उद्वेग और खिन्नता का आधार। दोनों परिस्थितियों में वे सहज रहते हैं। अनुकूलता और प्रतिकूलता के दोनों किनारों से निरपेक्ष और अप्रभावित रहकर जीना जीवन की सच्ची आत्म-विजय है।

एक वृद्ध संत थे। उन्हें एक बार झूठे इलजाम में कोड़े लगाने की सजा दी गई। उन्हें कोड़े लगाए जा रहे थे। वे शांत भाव से मार सहन कर रहे थे। बीस कोड़े का दंड था। वृद्ध महात्मा कोड़े खाकर निकल पड़े। राह में किसी ने पूछा,

‘महाराज, कोड़े की मार से पीड़ा नहीं हुई?’ वृद्ध महात्मा ने कहा, ‘कोड़ों की मार देह-बल से नहीं, आत्म-बल से सही जाती है। इस वृद्ध काया में देह-बल नहीं है, लेकिन आत्म-बल इतना है कि इन कोड़ों की मार तो क्या, प्रभु के लिए प्राण भी देने हों तो जान हाज़िर है।’

जिन लोगों में इतना आत्म-बल रहता है, वे जीवन की हर अनुकूलता और प्रतिकूलता, दोनों में सहज रहने में सफल होते हैं। वे जीवन का सच्चा आनन्द लेते हैं। व्यक्ति की सहजता ही आनन्दमय जीवन जीने का रास्ता है। याद रखिएगा, सहजता ही जीवन के समस्त सुखों की आधारशिला है। सहजता खुद ही अपने-आप में एक साधना है। संसार में ऐसा कोई वर्ष नहीं होता जिसमें ऋतुओं में बदलाव न आता हो और दुनिया में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जिसे अपने जीवन में विपरीत हालात का सामना करना न पड़ा हो। किसी ने गाली दी, पर इसके बावजूद हमने उसे पीने के लिए शरबत का ऑफर किया, तो समझ लो आप सहजता को जी रहे हैं। गाली के बदले में गाली देना सुअर-कुत्तों की जमात में शामिल होने के बराबर है। क्रोध आया, तो इसका मतलब यही है कि सहजता खण्डित हो गई। तारीफ़ सुनकर अच्छा लगा, तो समझ लीजिएगा हमारी सहजता बाधित हो गई और मन अहंकारग्रस्त हो गया।

कबीर ने कहा है, ‘निंदक नियरे रखिए, आंगन कुटी छवाय।’ एक आध निंदक पास रखें, ताकि खुद की शांति की कसौटी हो सके। बड़ा मज़ा आता है सुकरात जैसा जीवन जीने में। उनकी पत्नी तेज स्वभाव की थी। लोग पूछते, पत्नी इतने तेज स्वभाव की और आप इतने शांत; आपको असहज नहीं लगता? सुकरात हँसते और कहते, भाई, ईश्वर का शुक्रगुजार हूँ कि उसने मुझे ऐसी पत्नी दी। लोग फिर सवाल करते, इसका मतलब? सुकरात उन्हें बताते कि लोग शांति और समता की साधना करने गुफाओं में जाते हैं। मुझे किसी गुफा में जाकर तपस्या करने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि मेरी पत्नी ही मेरी गुफा है, मेरी शांति और समता की वही कसौटी है। वह रोज-ब-रोज मेरी कसौटी कस लेती है और मैं रोज उसकी गालियाँ सुनकर अपना मूल्यांकन करता रहता हूँ। शुरू में उसकी गालियों का मुझ पर शत-प्रतिशत प्रभाव पड़ता था। फिर नब्बे प्रतिशत प्रभाव पड़ने लगा। फिर अस्सी, साठ और पचास प्रतिशत हुआ। घटते-घटते अब स्थिति यह हो गई है कि असर ही नहीं होता। अब तो गाली और गीत बराबर। मान-अपमान बराबर। एक बाल्टी पौछे का पानी हो या एक मटका गंगाजल, अब दोनों में सहजता बनी रहती है। यह सहजता ही साधना है। मैं सहजता को जीता हूँ, इसीलिए सहज हूँ। ज्ञानी

लोग सहज होते हैं। वे जान चुके होते हैं अपने आप को। वे जान चुके होते हैं परिवर्तनशीलता को। वे जान चुके होते हैं इसीलिए वे सहजता के मालिक बन जाया करते हैं। कठोपनिषद् सहजता का शास्त्र है।

जिनके भीतर अपने प्रति जिज्ञासा जगी, आत्म-चिंतन के भाव जगे, ब्रह्म-विद्या को सीखने की ललक पैदा हो गई, ऐसे लोगों के लिए कठोपनिषद् आत्मा के करीब ले जाने वाली प्रकाश की किरण साबित होता है। इसलिए मैं तो कहूँगा, यह कोई कठिन उपनिषद् नहीं है। कठिन तो उनके लिए है जिनका आत्म-विद्या, ब्रह्म-विद्या से कोई लेना-देना नहीं है। जो लोग तेनजिंग और हिलेरी की तरह हिमालय की चोटी पर चढ़ने के लिए तत्पर हो चुके हैं, ऐसे आत्म-विश्वासी, आत्म-जिज्ञासु लोगों के लिए कठोपनिषद् एक वरदान है, सौगात है। अध्यात्म के रास्ते पर चलने वालों के लिए मील का पत्थर है।

खुद के भीतर ललक, अभीप्सा, प्यास है तो यह कठोपनिषद् आपके लिए बहुत-कुछ कर सकता है। आइए, समझें कि यह उपनिषद् हमें क्या दे सकता है। यह उपनिषद् सबसे पहले एक कहानी कहता है। कहानी है उद्दालक और उनके पुत्र नचिकेता की। यज्ञ का फल चाहने वाले ऋषि उद्दालक ने अपना सारा धन ब्राह्मणों को दान देने का फैसला किया।

मानवजाति के उत्थान के लिए धर्म ने अलग-अलग सोपान दिए हैं। पतंजलि ने अपने तरीके से रास्ता बताया, तो महावीर ने अपने तरीके से। कृष्ण की गीता कुछ और कहती है तो बुद्ध का धम्मपद कुछ और कहता नज़र आता है। ये सारे शास्त्र अलग-अलग तरीके सुझाते हैं, पर एक बात तय है कि सबके तरीके भले ही अलग-अलग हों, लेकिन मंजिल सबकी एक है। सत्य सबका एक है। सबका मालिक एक है।

जहाँ समझ कम होती है, उनके लिए रास्ते अलग-अलग हो जाते हैं; लेकिन जो लोग महावीर के अनेकांत के राही बन जाते हैं, उनके लिए मंजिल मुख्य होती है। कोई उपवास के रास्ते मंजिल तक पहुँचता है, तो कोई ध्यान के रास्ते। किसी को दया का रास्ता रास आता है, तो किसी को भाईचारे में भगवान नज़र आता है। रास्ता जो भी हो, मूल बात तो मंजिल तक पहुँचना है।

मुसलमान पाँच वक़्त की नमाज़ से अपने खुदा को खुश करते हैं। सिख वाहेगुरु का जाप करता है, गुरुद्वारे में मत्था टेकता है, गुरुबाणी सुनता है। जैन है तो अहिंसा, शांति, अपरिग्रह के सिद्धांत को जीवन में उतारता है; बौद्ध करुणा और प्रज्ञा की राह पर चलता है। ईसाई प्रेम व सेवा को महत्त्व देता है। जो इंसान जिस परंपरा

का होगा, वही राह अपनाएगा। हिन्दू यज्ञ का आयोजन करेगा। यज्ञ में अग्नि जलेगी, घी की आहुति दी जाएगी, मंत्रोच्चार होगा। यज्ञ की हमारे यहाँ सदियों से परंपरा चली आ रही है। यज्ञ करना-करवाना शुभ माना जाता है। पंडित यज्ञ करते हैं। सेठ-साहूकार यज्ञ करवाते हैं। यज्ञ का प्रतिफल किसे मिलेगा, इसके पीछे भावना प्रधान होती है। यूँ तो पंडित प्रायः यज्ञ करते ही रहते हैं, लेकिन सबको प्रतिफल मिलेगा, यह सुनिश्चित नहीं है। केवल रोजाना यज्ञ करने मात्र से प्रतिफल नहीं मिलता। पंडित यज्ञ करते हैं, बदले में उन्हें दान-दक्षिणा मिलती है। जो सेठ-साहूकार यज्ञ करवाते हैं, प्रतिफल के अधिकारी वे हो जाते हैं। वे दैवीय शक्तियों का अनुग्रह पाने के लिए ऐसा करते हैं। इसके पीछे उनकी भावना प्रभु का आशीर्वाद पाने की होती है।

कठोपनिषद् कहता है, संत उद्दालक ने विश्वजित-यज्ञ करवाया। इसके लिए कई कुण्ड बनवाए गए। ज्ञान के वे कुण्ड, जिनमें व्यक्ति अपने आपको नियोजित कर लेता है। ब्राह्मण ज्ञान अर्जित कर पंडित बनते हैं। फिरदेवी-देवताओं का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए यज्ञ करते हैं। युधिष्ठिर ने भी यज्ञ किया। राजसूय यज्ञ किया। इसी तरह ऋषि उद्दालक ने विश्वजित-यज्ञ का आयोजन किया। ब्राह्मण अपनी ओर से यज्ञ करे, तो वह महत्त्वपूर्ण होता है। जिसे यज्ञ का लाभ चाहिए, वह यज्ञ के द्वार पर आए।

इसी शहर में एक बार महायज्ञ का आयोजन किया गया। शतचंडी महायज्ञ। हमें भी आमंत्रित किया गया। मैं वहाँ हर शाम जाता और जीवन के आध्यात्मिक कल्याण की बात करता। वहाँ लोग दिन में यज्ञ में आहुति देते। एक यज्ञ मैंने भी शुरू किया, लोगों के जीवन का कल्याण करने का यज्ञ। जीवन के निर्माण का यज्ञ, यज्ञ तो दोनों ही हैं एक घी की आहुतियों का यज्ञ है तो दूसरा जीवन की कमजोरियों और बुराइयों को त्यागने का यज्ञ। जीवन-निर्माण का यज्ञ हो, तो ही अन्य किसी यज्ञ को करवाने की सार्थकता है।

जिसे फल की चाहना है, वह यज्ञ का आयोजन करे। यज्ञ की पूर्णता तभी होती है, जब यज्ञ के बाद ब्राह्मणों को उपयुक्त दान-दक्षिणा दी जाए। सो, महर्षि उद्दालक ने अपना सारा धन दान में दे दिया। सृष्टि की व्यवस्था ऐसी है कि हम देते हैं, तो वापस लौट कर आता है। बीज बोते हैं, तो फसलें लौटकर आती हैं। जैसे बीज बोएँगे, वैसी ही फसलें लौटकर आएँगी। बबूल के बदले बबूल और आम के बदले आम। यही नियम है। इसलिए दान भी अपने श्रेष्ठ का करें। ऐसा नहीं कि आपके पास कुछ फालतू का सामान रखा था, आप उसका दान कर दें। कहावत है कि बूढ़ी गाय गुरां ने दीजे, पुण्य नहीं तो आगी कीजे। कहते हैं, बूढ़ी गाय गुरुओं या ब्राह्मणों को दे दीजिए, पुण्य मिले तो अच्छी बात है और अगर न भी मिले, तो कम-से-कम घर का 'छाती कूटा' तो दूर हुआ।

कठोपनिषद् बताता है कि यज्ञ का आयोजन इसलिए किया जाता है ताकि यज्ञ के बहाने अन्य लोगों की मदद हो जाए। बगैर दान यज्ञ पूर्ण नहीं कहलाता और दान भी श्रेष्ठ वस्तु का किया जाना चाहिए। केवल घी की आहुति से यज्ञ पूरा नहीं होता। मंत्रोच्चार के बाद दान किया जाता है। राजा बलि ने यज्ञ किया, तो उन्होंने भी दान दिया। दानवीर कर्ण ने सुरक्षा-कवच के रूप में जन्म से ही शरीर के अंग के रूप में मिले कर्ण-कुण्डल दान में दे दिए थे। दान देते समय दान की वस्तु का मूल्य नहीं होता। दान की भावना देखी जाती है। भारत की आज़ादी के लिए एक बुढ़िया ने अपने जीवन-भर की मात्र सोलह आने की पूंजी संपूर्णतः दान में दे दी, वहीं किसी सेठ-साहूकार ने हजारों-लाखों के नोट दिए। दान दोनों का ही महत्त्वपूर्ण है। दान देते समय केवल एक ही बात का ध्यान रखो कि जो दिया जाए, वह तुम्हारी श्रेष्ठतम चीजों में एक हो। इतिहास उन्हीं की गाथा गाया करता है, जो अपना श्रेष्ठतम दान देने का साहस रखते हैं।

दान मानवतावादी धर्म का ही दूसरा रूप है। दान से दीन-दुखियों की मदद हो जाती है। महावीर ने संन्यास लिया तो, उससे पहले 365 दिन तक, पूरे एक साल तक दान देते रहे। याचकों और ग़रीबों को रोज़ कुछ-न-कुछ देते रहे। एक गृहस्थ के लिए सबसे सरल कोई धर्म है तो वह है दान। ईश्वर से या तो कुछ माँगो मत और माँगो तो इस तरह कि हे प्रभु, मुझे इतना देना ताकि मैं उसमें से कुछ हिस्सा दान अवश्य कर सकूँ।

दान का मतलब है देना; जो देता है, वह देवता कहलाता है। जो लेता है, वह लेवता कहलाता है। जो न लेता है, न देता है, वह हाथ मसलू कहलाता है। आज तक कोई भी व्यक्ति धरती से गया, तो अपने साथ कुछ नहीं ले गया। सबका सब-कुछ यहीं रह गया। पीछे वाले के लिए छोड़कर जाने की सोचते हो, तो मैं आपसे इतना जरूर पूछना चाहूँगा कि आपके जो पीछे हैं, क्या वे अपाहिज हैं, जिनके लिए आपको छोड़कर जाना पड़ रहा है? कपूत के लिए छोड़कर भी जाओगे, तो कौड़ी-कौड़ी जोड़कर रखे धन को बड़ी बेदरदी से लुटा देगा, क्योंकि उसने कभी कमाने का दर्द उठाया ही नहीं। अगर तुम्हारी संतान सपूत है, तो सपूतों के लिए क्या छोड़कर जाना, वे तो खुद अपने बलबूते खुद भी धनवान हो जाएँगे और तुम्हें भी गौरवान्वित कर देंगे।

मेरी मानो तो आपके पास जो कुछ है, वह सारा-का-सारा अपने बेटे-बेटियों के लिए मत छोड़ जाना। अपने जीते-जी कुछ धर्मार्थ और पुण्यार्थ भी कर लेना। तुम्हारे मरने के बाद पीछे कोई कुछ करेगा, यह उमीद भी मत रखना।

हमने कौन-सा अपने माइतों के नाम पर उनके मरने के बाद कुछ किया है। जब हम ही न कर पाए, तो हमारों से तो उमीद ही मत रखना। आपके पास ज्यादा कुछ पैसा न भी हो, तब भी कम-से-कम प्यासों के लिए एक प्याऊ तो जरूर बनवा जाना। किसी अनाथालय में रहने वाले किसी एक अनाथ बच्चे को गोद लेकर उसके भरण-पोषण की व्यवस्था कर जाना। ऐसे किसी बेसहारा बुजुर्ग के लिए कुछ जिम्मेदारी उठा लेना, जिसके बच्चे उसे दगा दे गए। क्षेत्र तो सौ हैं, खुद ही तय कर लें कि मुझे किस क्षेत्र में आहुति देनी है। असली यज्ञ तो ऐसे ही होता है। हमें तो जीवन को ही ऐसा बना लेना चाहिए कि हमारा जीवन ही यज्ञ बन जाए। हम प्यासों के लिए सरोवर बन जाएँ, पथहारों के लिए तरुवर बन जाएँ, बाहर से संत हों या न हों, पर आत्मा से संत अवश्य बन जाएँ।

कबीर का प्रसिद्ध कथन है :

साईं इतना दीजिए, जामें कुटुंब समाय।  
मैं भी भूखा ना रहूँ, ना कोई भूखा जाय ॥

हे प्रभु! इतना दीजिए कि हमारा भी भरण-पोषण हो और घर आये मेहमान का भी सत्कार हो।

यज्ञ का आयोजन दैवीय कार्य है। इसलिए यज्ञ करने वाला देवता जैसा ही हुआ। मंदिर जाएँ तो एक बात हमेशा याद रखें कि दर्शन करने के बाद बाहर निकलें तो जरूरतमंद को एक रुपया ही सही, कुछ-न-कुछ जरूर दान दीजिए। देने की प्रवृत्ति होनी चाहिए। हाथ हमेशा देने की मुद्रा में होना चाहिए। व्यक्ति के द्वारा हाथों से दिया गया दान और किया गया श्रेष्ठ कर्म ही व्यक्ति का सबसे बड़ा यज्ञ होता है।

एक फ़कीर बादशाह अकबर के यहाँ कुछ पाने की आस में पहुँचा। उस समय बादशाह नमाज़ अदा कर रहा था। नमाज़ पढ़कर बादशाह दोनों हाथ उठाकर खुदा से प्रार्थना करने लगा, 'हे सारे जहान के मालिक! तूने मुझे सब कुछ दे रखा है। एक ही ख्वाहिश है, मेरे ख़जाने को भरा रखना।' फ़कीर ने यह सुना, तो वहाँ से लौटने लगा। बादशाह ने फ़कीर को रवाना होते देखा, तो उसे रोककर पूछा, 'मेरे द्वार से कोई खाली चला जाए, यह मुझे मंजूर नहीं है। बोलो, क्या चाहते हो?' फ़कीर बोला, 'मैं समझता था, तू दाता है; लेकिन मैंने अभी-अभी देखा कि तू तो खुद ऊपर वाले से माँग रहा है। जब माँगना ही है, तो मैं तुझसे माँगने की बजाय क्यों न उसी से माँगूँ जो तेरा ख़जाना भरता है।'

हम देने की प्रवृत्ति रखें। वाजश्रवा के पुत्र उद्दालक ने भी यही किया। यज्ञ पूर्ण हुआ, तो अपना संपूर्ण धन दान में दे दिया। ऋषियों के पास सबसे अधिक क्रीमती चीज गोधन होता है। उद्दालक के पास बहुत-सी गायें थीं। वे उन गायों को ब्राह्मणों को देने लगे। यह देख, उनके पुत्र नचिकेता नृत्य करने लगे। लोग हैरान रह गए। नचिकेता एक ऐसा पात्र हुआ है जिसने मृत्यु तक को नचा दिया। नचिकेता का नाचना एक रहस्य को उजागर करता है।

नृत्य तो हर किसी को आना चाहिए। जिस धर्म में नृत्य का लालित्य न हो, वह नीरस हो जाता है। ध्यान की बजाय भक्ति को इसीलिए आसान माना गया है क्योंकि भक्ति में नृत्य खुद ही छिपा हुआ है। नृत्य से मन की बोझिलता दूर होती है। सुस्ती और आलस्य भाग जाता है। अंतर्मन में सहज ही एकलयता बन जाती है। मैंने नृत्य का प्रयोग करके देखा है। 'मैं' का भाव विलीन ही हो जाता है। आप भी अगर नृत्य करो, तो प्रभु में ऐसे खो जाओ कि न 'मैं' रहे न 'तुम', केवल 'वही' रह जाए। नाचो तो ऐसे नाचो कि मानो मीरा दीवानी हो गई। ऐसे नाचो कि पग घुँघरू बाँध मीरा नाचे।

कभी ध्यान करने बैठो और मन न लगे, तो पहले पन्द्रह मिनट तक गहरे श्वास प्रश्वास का अभ्यास करें। फिर किसी मंत्र की धुन पर नृत्य करें, इससे एकलयता बन जाएगी और ध्यान भी सध जाएगा, अन्यथा ध्यान कठिन हो जाएगा। सो पहले नृत्य या धुन के ज़रिए खुद को लय में ले आओ। इतने लय में कि सुध-बुध न रहे। शरीर का भी स्मरण न रहे। शरीर थक जाए, तो बैठ जाओ। जिस व्यक्ति का शरीर शांत हो चुका है, उसका चित्त भी शांत होने लगेगा।

धर्म को, भक्ति और भजन को, यज्ञ और अनुष्ठान को सरस बनाना है, तो उसमें ताली, थिरकन या नृत्य को जोड़ दो। जिस तरफ आपने कदम बढ़ाए, वह चीज आनन्द दे रही है, तब तो आपका उसका तादात्म्य बैठ जाएगा; अन्यथा सब कुछ नीरस हो जाएगा। जीवन आनन्द के लिए है।

नचिकेता का नाचना एक खास संकेत दे रहा था। नचिकेता कोई मूर्ख नहीं था, कि एक तरफ तो पिता यज्ञ पूरा कर दान-दक्षिणा दे रहे हों, और दूसरी तरफ वह सबके बीच नाचने लगे। इतिहास में ऐसे अनेक लोग हुए हैं जिनके कारण उनके पिता जाने गए। ध्रुव, प्रह्लाद ऐसे ही हुए। नचिकेता का नाम भी इनके साथ लिया जा सकता है। कोई पिता अपने पुत्र के नाम से जाना जाए, तो उस पिता के लिए इससे बड़ी बात और क्या हो सकती है! कोई गुरु अपने शिष्य के कारण



जाना जाए, तो उस शिष्य का शिष्यत्व धन्य है। यह उसके गुरु-तत्त्व की ही मान्यता है।

यज्ञ-समाप्ति पर ब्राह्मण दक्षिणा के रूप में गायें लेकर वहाँ से जाने लगे थे। ऐसे में नचिकेता का नाचना कोई गंभीर संकेत कर रहा था। ब्राह्मणों ने तो ध्यान नहीं दिया; उन्हें जो मिला, उसे सहर्ष स्वीकार किया। लेकिन नचिकेता बूढ़ी-मरियल गायें दान में दी जाती देख शंका में पड़ गया।

कठोपनिषद् बताता है कि नचिकेता ने तब कहा, 'हे पिताश्री!' जो जल पी चुकी हैं, जिसका घास खाना समाप्त हो चुका है, जिनका दूध भी दुह लिया गया है, जिनकी इन्द्रियाँ नष्ट हो चुकी हैं, उन गौओं का दान करने से उनका दाता उन लोकों को प्राप्त होता है जो सुखों से शून्य हैं। ऐसे दान से भला किसे स्वर्ग मिला है?'

नचिकेता भले ही बालक था, लेकिन उसने शास्त्रों का अध्ययन किया था। वह जानता था कि इस तरह की गायों का दान उनके पिता को स्वर्ग-प्राप्ति में मदद नहीं कर सकता। ऐसा करके पिताश्री नरक के ही भागी होंगे। इसलिए पिता को सावधान करने की दृष्टि से नचिकेता आवेश में आए और नृत्य कर उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास किया।

ब्राह्मण तो दान पाकर उसी में संतुष्ट हो जाता है जो उसकी झोली में आ जाता है। उनके भीतर ज़्यादा तृष्णा नहीं होती। ब्राह्मण संतोषी जीव होते हैं। जो मिल गया, उसमें राजी रहते हैं। कहते हैं, गुरु द्रोणाचार्य की पत्नी कृपी ने उनसे कहा कि वे पुत्र अश्वत्थामा के लिए दूध की व्यवस्था करें। उन दिनों उनके पास कोई गाय न थी। उन्हें याद आया कि उनका सखा एक राज्य का राजा बन गया है। उसने बचपन में उनसे कहा था कि जब मैं राजा बनूँगा, तो मेरा आधा राज्य तेरा होगा। द्रोणाचार्य उसके पास गए और बचपन की बात याद दिलाई। मित्र पहले तो हँसा और फिर कहने लगा, 'तू आधे राज्य की बात करता है, मैं तो एक गाय भी न दूँगा।' द्रोणाचार्य मायूस हुए और कृपाचार्य के पास पहुँचे। उस दौरान पांडव और कौरव वहाँ खेल रहे थे। खेल के दौरान उनकी गेंद किसी कुएँ में जा गिरी। द्रोणाचार्य ने गेंद पर तिनका-दर-तिनका मार कर गेंद बाहर निकाल दी। इसके बाद द्रोणाचार्य कौरवों और पांडवों को धनुर्विद्या सिखाने लगे। विद्या पूरी होने पर वे अपने शिष्यों से गुरु-दक्षिणा के तौर पर अपने उसी मित्र का राज्य जीतने को कहते हैं। अर्जुन और अन्य पांडव उस राजा को द्रोणाचार्य के चरणों में लाकर डाल देते हैं।

द्रोणाचार्य अपने मित्र को कहते हैं कि मैं यहाँ का राजा हूँ, पर मैं अपना यह राज्य पुनः तुझे देता हूँ। वे उस जीते हुए राज्य में से केवल एक गाय लेते हैं और इस तरह अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते हैं। द्रोणाचार्य संतोषी थे, और संतोष ही ब्राह्मण की सबसे बड़ी पूँजी हुआ करती है।

यज्ञशाला से ब्राह्मण दान लेकर जाने लगे, तो नचिकेता के मन में श्रद्धा का आवेश उमड़ने लगा और वह उसी श्रद्धा से आपूरित होकर नाचने लगा। जैसे सावन के बादलों को देखकर मोर नाचने लगता है और उसे देख लोगों का मन प्रफुल्लित हो उठता है, उसी तरह श्रद्धा उमड़ती है तो नास्तिक के भीतर भी कहीं आस्तिकता जन्म ले लेती है। आपने देखा होगा, कई बार दीक्षा-समारोह में लोग इतने भावुक हो जाते हैं कि उनके भीतर भी वैराग-भाव जन्म लेने लगता है। तब वैरागी तो नाचता है और लोगों की आँखों में आँसू होते हैं। यह सब त्याग की महिमा है।

मंदिरों की प्रतिष्ठा के दौरान के दृश्य भी कुछ ऐसे ही होते हैं। लोग यूँ तो पैसे खर्च करने में कंजूसी करते हैं लेकिन प्रतिष्ठा के दौरान लोग एक-एक चढ़ावे के लिए बड़ी-से-बड़ी बोली लगाने लगते हैं। यह क्या है? भावना और श्रद्धा का ही तो विस्तार है। श्रद्धा अर्थात् भावों का उद्वेग। व्यक्ति के जीवन में दो ही तरह से त्याग की भावना आती है - या तो वह श्रद्धा से सराबोर हो जाता है या फिर उसे जीवन की नश्वरता का भान हो जाता है। इसी से प्रेरित होकर कोई दान करता है, कोई मंदिर, अस्पताल, सराय बनाता है। कोई यज्ञ का आयोजन करता है।

मैं प्रेम-मार्ग का पथिक हूँ, इसलिए श्रद्धा को महत्त्व देता हूँ। मानव ऐसा प्राणी है, जो पत्थर में भी भगवान स्थापित कर देता है। पत्थर तो पत्थर ही रहेगा लेकिन जिसने मान लिया, उसके लिए हर जगह भगवान प्रकट हो जाते हैं। इंसान अरिहंत के नाम पर बनी मूर्ति को इसीलिए पूजने लगता है क्योंकि उसने उस पत्थर में अरिहंत को स्थापित कर लिया। जहाँ प्रेम है, वहाँ श्रद्धा है। श्रद्धा का जन्म दिल में होता है। श्रद्धा का जन्म होते ही हमारे हाथ देने की मुद्रा में आ जाते हैं, भले ही वह पैसा हो या प्रेम। यह श्रद्धा ही तो है जिसके कारण हमारे यहाँ रोजाना मंदिरों में पूजा के लिए हज़ारों किलो घी दीपक जलाने में काम लिया जाता है। आदमी घर की रसोई में रोटी पर घी लगाने में कंजूसी भले ही कर ले, लेकिन मंदिर के दीपक के लिए हर तरह की आहुति देने को तैयार हो जाता है।

ऐसे में नचिकेता के मन में श्रद्धा के भाव उमड़े और वह नाचने लगा, तो इसमें आश्चर्य कैसा! नचिकेता ने देखा कि उनके पिता ब्राह्मणों को गायें दे रहे हैं,

तो वे श्रद्धा से भर उठे। गाय हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग रही हैं। गाय को धन माना गया है। भारतीय संस्कृति का आधार रही है गाय। ज़माना बदल गया, अब गाय पालना लोगों ने छोड़ दिया; इसलिए गायें कत्लखानों में पहुँचने लगी हैं। आज अगर गायें बची हुई हैं तो गौशालाओं की बदौलत और गौशालाएँ चल रही हैं वैश्य लोगों की बदौलत। ब्राह्मण तो गायों के मामले में मौन हो गए हैं। आज भी एक-एक ब्राह्मण एक-एक गाय का जिम्मा ले ले, तो गाय का कटना थम जाए। गाय को यँ ही कोई मामूली मत समझ लेना। गाय में ब्रह्मा का अंश माना गया है। चौरासी लाख देवताओं का उसमें अंश है।

आज के ज़माने में गाय रखना हँसी-खेल नहीं है। लोगों के पास घरों में गाय के लिए जगह ही नहीं बची है। लोगों के पास अन्य कामों के लिए तो ख़ूब जगह है, लेकिन गाय को रखने की जगह नहीं है। ज़माना तो ऐसा आ गया है कि लोग अपने माँ-बाप तक को साथ नहीं रख पा रहे हैं। उनके लिए वृद्धाश्रम बनाए जा रहे हैं। ऐसे में गाय की तो बिसात ही क्या है? देश का वैश्य समाज गायों के संरक्षण के लिए निश्चित रूप से काफ़ी काम कर रहा है। राजस्थान में एक अकेली ऐसी गौशाला है जिसके तहत डेढ़ लाख गौएँ पलती हैं। और यह गौशाला है पथमेड़ा की। इसको चलाने वाले जो भी महाराज हैं, नाम तो मुझे नहीं मालूम, लेकिन मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ। वे महाराज मुझे ज़िंदगी में जब भी मिलेंगे, मैं उनके पाँवों की धूल को अपने माथे पर ज़रूर लगाऊँगा। जो महाराज डेढ़ लाख गौओं को पालते हैं, वे खुद एक तीर्थ हैं। उनमें भगवान कृष्ण का अंश है।

नचिकेता पहले तो गायों को दान में दिए जाते देख प्रसन्न हुआ, उसके पाँव थिरकने लगे; लेकिन जब उसे पता चला कि पिताश्री ऐसी गायें दान में दे रहे हैं जिन्होंने दूध देना बंद कर दिया है, जो अशक्त हो चुकी हैं, तो वे बड़े व्यथित हुए। दान उसी चीज़ का दिया जाना चाहिए जो उपयोगी हो। कई महिलाएँ अपनी नौकरानी को साड़ी देती हैं लेकिन ऐसी साड़ी, जिसे पहनकर उनका मन भर चुका है, ऐसी साड़ी जिसे पहनकर वे कहीं जा नहीं सकतीं, अपना अपमान महसूस करती हैं; तो उस साड़ी को देने का क्या अर्थ है? तब आप साड़ी नहीं, अपना अपमान अपनी नौकरानी को दे रही हैं। इसे दान नहीं कहा जा सकता। व्यर्थ की वस्तुओं के दान का कोई अर्थ नहीं होता। ऐसा दान स्वर्ग नहीं, नर्क का रास्ता खोलता है। बचा हुआ बासी खाना किसी को दिया, तो क्या दिया? यदि आपने किसी गरीब बच्चे को बासी पाव रोटी दी है, तो आप उसे दान कैसे कह सकते हैं? हकीकत में आपने दान नहीं दिया, अपनी ओर से किसी गरीब को बीमारी

बाँटी है। किसी को कुछ देना जरूरी नहीं है, पर अगर दो तो हमेशा अच्छी चीज दो। अगला भी याद रखेगा किसी सेठ ने कुछ दिया।

ईश्वर से प्रार्थना करो कि वह हमारे हाथ को हमेशा देने की मुद्रा में रखे। हम भले ही कम कमाएँ या ज्यादा, लेकिन हमारी देने की प्रवृत्ति होनी ही चाहिए। दस कमाते हो तो चवन्नी दो, सौ कमाते हो तो दो रुपए दो, पर दो जरूर। गुरु विद्या देते हैं, इसलिए उनके प्रति श्रद्धा उमड़ती है। देवता शब्द बना ही देने के कारण है। जो देता है, वह देवता। जिसके पास जो है, वह बाँटे। धनवान धन बाँटे और कोई ज्ञानी है तो अपना ज्ञान बाँटे। नहीं बाँटोगे, तो धर्म पीछे छूट जाएगा और ज्ञान है तो ज्ञान उस व्यक्ति के साथ चला जाएगा। इसलिए ज्ञान है, तो ज्ञान का विस्तार करो। ज्ञान की ऐसी ज्योति जलाएँ, जो साल-दर-साल लोगों को रोशनी दिखाए और कुछ करना है तो नेत्रदान करें, रक्तदान करें। जीते जी रक्तदान, मरणोपरांत नेत्रदान।

एक और दान है औषधि-दान। बहुत से लोग सिर्फ इसलिए इलाज नहीं करवा पाते क्योंकि उनके पास महँगी दवाएँ खरीदने के लिए पैसे नहीं होते। ज़रा सोचिए, यदि कोई सामान्य व्यक्ति मात्र चार-पाँच हजार रुपए महीना कमा रहा है और उसके माता-पिता या दादा-दादी को हार्ट की बीमारी हो गई, तो वह उन्हें दवा कैसे दिला पाएगा? जितना वह कमाता है, उतना तो दाल-रोटी में ही खर्च हो जाता है। ज़रा सोचो, अगर कोई व्यक्ति आपके यहाँ काम करता है, आप उसे चौकीदारी के तीन हजार रुपए महीने भी देते होंगे, पर इससे तो वह अपनी दाल-रोटी की व्यवस्था बैठा पाता है। उसके भी आखिर बच्चे हैं, उन बच्चों की भी कुछ इच्छाएँ होती हैं। उनकी भी तमन्ना होती है कि कभी कुल्फी खाएँ, हैप्पी बर्थ डे पर केक न सही, खीर का स्वाद तो जरूर लें। क्या हम लोग उनकी इन इच्छाओं के बारे में कभी सोचते भी हैं? आप दुनिया को दान मत दो, लेकिन जो कर्मचारी आपके यहाँ काम करते हैं, दान के भाव से ही सही, उनका सही भरण-पोषण हो जाए, इतना-सा धर्म कर लो तो भी काफी है।

मेरे निवेदन पर कुछ मित्रों ने मिलकर संबोधि सेवा-परिषद में दवा बैंक तैयार किया है। ये लोग बड़ी बीमारी के इलाज के लिए महँगी दवाएँ चालीस प्रतिशत कम मूल्य पर उपलब्ध करवाते हैं। किसी के काम आने का यह भी एक प्रभावी तरीका है। यह धर्म का सहज और सरल रूप है। अब हम लोगों के लिए सहज में यह तो संभव नहीं है कि हम कोई बड़ा अस्पताल बनाएँ, पर कम मूल्य पर किसी जरूरतमंद को दवा तो दिलवा ही सकते हैं। दान के मामले में हमारी प्राथमिकताएँ तय होनी ही

चाहिए। कीर्ति-दान अच्छी बात है लेकिन ज्ञान-दान, औषधि-दान, मरते प्राणी को जीवन-दान सबसे बड़ा धर्म है।

अब लोगों की समझ में आने लगा है कि दुनिया को दया और अहिंसा के धरातल पर ही जीवित रखा जा सकता है। लोग मांसाहार त्याग कर शाकाहार की तरफ लौट रहे हैं। हजारों-हजार लोगों का हृदय-परिवर्तन हुआ है। उनमें श्रद्धा के भाव जगे हैं। हम शाकाहार अपनाएँ, इंसानियत का धर्म निभाएँ। किसी प्राणी को बचाएँगे, तो उसकी दुआ जरूर लगेगी।

कहते हैं, एक आदमी ने एक हरिण के बच्चे को पकड़ लिया। उसकी माँ उसे बचाने के लिए उस व्यक्ति के पीछे दौड़ने लगी। उसकी आँखों में आँसू थे। उस व्यक्ति को जैसे कोई भीतर से कहता प्रतीत होने लगा कि इस हरिण को छोड़ दे, उसकी माँ तुझे दुआ देगी और उससे तेरा भला होगा। तू रहम करेगा, तो खुदा भी तुझ पर रहम करेगा। वह हरिण के बच्चे को छोड़ देता है, उसकी माँ उसे भीगी आँखों से दुआएँ देती लौट जाती है। उस रात वह आदमी सपना देखता है और सपने में उसे दिखाई देता है कि वही हरिण की माँ उसे दुआएँ दे रही है कि एक-न-एक दिन तुम्हें इस दया का फल जरूर मिलेगा। आगे जाकर यही व्यक्ति गजनी का बादशाह हुआ।

यह दुनिया दया, प्रेम और करुणा के दम पर ही जीवित रह पाएगी। दया और धर्म के पारस्परिक सहयोग से ही लोगों का भला होगा। उद्दालक यज्ञ करने के बाद दान-दक्षिणा के रूप में अशक्त और बीमार गायें देने लगे, तो नचिकेता का परेशान होना उचित ही था। उसके भीतर करुणा के भाव उमड़ पड़े। वह परेशान हो उठा। उसे लगा कि जैसे पुत्र गलती करे, तो पिता का दायित्व होता है कि वह उसे सावधान करे। यहाँ तो पिता गलती कर रहे हैं, तो क्या उसका कुछ दायित्व नहीं होता? हो सकता है कि तब नचिकेता के द्वारा जो कुछ कहा जाता है, वह बड़ों की नज़र में छोटे मुँह बड़ी बात कहलाएगी, लेकिन पिता को ठोकर खाने से बचाना, गड्डे में गिरने से बचाना उसे अपना धर्म लगा; इसलिए उसके धर्म ने उसे उत्प्रेरित कर डाला कि वह कुछ कहे। वह सचमुच भीतर से बड़ा परेशान हो उठा। आखिर नचिकेता की परेशानी क्या रंग लाई, उसने ऐसा क्या किया जिससे उसके भीतर की करुणा को विस्तार मिला।



# 3

## धर्म चाहता है कुर्बानी

धार्मिक जीवन जीने के दो स्तर हैं। पहला स्तर है - संसार में प्रवेश करके धार्मिक जीवन जीना। दूसरा स्तर है - संन्यास धारण करते हुए धर्म की बारीकियों को जीना। जो लोग संसार में प्रवेश कर धर्म को जीने का प्रयत्न करते हैं, उनके लिए पहला रास्ता है दान और दूसरा है पूजा। संन्यास लेने वालों के लिए दो मार्ग हैं - स्वाध्याय और ध्यान। हर मार्ग के अपने अर्थ हैं। कोई व्यक्ति यदि गृहस्थ-जीवन जीता है, तो उसके लिए सीधा और सरल रास्ता है - दान और पूजा। संत-जीवन के लिए स्वाध्याय और ध्यान मुख्य आधारशिला हैं।

कहते हैं कि गौतमवंशी वाजश्रवा के पुत्र ऋषि उद्दालक ने विश्वजित-यज्ञ किया। यह यज्ञ देवताओं को प्रसन्न कर उनसे किसी फल की चाह से किया जाता है। इसमें अपना सर्वस्व दान करने का विधान होता है। उद्दालक ने अपना सारा धन दान-दक्षिणा के रूप में ब्राह्मणों को दे दिया। यज्ञ का आयोजन तभी सफल माना जाता है, जब पूर्णाहुति के बाद दान-दक्षिणा दी जाए। यज्ञ करना एक तरह से दैवीय शक्तियों की पूजा करना ही होता है। दान अपनी ओर से संगृहीत वस्तुओं का किया जाता है।

प्रत्येक व्यक्ति में दान की प्रवृत्ति अनिवार्य रूप से रहनी चाहिए। स्वार्थ में उलझा व्यक्ति धार्मिक नहीं हो पाएगा। इसके विपरीत इंसान के काम आने वाला व्यक्ति निश्चित रूप से धार्मिक होगा। एक दूसरे के काम आने की दृष्टि से ही दान की परंपरा स्थापित हुई है। जब किसी के मन में श्रद्धा का आवेग जन्म लेता है, तो इंसान अपने स्वार्थों से ऊपर उठकर सोचने लगता है, स्वार्थों को त्यागने लगता है, वह दूसरों के काम आने लगता है। अपने निजी स्वार्थों का त्याग करना ही सच्चा त्याग है। ऐसे में यज्ञ के बाद दान देना उसी त्याग की परंपरा का सम्मान करना है। हर कोई व्यक्ति अर्जन तो जिंदगी-भर करता है, लेकिन जीवन में विसर्जन का संस्कार होना हमारी संस्कृति की बुनियादी सीख है।

दान का अर्थ है देना। प्रतिदिन कुछ-न-कुछ दान देने की प्रवृत्ति होनी चाहिए। दानवीर कर्ण के जीवन से प्रेरणा ली जानी चाहिए। सूर्य-पुत्र होने के बावजूद उसे सूत-पुत्र के रूप में जीना पड़ा। उनका परिचय इसी तरह दिया जाता था, लेकिन उनकी दानवीरता के कारण ही लोग उन्हें सदियों बाद भी याद करते हैं, आने वाली पीढ़ियाँ भी उन्हें याद करती रहेंगी। मैं कर्ण की दानवीरता से निजी तौर पर प्रभावित हूँ। मैंने कर्ण से ही जीवन की यह सीख पाई है कि यदि उनके द्वार पर आया हुआ कोई याचक जीवन भी माँग रहा है, तो वह उन्हें निराश नहीं लौटाते। मैं भी अपने यहाँ से किसी को निराश या खाली हाथ लौटाना पसंद नहीं करता। मैं तो आपसे भी कहूँगा कि फूल-पांखुरी ही सही, कुछ-न-कुछ हमेशा आने वालों की झोली में देते रहिए। केवल नाम के या मुफ्त के सेठ मत कहलाइए। हकीकत में सेठई रखिए, दिलदारी रखिए। आप इस हाथ देंगे, वह उस हाथ लौटाएगा। कहते हैं, तुम एक पैसा दोगे, वह दस लाख देगा। ठीक है, अपने को वापस पाने की तमन्ना नहीं है, होनी भी नहीं चाहिए; फिर भी हमें किसी-न-किसी रूप में तो दाता होना ही चाहिए। कर्ण जीवन दे सकता है, तो हम दो-चार पंखुरियाँ तो दे ही सकते हैं।

कहते हैं, इन्द्र को अपने पुत्र को बचाने के लिए कर्ण की शरण में जाना पड़ा। सूर्य-पुत्र कर्ण को उसके पिता ने जन्म के साथ ही उसकी रक्षा के लिए एक ऐसा कवच दिया, जो किसी भी तरह के युद्ध में उसकी रक्षा करने में सक्षम था। सूर्य भगवान ने कर्ण को जन्म से ही कानों में कुण्डल और छाती पर कवच प्रदान किया था। यह कवच और कुण्डल उनके शरीर का ही हिस्सा थे। इन्द्र को लगा कि महाभारत के युद्ध में कर्ण को कोई पराजित नहीं कर सकेगा क्योंकि कुण्डल और कवच उसकी रक्षा करते हैं। सभी जानते थे कि कर्ण हर रोज सुबह पूजा करने के बाद उनके यहाँ आए प्रथम व्यक्ति को मुँह-माँगा दान दिया करते थे। यह उनकी प्रतिज्ञा थी और उसे वे किसी भी स्थिति में नहीं तोड़ते थे। इसलिए इन्द्र ने ब्राह्मण का रूप बनाया और अलसुबह कर्ण से माँगने चले गए। कर्ण को बीती रात में सूर्यदेव ने सचेत कर दिया था कि कल सुबह जो पहला व्यक्ति तुमसे कुछ माँगने आए, उससे सचेत रहना, वह तुमसे तुम्हारे रक्षा कवच को माँगने वाला है। कर्ण उन्हें आश्चस्त करते हैं कि पिताश्री! आप चिंतित न हों, मैं सावधान रहूँगा; लेकिन अगर कोई माँगने आएगा तो दान देने का अपना प्रण नहीं तोड़ सकता।

इन्द्र ब्राह्मण के रूप में कर्ण के यहाँ पहुँचे थे। रूप तो ब्राह्मण का था, लेकिन कर्ण उन्हें पहचान गए। कर्ण ने बिना कोई संकोच किए इन्द्र को अपनी सबसे अनमोल चीज दे डाली। कर्ण के लिए किसी को अपने द्वार से निराश लौटाना संभव नहीं था। दुनिया में हर कोई देवताओं से माँगने के लिए मचला करता है, पर यहाँ तो पासा कुछ उलटा ही है; यहाँ तो देने वाला देवता स्वयं इंसान से माँगने के लिए उसके द्वार पर याचक बना

खड़ा है। यह सब कुछ दान के प्रति उनकी अगाध आस्था का ही परिणाम है कि सदियाँ बीत गईं, कर्ण को आज भी लोग सम्मान से याद करते हैं। जन्म के साथ ही जो अछूत और उपेक्षित रहा, वह अपनी दानशीलता के कारण महान् बन गया।

कोई भी कर्म यदि पूर्णता से किया जाए, तो वह कर्म ही इंसान को यशस्वी और अमर बना देता है। इसलिए जीवन में दान की प्रवृत्ति होनी चाहिए। दान देने का संस्कार होना चाहिए। एक गरीब बच्चे के द्वारा अपने द्वार पर आए किसी तपस्वी संत को उल्लास-भाव से खीर दिए जाने से वह इतने बड़े पुण्य का भागी हुआ कि वही बच्चा आगे जाकर संसार का सबसे धनाढ्य सेठ शालिभद्र बना। जरूरी नहीं है कि देने के नाम पर हम लाखों रुपयों का दान ही करें। अरे, चौराहे से गुजरते किसी नेत्रहीन को रास्ता पार करवा देना, किन्हीं दो बच्चों को पढ़ा देना, कार पार्किंग करने जाओ तो वहाँ किसी बुजुर्ग को गाड़ी खड़ा करने के लिए अपनी जगह दे देना – ये सब भी दान ही हैं। दान के हजार रूप हो सकते हैं। किसी को समय देना भी दान ही है। भोजन कराना, प्यासे को पानी पिलाना, गरीब बच्चे की फ़ीस जमा कराना – दान के ही अलग-अलग रूप हैं। अरे, जब भोजन बनाओ तो एक मुट्ठी आटा अतिरिक्त रूप से भिगो लिया करो। हो सकता है, उसकी दो रोटियाँ किसी भूखे के काम आ जाएँ। अरे, और कोई न मिले तो किसी गाय या जीव-जंतु को ही खिला दो। कुल मिलाकर देने का संस्कार होना चाहिए। हम सबके काम आएँ। चौबीस घंटे में कोई भी पल हो, ऐसा होना चाहिए कि कुछ देने का सौभाग्य मिले। जिस दिन हाथ से कुछ दिया न जा सके, तो समझना, दिन तो बीता लेकिन उसकी कोई सार्थकता नहीं हुई।

उद्दालक ने दान दिया लेकिन उन्होंने दान में ऐसी गायें दीं जो किसी काम की नहीं थीं। बीमार और अशक्त, दूध न देने वाली गायें। उद्दालक ब्राह्मण थे, इसलिए उनके पास धन के नाम पर गाएँ ही थीं। ऐसी गायें जो बूढ़ी, अनुपयोगी थीं, उद्दालक ने दान कीं। इसे देख नचिकेता शंकित हो उठे थे। धर्म के दो चरण हैं – यज्ञ और दूसरा दान। यज्ञ किया, अच्छी बात है, श्रेष्ठ काम किया; लेकिन दान भी श्रेष्ठ वस्तु का ही देना होगा। यज्ञ तो किया बहुत महान्, लेकिन यज्ञ के बाद दान किया मरियल। नचिकेता की इस यज्ञ घटना को कोई मामूली न समझें। जो लोग भी दान करते हैं, उन्हें इस घटना से सीख लेना चाहिए कि दान करो, तो कैसा करो। दान यदि हल्का होगा, तो किया गया महान् यज्ञ भी हल्का हो गया।

नचिकेता चिंतन करने लगा कि इस तरह के दान से तो उसके पिता स्वर्ग के सुखों से वंचित रह जाएँगे। यज्ञ के उद्देश्य की प्राप्ति न होगी। सच्ची संतान वही होती है जो सोचे कि उसके पिता जो भी कार्य करें, उससे उनकी कीर्ति बढ़े, उन्हें स्वर्ग का सुख मिले। नचिकेता विचार करने लगा, क्या किया जाए, पिताजी को कैसे समझाया जाए? पुत्र अपने पिता को सीख देता अच्छा नहीं लगेगा, लेकिन उसे अपने पिता की कीर्ति की



चिंता थी। आखिर उसने पिता से कड़वा संवाद करना उचित समझा। नचिकेता ने पिता से कहा कि आपको श्रेष्ठ दान करना है। आप मुझे श्रेष्ठ मानते हैं तो जरा बताएँ, आप मुझे किसको दान देंगे ? यह सुनकर उद्दालक आवेश से भर उठे और उन्होंने जो कुछ कहा, वह पहले कभी किसी पिता ने अपने पुत्र को न कहा होगा।

कठोपनिषद कहता है, नचिकेता ने पिता से पूछा, 'हे पिताश्री ! आप मुझे किसको देंगे ? पिता ने एक बार में उत्तर न दिया। नचिकेता ने फिर पूछा। वे निरुत्तर रहे। तीसरी बार फिर नचिकेता ने सवाल पूछा तो उद्दालक ने कहा, 'जा मैं तुझे मृत्यु को देता हूँ।'

नचिकेता ही नहीं, वहाँ मौजूद सभी लोग यह सुनकर स्तब्ध रह गए होंगे, पर अब क्या हो सकता था। वाणी रूपी तीर कमान से निकल चुका था। इसीलिए कहा गया है, जो कुछ बोला जाए, पहले उसे अक्ल की तराजू पर तौल लिया जाए। बाद में पछताने से कुछ भी हाथ नहीं आता। मनुष्य तीन तरह के होते हैं - पहले वे, जो सोच नहीं सकते। दूसरे वे, जो सोचना नहीं चाहते और तीसरे वे, जिनमें सोचने का साहस नहीं होता। आप किसी सोए व्यक्ति को तो जगा सकते हैं, लेकिन जो व्यक्ति सोने का ढोंग कर रहा है, उसे नहीं जगाया जा सकता। जो सोच ही नहीं सकते, वे मूर्ख होते हैं। जो सोचना ही नहीं चाहते, वे अंधविश्वासी होते हैं। जिनमें सोचने का साहस नहीं होता, वे गुलाम होते हैं। वे किसी और के नहीं, अपने ही गुलाम होते हैं। श्रीमद् राजचन्द्र का प्रसिद्ध वचन है, 'कर विचार तो पाम' - विचार करोगे तो पाओगे। किसी बिन्दु पर विचार करोगे, तो यह तय है कि परिणाम भी आएगा। नचिकेता ने सोचा, यज्ञ पूर्ण हो गया। पिता को कैसे कहूँ कि वे जो गायें दान में दे रहे हैं, उससे उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होगी।

नचिकेता ने आखिर साहस करके कह दिया, 'पिताश्री, आप ये जो गायें दान में दे रहे हैं, ये अनुपयोगी हैं। इससे आपको यज्ञ का फल कैसे मिलेगा ? ये मरियल गायें क्यों दान में दे रहे हैं ? इससे तो आपको स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होगी।' पिता दान करते रहे। गौर नहीं किया। नचिकेता ने दूसरी बार उन्हें याद दिलाया। तीसरी बार फिर कहा कि पिताजी, ऐसा करने से यज्ञ अधूरा कहलाएगा। पंडितों के बीच बार-बार कहे गए पुत्र के शब्द पिता को आहत कर गए। फिर भी उन्होंने खुद को संयमित रखते हुए नचिकेता को समझाने का प्रयास किया, कहने लगे, 'सर्वश्रेष्ठ तो तुम भी हो, क्या तुम्हें भी दान कर दूँ !' नचिकेता ने कुछ पल विचार किया होगा। मौन रहकर मूल्यांकन किया होगा। पिता की कीर्ति बढ़ाने के लिए खुद का बलिदान भी करना पड़े, तो यह पुत्र तैयार है। पुत्र तो ऐसे-एसे हुए हैं कि पिता से भी आगे निकल गए। पिता के लिए उन्हें कुछ करना पड़ा, तो पीछे नहीं हटे।

ययाति ने सौ साल पूरे करने के बाद अपने पुत्र से कहा कि अभी जीवन जीने की मेरी तृष्णा नहीं मिटी, मैं और जीना चाहता हूँ। मौत ने उससे जीवन माँगा, तो उन्होंने मौत से सौदेबाजी की। कहने लगे, 'मुझे अभी और जीना है, बोलो क्या कीमत है ?'

मौत पहले तो राजा की नादानी पर हँसी। फिर उसने कहा, 'तुम्हारे बदले तुम्हारे घर का कोई और व्यक्ति अपनी आयु दे दे, तो मैं उसका यौवन तुम्हें दे सकती हूँ।' ययाति ने इधर-उधर देखा, कोई तैयार न हुआ। अचानक उनका सबसे छोटा पुत्र उठा और कहने लगा, 'मैं अपनी आयु देता हूँ। यदि मेरा जीवन दान करने से मेरे पिता की उम्र में बढ़ोतरी होती है, तो मेरे लिए इससे बड़ा सौभाग्य और क्या होगा! एक पुत्र के जीवन की सार्थकता इसी में है कि वह अपने माता-पिता के काम आए।'।

श्रवणकुमार को लोग आज भी याद करते हैं। आप यदि दशरथ हैं, तो यह कोई उल्लेखनीय बात नहीं है, पर यदि आप राम हैं, तो यह अवश्य इतिहास में दोहराने जैसी बात हुई। श्रवणकुमार नेत्रहीन माता-पिता को कंधे पर बिठाकर तीर्थ-यात्रा पर निकलते हैं। राह में एक जगह उन्हें प्यास लगती है। श्रवणकुमार पानी लेने जाता है। श्रवणकुमार दशरथ के तीर का शिकार हो जाता है। वह प्राण छोड़ते-छोड़ते महाराज दशरथ से आग्रह करता है कि वे उसके प्यासे माता-पिता तक पानी का यह लोटा पहुँचा दें। मैं अपने माता-पिता को अड़सठ तीर्थों की यात्रा तो पूरी नहीं करवा पाया, पर उन्हें प्यासा छोड़कर जाना मेरी आत्मा को गवारा नहीं। ऐसे होते हैं पुत्र।

नचिकेता भी ऐसे ही थे, उन्होंने पिता से कहा, 'आप मुझे सर्वश्रेष्ठ मानते हैं तो मेरा भी दान कर दें। यह भी बता दें कि मुझे आप किसको दान में देंगे?' पिता आवेश में आ गए और कहने लगे, 'जा मैं तुझे मृत्यु को देता हूँ, यमराज को देता हूँ।' किसी भी पिता के मुख से अपने पुत्र के प्रति कल्याणकारी शब्द ही निकलते हैं। लेकिन यहाँ कुछ विपरीत बात हो गई। पिता सब कुछ सहन कर लेता है, लेकिन पुत्र द्वारा दिए गए उपदेश को स्वीकार नहीं करता। उनके अभिमान को ठेस लगती है।

ऐसा न करें। अपने-आप को जीवन-भर विद्यार्थी बनाकर रखेंगे तो सीखेंगे। दुश्मन से भी सीख मिले, तो स्वीकार करनी चाहिए। राम ने रावण के अंत-समय में लक्ष्मण को उनके पास ज्ञान लेने भेजा था। ज्ञान किसी छोटे बच्चे से भी मिले तो ले लेना; इनकार मत करना। हर स्थान पर गुरु मिल जाएँगे; बस अपने भीतर शिष्य बनने की कला को ज़िंदा रखना। अंग्रेजी की एक प्यारी-सी कहावत है : 'व्हेन स्टुडेंट इज़ रेडी, टीचर विल कम' जब तुम सीखने को तैयार होते हो, तभी जीवन में शिक्षक का आगमन होता है।

पुत्र ने पूछ ही लिया कि आप मुझे किसको दान में देंगे? उद्दालक ने भी आवेश में कह दिया, 'जा मैंने तुझे यमराज को दान दिया।' पिता को क्रोध में देखकर भी नचिकेता शांत रहा। क्रोध में व्यक्ति अपना तो नुकसान करेगा ही, दूसरों का भी नुकसान करेगा। क्रोध बड़ा हरामी है। वह समुद्र की तरह बहरा होता है। उसके कान नहीं होते, केवल जुबान होती है। गुस्सा केवल बोलता है, सुनता कुछ नहीं। एक बार का गुस्सा ज़िंदगी भर का ज़ख्म दे जाता है।

जीवन में अधिकांश काम ऐसे होते हैं जिन्हें बहुत सोच-समझकर करना चाहिए। क्रोध भी उनमें से एक है। कोई शराब पी ले, तो उसे होश कहाँ रहता है। क्रोध करने वाले को भी होश नहीं रहता। क्रोध जिसे भी आएगा, उसका होश पिछले दरवाजे से भाग जाएगा। वह अपनी मर्यादा भूल जाएगा। क्रोध में रावण ने अपने भाई विभीषण को घर से निकाल दिया। परिणाम यह हुआ कि उसे राम के हाथों मरना पड़ा। उसने भाई को घर से निकालकर अपने सर्वनाश को आमंत्रण दे दिया था। अगर रावण अपने घमंड और गुस्से को जीतना जानता होता, तो रामजी तो क्या, दुनिया में किसी की ताकत नहीं थी जो रावण को उड़ा सके। कोई यह मत समझना कि रामजी ने ब्रह्मास्त्र से रावण को मारा होगा। राम तो निमित्त मात्र हैं। रावण की असली मृत्यु तो उसी दिन ही हो गई थी, जिस दिन उसने घमंड में आकर सती का हरण किया, गुस्से में आकर मर्यादा-पुरुषोत्तम की खिल्लीयाँ उड़ाईं। रावण में अगर विनम्रता का एक ही गुण आ जाता, गुणीजनों का सम्मान करने का अगर यही एक सद्भाव पैदा हो जाता, तो आज दुनिया में रावण के पुतले नहीं जलते; राम की तरह रावण की भी इज्जत होती। दुनिया में कोई दूसरा किसी को नहीं मारता, आदमी अपने छोटे कामों के चलते मौत को दावत देता है। माना कि हमसे मोह-ममता नहीं छूटती, पर गुस्सा और गाली तो छोड़ी जा सकती है।

बादशाह हारून रशीद की कहानी हमें कुछ सीख देती है। कहते हैं, वे दरबार लगाए बैठे थे। सहसा उनका पुत्र वहाँ आया। कहने लगा, 'मुझे अमुक सेनानायक ने अपशब्द कहे, उसे दण्ड दिया जाए।' दरबार में सन्नाटा छा गया। बादशाह ने सभासदों पर नजर डाली। उनकी आँखों में प्रश्न था कि क्या किया जाए? एक सभापति खड़ा हुआ और कहने लगा, 'जिसने राजकुमार को अपशब्द कहे हैं, उसे फाँसी दे दी जाए। दूसरे ने कहा, 'ऐसे गुस्ताख की जुबान काट ली जाए।' तीसरे ने कहा, 'उसे हाथी के पांव के नीचे कुचलवा दिया जाए।' बादशाह ने सबकी सुनी और कुछ देर बाद उन्होंने राजकुमार से कहा, 'जिसने तुम्हें अपशब्द कहे हैं, तुम उसे माफ कर सको, तो बहुत बड़ी बात होगी। ऐसा नहीं कर सकते तो जाओ, तुम भी उसे वही अपशब्द कह आओ, बात बराबर हो जाएगी। पर ये विचार कर लेना कि क्या गाली निकालना तुम्हें शोभा देगा?'

गुस्से का निमित्त उपस्थित हो जाने पर भी खुद को शांत रखना, यही जीवन की सफलता है। लोग तभी तक शांत रह सकते हैं, जब तक अशांति का निमित्त नहीं बनता। अशांति का निमित्त बन जाने पर भी कोई शांत रहता है, तो सचमुच वह संत है। रावण ने क्रोध किया, तो उसे उसका परिणाम भुगतना पड़ा। कंस ने क्रोध किया, तो उसे श्रीकृष्ण के हाथों मरना पड़ा। उद्दालक ने गुस्सा किया, तो उनके मुँह से स्वयं के ही पुत्र के लिए यह शब्द निकले, 'जा मैं तुझे मृत्यु को दान देता हूँ।'

एक आदमी को गुस्सा आने पर वह गाली देता है, एक आदमी मारपीट करता है। उद्दालक को गुस्सा आया, तो उन्होंने अपने पुत्र को मौत के मुँह में धकेल दिया। इससे

हमें सीख मिलती है कि गुस्से में हमारे द्वारा कहे गए अवांछित शब्द भारी हानि का कारण बन सकते हैं। गुस्सा शांत होने पर हम पूरे घटनाक्रम पर सोचेंगे, तो लगेगा कि हमारे द्वारा ऐसे शब्द कैसे कहे गए। क्रोध की समाप्ति हमेशा प्रायश्चित में होती है। तब मनुष्य सोचने लगता है, अरे, मैं ऐसा कैसे कह पाया? लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी होती है; नुकसान तो हो ही चुका होता है। ऐसे लोगों के लिए ही तो कहा जाता है कि अब पछताए होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गई खेत।

नचिकेता पिता के मुँह से निकले शब्द सुनकर एक बारगी तो स्तब्ध रह गए। किसी भी पिता को अपने पुत्र को डाँटने का अधिकार है, लेकिन कोई भी पिता अपने पुत्र का बुरा नहीं चाह सकता। और ऐसा बुरा तो कतई नहीं चाहेगा कि पुत्र को मौत को ही दे दे। उद्दालक ने यह क्या किया? पुत्र को मृत्यु को दान में दे दिया। नचिकेता ने खूब विचार किया और फैसला किया कि लोगों के बीच कहे गए पिता के शब्दों की आन रचना उसका धर्म है। वह मृत्यु का वरण करेगा।

दशरथ ने वचन तो अपनी एक रानी को दिया था, लेकिन उस वचन का मान उनके पुत्र राम ने रखा। राम चाहते तो वन जाने से इनकार कर सकते थे, लेकिन राम इसीलिए तो मर्यादा-पुरुषोत्तम कहलाए कि पिता ने जो कहा, उसका मान रखा और निकल पड़े चौदह वर्ष के वनवास पर। राम वही कहलाते हैं जो वचन की आन रखते हैं।

नचिकेता ने भी तय किया, जो भी हो जाए, पिता का वचन निभाना है। वे निकल पड़े घर से। जंगल में एक पेड़ के नीचे जाकर बैठ गए। विचार करने लगे, आखिर पिता ने उन्हें मृत्यु को दान में दिया है, तो इसमें कुछ-न-कुछ गूढ़ बात अवश्य छिपी है। जो होता है, अच्छे के लिए होता है। भला यम को मुझसे कौन-सा काम होगा। पिता ने कुछ कहा है, तो जरूर कोई बात है। महाराज दशरथ ने रानी को वचन दिया था, तो उसमें बहुत बड़ा दर्शन छिपा था। जाने कितने राक्षसों का उद्धार करना था। शबरी की श्रद्धा को महाफल देना था। अहिल्या को श्राप-मुक्त करना था। रावण जैसे योद्धा का अंत भी राम के हाथों होना नियती का हिस्सा ही था। इसलिए जो कुछ कहा गया, उसका भवितव्य था। जो तय है, वह होना है; उसके लिए ही यह मार्ग बना है। ज्ञानी लोग हर पीढ़ा में आनन्द ढूँढ़ लेते हैं। यही तो उनके ज्ञानी होने का सार है।

एक बार ऐसा हुआ कि साइकिल पर जा रहा एक आदमी पैदल चल रहे किसी राहगीर से टकरा गया। दोनों गिर पड़े। राहगीर चिल्लाने लगा, नाराज होने लगा। साइकिल चलाने वाले ने कहा, 'खैर मनाओ भाई, जो मेरी साइकिल से टकराने के बाद भी जीवित हो। जाकर हनुमानजी को सवा पाँच रुपए का प्रसाद चढ़ाओ।' राहगीर ने आश्चर्य जताते हुए कहा, 'एक तो मुझे गिरा दिया, ऊपर से खैर मनाने को कह रहे हो, प्रसाद चढ़ाने को उकसा रहे हो, भला ये क्या बात हुई?' साइकिल वाले ने उसे

समझाया, 'भाई, शुक्र इसलिए मनाओ क्योंकि मैं आज साइकिल लेकर निकला हूँ। वास्तव में मैं ट्रक चलाता हूँ। जरा विचार करो, आज मैं ट्रक लेकर निकला होता और तुम उससे टकराते, तो तुम्हारा क्या हाल होता।'

ज्ञानी लोग हर बात को सहजता से लेते हैं। नचिकेता ने सोचा, आज मैं कम-से-कम इस योग्य तो हुआ कि किसी के काम आ रहा हूँ। पिता के वचन को पूरा करने के लिए यमलोक जाना कोई साधारण बात नहीं है। यही तो मौका है कि मैं सशरीर यमलोक जा सकता हूँ। यहाँ से जाना तो पड़ेगा ही। आखिर धर्म का मार्ग कुर्बानी का मार्ग ही तो है। यहाँ तो जो सब-कुछ छोड़ने को तैयार हो सकता है, वही सब-कुछ पाने का अधिकारी हो सकता है। सांसारिक सुखों की कुर्बानी दिए बिना स्वर्ग का आनन्द नहीं मिल सकता।

एक बार देवताओं तथा दानवों में युद्ध चला। दानव भारी पड़ने लगे और देवता हारने लगे, तो वे ब्रह्माजी के पास गए। कहने लगे, 'प्रभु, अब आप ही कोई उपाय बताइए।' उन्होंने कहा कि ऐसा आदमी ढूँढ़ो, जो अपनी देह का दान कर सके। उसकी हड्डियों से वज्र बनाकर दानवों से युद्ध करें, आपकी जीत होगी। देवराज इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए। लेकिन सवाल फिर उठा, ऐसा व्यक्ति कहाँ तलाशें? ब्रह्माजी उन्हें सुझाते हैं कि एक ऋषि हैं दधीचि। वे आपकी मदद कर सकते हैं। सब मिलकर दधीचि के पास गए। वे वर्षों से तपस्या करते हुए कृषकाय हो चुके थे। उन्होंने देवताओं के अनुरोध पर जगत् के हित में अपनी देह का त्याग किया और तब उनकी हड्डियों से वज्र बनाया गया। उससे दानवों का नाश हुआ। दधीचि ने इस पुनीत कार्य से संदेश दिया कि शरीर तो मरणधर्मा है। शरीर किसी के काम आता है, तो इससे अच्छा उसका और क्या उपयोग होगा!

इसीलिए कहता हूँ, जितना हो सके किसी के काम आएँ। रक्तदान करें, नेत्रदान करें। आपके खून की कुछ बूँदें किसी का जीवन बचा सकती हैं। इस तरह के दान के लिए हर किसी को आगे आना चाहिए। दधीचि ने अपने-आप को ही दे डाला। धर्म भी कुर्बानी चाहता है। हमें जरूरत पड़ने पर इसके लिए तैयार रहना चाहिए। कसौटी पर कसने से ही पता चलता है कि सोना असली है या नकली। परखना तो पड़ेगा ही।

मित्रों को भी समय-समय पर परखते रहना चाहिए। मित्रता की कसौटी यही है कि मित्र आपकी परख पर कितना खरा उतरता है। अपने किसी मित्र को परखना हो, तो उससे कोई रकम माँग कर देखना; हाँ उसके पास इतनी राशि होनी चाहिए कि वह दे सके। उसका उत्तर ही बता देगा कि वह आपका मित्र है या नहीं। गिरगिट की तरह रंग बदलने वाले मित्र नहीं हुआ करते। जो वक्त पर काम आ जाए, वही मित्र हैं। कुर्बानी से, त्याग से ही तो पता चलेगा कि कौन तुम्हारे लिए क्या कर सकता है। मामला चाहे धर्म का हो या देश का, कुर्बानी और समर्पण-भाव ही उसकी आत्मा बन सकते हैं।

कहते हैं, एक बार रूसी सैनिकों ने लड़ाई में जापान के एक महत्त्वपूर्ण किले पर कब्जा कर लिया। इस किले के चारों तरफ गहरी खाई थी। इस खाई में मगरमच्छ छोड़े हुए थे। इस किले को ज़मीन से जोड़ने के लिए दो सेतु बने थे। रूसी सैनिकों ने किले पर कब्जा करने के बाद दोनों सेतु तोड़ दिए। रूसी सैनिक किले के भीतर जीत के जश्न में डूबे हुए थे। इधर जापानी सेना के बचे-खुचे सैनिक फिर से एकत्र हुए। उनके सेनानायक ने सैनिकों से पूछा कि जो देश के लिए कुर्बानी देने को तैयार हैं, वे सामने आ जाएँ। सभी आगे आ गए। सेनानायक ने कहा, 'इस खाई में कूद जाओ, जो मगरमच्छों से बच जाए वह किले में प्रवेश कर जाए।' इतना कहना था कि सैनिक एक-एक कर खाई में कूदने लगे। कुछ मगरमच्छों ने अपना शिकार बना लिया, लेकिन बहुत से सैनिक किले तक पहुँचने में सफल हो गए। भीतर जश्न में डूबे रूसी सैनिक कुछ समझ भी न पाए थे कि जापानी सैनिकों ने उन्हें घेर लिया और आत्म-समर्पण के लिए मजबूर कर दिया। किले पर फिर से जापान का कब्जा हो गया। रूसी सैनिकों को आत्म-समर्पण करना पड़ा। कुछ सैनिकों की कुर्बानी के बल पर जापानी फिर से अपना किला फ़तह करने में सफल रहे।

कुर्बानी पहला सूत्र है; इसीलिए दधीचि ने कुर्बानी दी। महात्मा गाँधी, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद, सुभाषचन्द्र बोस ने भी कुर्बानी दी। तभी तो आज हम आज़ादी की फ़िज़ा में साँस ले रहे हैं। गोली खाने वाला ही तो देश को आज़ादी का शगुन दे सकता है। इसीलिए तो फिर कोई गाँधी पैदा नहीं हुआ, किसी माँ ने भगतसिंह को जन्म नहीं दिया क्योंकि लोग गोली खाना नहीं चाहते। अब शहीद नहीं, अब तो नेता पैदा होते हैं जो डंडे खाना नहीं, लोगों पर डंडे चलाना जानते हैं।

नचिकेता ने खुद को कुर्बानी के लिए प्रस्तुत किया, तो आज उनके बारे में सभी जानते हैं। उनका नाम आदर से लिया जाता है। नचिकेता ने पिता के मुँह से निकले शब्दों को अपने लिए आदेश माना और निकल पड़े यमराज से मिलने। यद्यपि बाद में पिता ने ज़रूर सोचा होगा कि वे पुत्र को ऐसा कैसे कह पाए, लेकिन जुबान से निकले शब्दों को लौटाया नहीं जा सकता। कुर्बानी की राह पर नचिकेता खाना हो गए। जंगल में कुछ पल विचार-चिंतन के बाद वे सशरीर यमलोक पहुँचे। वहाँ उनकी यमराज से तीन दिन बाद मुलाकात होती है। वे तीन दिन यमलोक के द्वार पर भूखे-प्यासे खड़े रहे। अब देखते हैं, क्या रंग लाती है नचिकेता की मृत्यु-से-मुलाकात। मृत्यु से, यम से उनका क्या संवाद होता है, यह आगे देखेंगे।



# 4

## मृत्यु से मुलाकात

यह संसार किसी वृक्ष की भाँति है। इस वृक्ष पर दो तरह के प्राणी आया करते हैं। एक तो बंदर, जो वृक्षों पर उछल-कूद करते रहते हैं; फलों को, डालियों को तहस-नहस करते रहते हैं। दूसरे पंछी, जो इस संसार के वृक्ष पर आते हैं, गुनगुनाते हैं, संगीत की स्वर-लहरियाँ बिखेरते हैं, पंख फड़फड़ाते हैं और मौका मिलते ही उड़ जाया करते हैं। बंदर तो जीवनभर उछल-कूद ही करते रहते हैं लेकिन पंछी अवसर की तलाश में रहते हैं। जैसे ही अवसर मिलता है, वे उड़ान भर जाते हैं। मुक्त आसमान में उड़ान।

डजन लोगों को लगता है कि वे किसी मुक्ति-पथ के राही हैं, उन्हें तो यह विचार कर ही लेना होगा कि वे बंदर की भाँति उछल-कूद कर जीवन बिताना चाहते हैं या किसी पंछी की भाँति गीत गुनगुनाकर। बंदर की तरह जीना है, तो इंसान बंदर है ही। यदि पंछी बनना है तो आइए मेरे साथ, मैं आपके पंख लगा देता हूँ। फिर हम सब मुक्ति के आकाश की ओर बढ़ सकेंगे, बंधन के गलियारों से निकल सकेंगे। मुक्त विचरण करेंगे, नीड़ बनाएँगे। फल भी खाएँगे और समय आने पर उड़ भी जाएँगे। यह आनन्द तभी मिल पाएगा, जब हम खुद को मुक्ति के पंख लगाने के लिए तत्पर होंगे।

मैं ईश्वर का शुक्रगुजार हूँ कि उसने मुझे पंख लगाए। कोई भी चाहे तो मेरे पास आए, पंख लगवाए और संसार में रहकर भी पंछी की तरह उन्मुक्त उड़ान भरे। पंख लग जाएँ, तो कोई भी आसमान में उड़ सकता है। इस उड़ान को समझना आसान नहीं है। किसी को बात समझ में आती है, किसी को नहीं आती। जिन्हें बात समझ में नहीं आती, वे मात्र बंदर की तरह उछल-कूद करते अपना जीवन बिता देते हैं। जिन्हें बात समझ में आ जाती है, वे कबूतर की भाँति शांतिदूत बन जाया करते हैं।

नचिकेता को बात समझ में आ गई। पिता ने कह दिया कि मैं तुझे मृत्यु को देता हूँ, तो उन्होंने खुद को इस बात के लिए तैयार कर लिया कि वे यम से साक्षात्कार करेंगे। पिता उद्दालक को क्रोध में कहे अपने शब्दों का परिणाम क्या होगा, यह बात तब समझ में आई, जब उनका क्रोध शांत हो गया। वे विचार करने लगे कि मैंने नचिकेता को यह क्या कह डाला। क्रोध के दौरान कोई भी व्यक्ति अवांछित शब्दों का प्रयोग कर ही डालता है। कौन सोच सकता है कि कोई पिता अपने पुत्र को मृत्यु को सौंप सकता है, लेकिन क्रोध में कुछ भी समझ में नहीं आता। क्रोध होता ही बेलगाम है। उठता है तो आँधी की तरह उठता है। उठता है, तो बर्बादी का मंजर फैला जाता है। यह क्रोध ही था कि उद्दालक ने अपने प्रिय पुत्र को यमराज को दान में दे दिया। भले ही गुस्से में दिया, पर दे तो डाला।

यह तो नचिकेता जैसे पुत्र की विनम्रता थी कि उसने पिता के वचनों को स्वीकारा और उसी के अनुरूप आचरण करने का फैसला किया। यह पुत्र का दायित्व होता है कि वह पिता के शब्दों का सम्मान करे। दो ही विकल्प हैं, या तो पुत्र अपने पिता द्वारा कही बात का कोई जवाब न दे, या फिर उनके शब्दों का सम्मान करने में जुट जाए। नचिकेता ने दूसरा विकल्प चुना। वह उनके आदेश की पालना को तत्पर हो गया। घर से निकल गया। पुत्र-धर्म का निर्वाह करते हुए अंततः उसने बिना किसी चिंता में पड़े यमराज से साक्षात्कार का फैसला किया। यमराज से साक्षात्कार यानी मृत्यु से मुलाकात।

चिंता तो अज्ञानी करता है, ज्ञानी परिस्थितियों का सामना करता है। उन्हें चुनौती मानकर उन पर विजय-प्राप्ति के प्रयासों में जुट जाता है। कठोपनिषद् में कही गई बातें जीवन का सार प्रस्तुत करती हैं। इसका आनन्द लें। यमराज के पास जाकर नचिकेता को क्या मिलेगा? कोई ज्ञान का खजाना या मौत? नचिकेता इस बात को समझने का प्रयास करता है कि पिता ने कुछ कहा है, तो उसमें उसका बुरा तो हो नहीं सकता, भला ही होने वाला है। क्या होगा, यह वहाँ जाकर ही मालूम हो सकता है। पिता ऋषि हैं, वेदों के ज्ञाता हैं। उनके मुँह से कोई बात यूँ ही तो नहीं निकल सकती। हर बात का कोई-न-कोई कारण होता है, अर्थ होता है; बस हमें समय से पहले उसका मर्म समझ में नहीं आता।

एक आदमी कहीं जाने वाला था। वह बस स्टैण्ड पर खड़ा बस का इंतजार कर रहा था। बस आई, तो उससे आगे खड़ा एक मोटा व्यक्ति बस में प्रवेश करने के प्रयास में गेट पर ही फँस गया। अब न तो कोई सवारी उसमें से उतर सकती थी और न ही नीचे से कोई बस में चढ़ पा रहा था। पीछे खड़े आदमी ने उस मोटे आदमी को जोरदार लात लगाई, मोटा आदमी बस के भीतर जा गिरा। वह उठा



और सीट पर बैठने के बाद अपने उस सहयात्री को धन्यवाद देने लगा, जिसने उसे लात लगाई थी। वह यात्री हैरान-सा उसका मुँह देखने लगा। भला लात मारने वाले को धन्यवाद थोड़े ही मिलता है। उसने धन्यवाद का कारण जानना चाहा। मोटे ने कहा, 'भाई तुम्हारी लात की बदौलत ही मैं बस के भीतर आ पाया। आपकी बड़ी मेहरबानी होगी, कृपया उतरते समय भी मुझे ऐसी ही एक लात लगा देना।'

आदमी जानता है कि क्या प्रतिकूल है और क्या अनुकूल। नचिकेता ने ऐसा ही सोचा। यमराज के पास जाने में ज़रूर कुछ-न-कुछ गहरी बात छिपी है। जाने से पहले जब नचिकेता ने पिता के पाँव छूकर उनसे आशीर्वाद माँगा, तो पिता को अहसास हुआ होगा कि यह मैंने क्या कह डाला। यह तो सचमुच यमराज के पास जा रहा है। उन्हें प्रायश्चित्त हुआ होगा। सोचा होगा कि मैं अब पुत्रविहीन हो जाऊँगा, लेकिन वे कर भी क्या सकते थे। जुबान से शब्द निकल चुके थे। उस ज़माने में मुँह से निकला शब्द कितना मूल्यवान होता था, यह केवल इस बात से समझा जा सकता है कि कुंती ने बिना देखे अपने पुत्रों से कह दिया था कि जो लाए हो, हमेशा की तरह भाइयों में बाँट लो। यह तो बाद में पता चला कि वे द्रौपदी को लेकर आए थे। बात माँ के मुँह से निकल पड़ी तो निकल ही पड़ी, द्रौपदी को पाँच पतियों की पत्नी बनना पड़ा।

पिता की बात रखने के लिए ही नचिकेता यमलोक जाने को तत्पर हो गया था। भगवान राम वन जाने लगे, तो महाराज दशरथ को भी बड़ी पीड़ा हुई होगी लेकिन वे क्या कर सकते थे। जो कह डाला, सो कह डाला। राम की तरह नचिकेता ने भी पिता के शब्दों का मान रखने का फ़ैसला किया। पिता ने रोकना चाहा होगा, तब भी वे नहीं रुके होंगे।

प्रहलाद, ध्रुव जैसे लोग बचपन में ही सिद्धियाँ पा चुके थे। नचिकेता भी पीछे नहीं था। उसने पिता को समझाया होगा, यह शरीर तो मरणधर्मा है। जब आपने मुझे मृत्यु को दान में दे ही दिया है, तो विचार और शोक कैसा? इंसान पैदा होता है, जीता है, एक दिन मर जाता है। आज जीना है, कल मर जाना है। कोई भी अमर नहीं है। यहाँ सभी मृत्युलाल हैं, अमरचन्दजी कोई नहीं है। कोई अमरचन्दजी नाम रख लेने से अमर नहीं हो जाता। यह सब को भुलावे में रखने की बातें हैं। मृत्यु से भय कैसा? मुझे मृत्यु से भय नहीं है। मृत्यु बुरी नहीं लगती, क्योंकि वह जीवन का अनिवार्य चरण है। हाँ, सड़-सड़ कर मरना अवश्य बुरा लगता है। ययाति ने अपने पुत्र से यौवन माँग लिया तो भी क्या हुआ, वह भी समाप्त हो गया। आप पुत्र-मोह में न पड़ें। मोह में अटका रहने वाला जीवन की

कुर्बानी नहीं दे सकता। नचिकेता ने कहा, 'मेरे प्रिय पिता, आपका पुत्र आपके वचनों की आन रखने के लिए यम से साक्षात्कार करने जाएगा।'

नचिकेता ने तो फैसला कर लिया था कि पिता की बात का मान रखना है। मान मुफ्त में तो नहीं रखा जाता। मान रखने के लिए त्याग तो करना ही पड़ता है। फ्राँसी का फैसला सुनाए जाने के बाद भगतसिंह की माँ उसके पास पहुँची। कहने लगी, 'अभी तेरी उम्र ही क्या है? अभी तो तुझे बहुत ज़िंदगी देखनी है।' भगतसिंह ने कहा, 'शेर की माँ की आँखों में आँसू शोभा नहीं देते। एक दिन तो सबको मरना है माँ, फिर मैं तो देश के लिए जान दे रहा हूँ। यह गौरव क्या कम है कि तेरा पुत्र देश के काम आ रहा है, देश भी माँ ही है। एक पुत्र अपनी माँ के लिए काम आ रहा है। भगतसिंह के भाग्य में इतना गौरव काफ़ी है।'

माँ को समझाते हुए भगतसिंह ने कहा, 'जीवन अनित्य है। शरीर मरणधर्मा है। कुछ भी अमर नहीं है। पैदा होने वाला कोई ज़िंदा नहीं रहा, न कोई रहने वाला है। जो भी धरती पर आएगा, उसे जाना ही होगा। जीवन एक सहयात्रा है। हम आते हैं, लोगों के साथ चलते हैं। फिर अपनी-अपनी राह निकल जाते हैं। कौन, कहाँ जाता है, किसी ने नहीं जाना। कोई आज जा रहा है तो कोई कल जाने वाला है, दुनिया है धर्मशाला। इसलिए माँ, तू शोक न कर। करना है तो गौरव कर, और देना है तो आशीर्वाद दे कि यह तेरा लाल हर जन्म में इसी तरह माता की तरह आदरणीय अपनी मातृभूमि के काम आए।'

मृत्युंजय वही बनते हैं जो मृत्यु के भय से मुक्त हो जाते हैं। अपनी मृत्यु को हमेशा याद रखने वाला शोक से मुक्त रहता है। तब इस दुनिया से मोह नहीं हो जाएगा। इंसान पाप-कर्म से मुक्त रहेगा। कुछ लोग जीवन से संतुष्ट होकर जाते हैं, कुछ असंतुष्ट ही रह जाते हैं। कुछ पहली साँस के साथ ही संतुष्ट हो जाते हैं और कुछ पूरा जीवन निरर्थक ही बिता देते हैं। मैं तो हर हाल में फ़क़ीरी का आनन्द लेता हूँ। फ़क़ीर की तरह हर हाल में मस्त रहता हूँ। मेरी तमन्ना है कि जीऊँ तो फ़क़ीरी में और अंतिम साँस लूँ तो फ़क़ीरी में। फ़क़ीरी का मतलब है हर हाल में आनन्दित रहना। दुनिया रहे चाहे बस्ती में, पर हम तो रहेंगे मस्ती में।

महावीर ने, बुद्ध ने अनित्यता पर जोर दिया है। प्रत्येक वस्तु अनित्य है। प्रकृति का अर्थ ही है परिवर्तनशीलता। प्रकृति ने हमें जन्म दिया है और प्रकृति में ही हमें अंततः समा जाना होता है। यह बुनियादी बात किसी को समझ में आ जाए तो ज़िन्दगी की आधी समस्याएँ, आधी सिरपच्चियाँ समाप्त हो जाएँ। जब सब-कुछ परिवर्तनशील है, फिर क्यों व्यर्थ ही मोह में फँसे रहें। धृतराष्ट्र ने मोह में पड़कर पांडवों के प्रति जो अन्याय किया, उसका बाद में उन्हें गहरा पश्चाताप

रहा। कर्तव्य का भान रहता, तो 'महाभारत' नहीं होता। तब जो होता, वह केवल 'भारत' होता।

जीवन और जगत् को समझना ही महत्त्वपूर्ण है। जीवन अनन्त रहस्यों से भरा है। परम सत्य यही है कि जीवन परिवर्तनशील है। हम सब सहयात्री हैं,। इस धरा पर आते हैं, चले जाते हैं; अन्यथा न कोई जन्म है और न ही मृत्यु। विपश्यना-ध्यान करने वाले 'अणिच्चम्' का प्रयोग करते हैं। प्रत्येक साधक को जीवन से विरत होने के लिए इस शब्द को हमेशा याद रखना चाहिए। 'अणिच्चम्' का मतलब है, संसार में सब-कुछ अनित्य है। यहाँ हर महल खण्डहर होने के लिए है। हर जन्म मृत्यु में ढलने के लिए है। जो आया है सो जाएगा - संसार का यह एक इकलौता अखण्ड सत्य है। मूर्ख मूर्छित होते हैं, समझदार जागृत होते हैं। जो जागृत होते हैं, वे इस अनित्यता की धूप-छाँव के खेल में सत्य को आत्मसात् कर लेते हैं। वे इस बात को भली-भाँति समझ लेते हैं कि जो चल रहा है, वह भी बीत जाएगा। कुछ भी शाश्वत नहीं रहेगा।

एक सम्राट को उसके गुरु ने एक अँगूठी दी। उसमें एक छोटे कागज के पुर्जे पर लिखा था कि यह भी बीत जाएगा। दिस विल टू पास। राजा राजदरबार में बैठा विचार कर रहा था, इस वाक्य का क्या अर्थ है। उन्हें लगा, आज मैं सिंहासन पर बैठा हूँ, यह भी बीत जाएगा। उन्हें लगा, नहीं ऐसा कैसे हो सकता है! मैं आज राजा हूँ, कल भी राजा ही रहूँगा। कुछ समय बाद पड़ोसी राजा ने उस पर हमला किया। वह हार गया। उसे अपने कुछ सैनिकों के साथ जंगल में भटकना पड़ा। एक दिन फिर राजा किसी गुफा में बैठा विचार कर रहा था कि उसे अपनी अँगूठी में रखे उस पुर्जे की याद आई। उसने पढ़ा, यह भी बीत जाएगा। राजा में एक नया जोश भर उठा। उसने अपनी ताकत को फिर से इकट्ठा किया और पड़ोसी राजा पर हमला कर अपना राज्य फिर से इख्तियार कर लिया।

सम्राट राजगद्दी पर बैठकर जब अपना मुकुट पहनने लगा तो उसे वही वाक्य याद आया, 'यह भी बीत जाएगा।' वह बक्खू हो गया। वह सिंहासन से खड़ा हो गया, जब कुछ भी नित्य नहीं है, तो फिर कैसा राज और कैसा मुकुट? वह निकल पड़ा संन्यास की राह पर। उसे ज्ञान हो गया था कि जीवन अनित्य है। यहाँ कुछ भी स्थायी नहीं है। फिर राज्य से कैसा मोह? दुनिया कई रंगों से भरी है। यहाँ रंगी को नारंगी कहे, पके दूध को खोया, चलती को गाड़ी कहे, देख कबीरा रोया। ज्ञानी तो भली-भाँति समझता है कि सब कुछ अनित्य है।

पत्नी सात जन्म तक साथ निभाने की बात करती है, लेकिन परिस्थितियाँ ऐसी बन जाती हैं कि तलाक हो जाता है। एक जन्म का साथ भी नहीं निभ पाता।

कहने को तो आदमी खूब कहता है - सौ साल पहले मुझे तुमसे प्यार था, आज भी है और कल भी रहेगा - पर ये बातें कब यादें बनकर रह जाती हैं, इसकी कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। अभी लगता है घर है, दूसरे ही पल खण्डहर होते देर नहीं लगती। सब कुछ परिवर्तनशील है। कठोपनिषद् की यह गाथा यमराज व नचिकेता के माध्यम से जीवन का संदेश दे जाती है। पूरा प्रसंग एक दर्शन है। यह भी चला जाएगा, सब कुछ बदल जाएगा। गुजरात में कुछ साल पहले आए भूकंप ने सब कुछ समाप्त कर दिया। बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ धराशायी हो गईं। बस्तियों की बस्तियाँ जमींदोज हो गईं। इसलिए हम अतीत और भविष्य के झूले में झूलने की बजाय आज का आनन्द लें। ईश्वर उन्हें जीवन की समझ दे, जो 'कल' की चिंता में अपना 'आज' खराब कर रहे हैं।

एक बात याद रखें, जो चोंच देता है, वह चुग्गा भी देता है। हमारा जन्म बाद में होता है, माँ का आँचल दूध से पहले भर जाता है। हम व्यर्थ की चिंता न करें। जो है, उसका आनन्द लें। जो नहीं है, उसका गम न पालें। रोने से दुख हल्का नहीं होता, और बढ़ता ही है। परिस्थितियों के आगे घुटने मत टेको। घुटने टेक देना, आत्महत्या के समान ही है। सामना करो। विश्वास रखो, ईश्वर हमारे साथ है। भला जब ईश्वर ने हमें पुंसत्व दिया है, तो हम अपनी चेतना को, अपने मन को नपुंसक क्यों बनाएँ? ज्यादा से ज्यादा क्या होगा, कल मौत ही तो आएगी, आने दो। याद रखो, समय से पहले कुछ नहीं होता। मौत भी तभी आएगी, जब उसे आना होगा। फिर क्यों वर्तमान के आनन्द को टुकरा रहे हो।

मैं हमेशा आनन्दित रहता हूँ। प्रभु ने ऐसे छातीकूटे दिए भी नहीं कि परेशान होना पड़े। सुबह और शाम प्रार्थना में बीत जाती है। घाणी का बैल नहीं बना। जिन्दगी को धोबी के गधे की तरह नहीं जीता। बोधपूर्वक जीता हूँ, आनन्दित रहता हूँ। शांत रहना जीवन का फ़ैसला है और अपने फ़ैसले पर अडिग रहना, यही आनन्द का राज़ है। आनन्द जीवन का ही तो अनुष्ठान है। सांस-सांस में प्रभु का आनन्द है। हर प्राणी और हर इंसान प्रभु की ही चलती-फिरती मूरत है। मंदिर-मस्जिद का भगवान तो मौन है, पर ये जो चलती-फिरती दुनिया है, इस रूप में भगवान हमसे हजार रूप में बोलता और बतियाता है। तुम प्रभु से प्यार करो, प्रभु तुमसे प्यार करेंगे। तुम दुनिया से प्यार करो, दुनिया तुमसे प्यार करेगी। दुनिया यानी प्रभु, प्रभु यानी दुनिया। दुनिया प्रभु की ही माया है। समझ आ जाए, तो हर ठौर प्रभु का मंदिर है; समझ न आए तो कहीं धूप, कहीं छाया है।

जीवन तो किसी वृक्ष की तरह है। बंदर की तरह उछल-कूद करनी है या पंछी की तरह उड़ना है, यह आपको ही तय करना पड़ेगा। मौका देखकर उड़

जाना, यही तो अनासक्ति है। दुनिया तो रंगीन को भी नारंगी ही कहेगी, इसकी आपाधापी में उलझ गए तो यहीं रह जाओगे, निकल ही न पाओगे। कृपया कीचड़ के कीड़े मत बनो। बनना ही है तो कीचड़ में खिले कमल बनो। जीवन में बोध ज़रूरी है और यह बोध ही उसे जगाता है, जगत् के जंजालों से मुक्त करता है। तब लगता है कि हमें यह नहीं करना, वह नहीं करना; अन्यथा वही रेलमपेल चलती रहती है। सुबह होती है, शाम होती है, उम्र यूँ ही तमाम होती है। हमारी जिन्दगी घाणी के बैल की कहानी बन जाती है।

नचिकेता ने भी अपने पिता से कहा, 'अणिच्चम्। मैं जा रहा हूँ, मेरा मोह न करो। मैं मृत्यु से साक्षात्कार करूँगा। आदमी को जीना ही नहीं, मरना भी आना चाहिए। अध्यात्म की राह पर चलने वालों को यह कला आनी ही चाहिए। जीवन के दो किनारे हैं - इसके एक तरफ जन्म है, तो दूसरी तरफ मृत्यु। इनके बीच ही जीवन की नदी बहती है। हमें इतना बोध रहना चाहिए कि जीना भी आए और मरना भी। मृत्यु वह नहीं है, जिसे मजबूरी में स्वीकारा जाए। मृत्यु वह है, जिसका वरण किया जा सके। महावीर ने मृत्यु को स्वीकार करने का सिद्धांत दिया - संलेखना, समाधिपूर्वक मरण। महावीर ने कहा, 'ज्ञान और बोधपूर्वक मृत्यु का वरण करो।' गीता में कृष्ण कहते हैं, 'समय आने पर शरीर को वैसे ही त्याग देना चाहिए जिस तरह पुरानी होने पर साँप अपनी कैंचुली उतार फेंकता है। रोग आ जाए तो उसका उपचार करो, लेकिन मृत्यु आ जाए तो उससे भागो मत, उसका वरण करो। मृत्यु से भला कोई भाग पाया है? वह तो उस हर जगह पहुँच जाती है, जहाँ उसे पहुँचना होता है। इतना ही नहीं, अगर हमारी मृत्यु किसी खास मुकाम पर होनी तय है, तो वह कोई-न-कोई ऐसी गोटी फिट कर देती है कि हम वहाँ पहुँच ही जाते हैं।

ऐसा हुआ कि एक इंसान की दहलीज पर मृत्यु ने दस्तक दी। मृत्यु ने उससे कहा, 'तीन दिन बाद आऊँगी, तुझे लेकर जाऊँगी, तैयार रहना।' उस इंसान ने सोचा, मैं मृत्यु को धोखा दूँगा। वह अपनी कार लेकर निकला। लगातार तीन दिन तक कार को दौड़ाता रहा। तीसरे दिन अपने घर से हजारों किलोमीटर दूर निकलने पर जंगल में पेड़ के नीचे कुछ देर आराम करने बैठा। वह निश्चित होकर सोचने लगा, अब मौत मुझे नहीं मार सकती। मैं उससे बहुत दूर निकल आया हूँ। अचानक उसने अपने कंधे पर किसी का हाथ महसूस किया। उसने मुड़कर देखा, तो पाया कि वहाँ मौत खड़ी मुस्कुरा रही थी। उस आदमी ने हैरानी से पूछा, 'तुम यहाँ तक कैसे आ गई?' मृत्यु बोली, 'जिस कार में तुम आए, उसी में सवार होकर मैं आई। तीन दिन बाद तुम्हें यहीं, इसी पेड़ के नीचे आना था, क्योंकि

तुम्हारी मौत यहीं लिखी थी। मैं चिंता में थी कि तुम यहाँ कैसे पहुँच पाओगे, लेकिन तुमने कमाल कर दिया, यहाँ आकर मेरा काम आसान कर दिया। याद रखो, मौत जहाँ आनी होती है, वहाँ आती है। जो तय है, उससे क्या भागना। उसके बारे में विचार भी क्या करना ?

नचिकेता ने पिता से कहा, 'आप मुझे जाने की अनुमति दें। मैं यम के पास सशरीर पहुँचने वाला हूँ। मुझे तो इसी बात की खुशी है कि मैं आपके आदेश की पालना कर रहा हूँ। मुझे तो यमलोक जाने में कोई दिक्कत ही नहीं है। जो ज्ञान मुझे यहाँ नहीं मिला, वह मैं यमराज से सीखूँगा। वे तो आखिर मृत्यु के देवता हैं। मृत्यु के बारे में उनसे बेहतर कौन बता सकता है ?' नचिकेता की बात सुनकर संभव है, उद्दालक कलपे होंगे। उनका खाना-पीना छूट गया होगा, लेकिन नचिकेता निकल पड़े।

नचिकेता आखिर सशरीर यमलोक पहुँचे। वे बहुत बड़े साधक रहे होंगे, तभी तो सशरीर यम के द्वार तक पहुँच सके। नचिकेता के यमलोक पहुँचते ही वहाँ तहलका मच जाता है। ऐसा कौन-सा प्राणी है, जो सशरीर यमलोक पहुँचने में सफल हो गया। यमलोक के दूत हैरत में पड़ गए। चित्रगुप्त तक बात पहुँची, तो उन्होंने अपनी बही के पन्ने पलटे। वहाँ ऐसे किसी प्राणी के आगमन के बारे में जानकारी नहीं थी। अभी नचिकेता का जीवन पूरा नहीं हो पाया था, इसलिए वहाँ उनका आगमन अपने आप में हर किसी के लिए आश्चर्य का कारण बन रहा था।

नचिकेता यमलोक के द्वार पर बैठ गए। उन्होंने भीतर संदेश पहुँचाया कि यमराज से मिलना है। यमराज वहाँ थे नहीं। वे किसी काम से अन्य लोक की यात्रा पर गए थे। नचिकेता ने कहा, 'मैं यहीं, द्वार पर उनका इंतज़ार करूँगा। मैं यमराज को दिया गया दान हूँ, इसलिए उनसे ही मुलाकात करूँगा। द्वारपाल ने पूछा, 'क्या तुम्हें मृत्यु से कोई भय नहीं ?' नचिकेता मुस्कुराया और कहने लगा, 'मृत्यु से कैसा भय ? मैं तो उनके दत्तक पुत्र की तरह हूँ। मेरे पिता ने मुझे उनको दिया है; इसलिए मृत्यु भी मेरे पिता की तरह है।' सारे यमलोक में नचिकेता की इस बात से हलचल हो गई। चर्चाओं का बाजार गर्म हो गया। यहीं से शुरू होती है कठोपनिषद् की मुख्य धारा, जो विभिन्न रास्तों से होती हुई कई संदेश लिये धरती पर पहुँचती है। क्या हैं ये संदेश, नचिकेता की यम से मुलाकात क्या रंग लाती है, क्या वे उनका सामना कर पाते हैं, क्या नचिकेता फिर से धरती पर लौट पाते हैं ? इन सवालों के जवाब आप आने वाले में पृष्ठों में पढ़ेंगे।



# 5

## आतिथ्य-सत्कार का आनन्द

कहते हैं, पिता द्वारा आदिष्ट होने पर नचिकेता अपनी विशिष्ट शक्ति और विशिष्ट विद्या के द्वारा यमलोक गमन करता है। नचिकेता द्वारा यमलोक की यात्रा आज के युग में लोगों के लिए आश्चर्य और चर्चा का विषय हो सकती है, लेकिन प्राचीनकाल में ऋषि-मुनियों की संतानों को ऐसी विद्याएँ आत्मसात् होती थीं जिनके जरिए वे गगन-विहार किया करते थे। अपने साधारण शरीर को छोड़कर, सूक्ष्म शरीर द्वारा अन्य लोक की तरफ गमन कर जाया करते थे। गुरु-कृपा से, पितृ-कृपा से, मातृ-कृपा से व्यक्ति को ये सिद्धियाँ उपलब्ध हो जाया करती थीं। ऐसे अनेक प्रसंग मिलते हैं जिनमें इस बात को स्पष्ट किया गया है।

भगवान महावीर के शिष्य गणधर गौतम सूर्य-किरणों का सहारा लेकर अष्टापद अर्थात् कैलाश पर्वत की ओर गए थे। इसी तरह अर्जुन देवलोक में विशिष्ट विद्याओं की साधना के लिए गए थे। मेरी साधना में जिस आत्मयोगी साधिका काकी माँ ने मदद की थी, वे भी स्थूल शरीर को गुफा में छोड़कर महाविदेह-क्षेत्र की यात्रा के लिए जाया करती थीं। उनकी कृपा से कभी मुझे भी इस तरह का सौभाग्य मिला हुआ है। जिस तरह से उन लोगों को ऐसी सिद्धियाँ प्राप्त थीं, उसी तरह नचिकेता को भी सिद्धियाँ उपलब्ध रही होंगी, तभी तो वे सशरीर यमलोक पहुँच पाए होंगे। नहीं तो यह प्रश्न उठेगा कि यदि पिता ने यह आदेश दे दिया कि जाओ, मैं तुम्हें मृत्यु को सौंपता हूँ, तो सशरीर यमलोक जाना कोई आसान बात तो नहीं है। या तो नचिकेता आत्मदाह करे या फिर आत्महत्या। मृत्यु को प्राप्त हुए बगैर कोई व्यक्ति यमलोक तक, यमराज तक पहुँचेगा तो आखिर कैसे ?

तो ऐसा लगता है कि नचिकेता के पास अवश्य ही ऐसी शक्ति थी जिससे वे सशरीर यमलोक तक पहुँच पाए। जब वे यमलोक के द्वार पर पहुँचे तो वहाँ निश्चित रूप से द्वारपाल भी होंगे। नचिकेता ने द्वारपालों से कहा भी होगा कि मैं साक्षात् मृत्यु से

मिलने आया हूँ। मैं अपने पिता द्वारा यमराज को दान में दिया गया हूँ। द्वारपालों के लिए भी समस्या रही होगी कि आखिर यह जीव सशरीर यमलोक तक पहुँचा तो कैसे पहुँचा? यमलोक में तो कोई स्वेच्छा से नहीं आता। या तो यमराज स्वयं किसी प्राणी को लेकर आते हैं या उनके दूत लेकर आते हैं; और वह भी केवल उनकी सूक्ष्म चेतना को। सशरीर किसी का आना यमलोक में हलचल मचाने के लिए काफी था। जीवित अवस्था में पहली बार कोई प्राणी यमलोक पहुँचा था। कोई प्राणी स्वेच्छा से यमलोक पहुँचता है, तो उसके लिए किसी यमदूत की आवश्यकता नहीं होती। यह उस व्यक्ति की सिद्धियों का परिणाम हो सकता है।

यमराज तक संदेशा पहुँचता तो वे निश्चित रूप से इस बारे में चिंतन-मनन करते। आश्चर्य में भी पड़ते कि मैं दुनिया को दान देता हूँ, ये मुझे देने वाला कौन पैदा हो गया। वे तत्काल यमलोक के द्वार पर आते, लेकिन परिस्थितियाँ ऐसी बनीं कि यमराज वहाँ थे ही नहीं। किसी अन्य लोक की यात्रा पर गए हुए थे। यमलोक में उनकी पत्नी यमी थी। यमी तक संदेश पहुँचा कि कोई किशोर सशरीर यमलोक के द्वार तक पहुँच गया है और महाराज यमराज से भेंट करने का अभिलाषी है। यदि वहाँ यमराज होते और यह संदेश उन तक पहुँचता, तो संभव है संदेश ले जाने वाला दुत्कार दिया जाता, लेकिन नियतिवश यह संदेश यमी के पास पहुँचा। यमी मृत्यु की देवी! नारी होने के कारण स्वभाव से ही कोमल। पुरुष स्वभाव से कठोर होता है, निष्ठुर होता है लेकिन नारी प्रकृति की ओर से प्रदत्त गुणों के कारण सौम्य, सुकोमल होती है। वह घर आए मेहमान का सम्मान करना जानती है। वह पिघल जाया करती है। नारी प्रेम, आतिथ्य और समर्पण की मूर्ति होती है।

संदेश लेकर पहुँचे यमदूतों को यमी ने कहा कि वे अतिथि को अतिथिशाला में ठहराएँ। उनके भोजन की व्यवस्था करें। यमराज बाहर गए हैं। वे लौटते ही उनसे अतिथि की मुलाकात की व्यवस्था कर देंगी। नचिकेता तक उत्तर पहुँचा, लेकिन उन्होंने इनकार करते हुए कहा कि वे केवल यमराज को प्रदत्त हैं, इसलिए उनसे भेंट किए बिना कुछ भी न करेंगे। यमराज के आने तक यमलोक के द्वार पर ही इंतज़ार करेंगे। यमी ने आतिथ्य-सत्कार के लिए फल आदि भेजे, लेकिन नचिकेता ने विनम्रतापूर्वक उन्हें स्वीकार करने से इनकार कर दिया।

नचिकेता ने मौन-व्रत धारण कर लिया। उपवास तो था ही, वे पाँवों पर खड़े होकर यमराज का इंतज़ार करने लगे। द्वार के बाहर कोई भूखा-प्यासा खड़ा रहे, यह किसी के लिए भी शोभनीय बात नहीं होती। जब सामान्य इंसानों के लिए यह शोभनीय नहीं है, तो ऐसा विशिष्ट, ज्ञानी व्यक्ति द्वार पर भूखा-प्यासा खड़ा रहे, तो यह कतई शोभनीय नहीं हो सकता।



किसी तरह तीन दिन बीते। तीसरे दिन यमराज अन्य लोकों की यात्रा से लौटकर आए। यमी ने उनसे न तो कुशल-क्षेम पूछी और न ही उन्हें आराम करने को कहा। देव आपकी यात्रा कैसी रही, इस तरह के सवालों के लिए उनके पास समय ही कहाँ था। पति की चिंता से कहीं अधिक उन्हें इस बात की चिंता थी कि एक ब्राह्मण तीन दिन से उनके द्वार पर भूखा-प्यासा खड़ा था। उसे लग रहा था कि उस पर पाप चढ़ रहा है। पति से कुशल-क्षेम पूछने की बजाय वह सीधे कहने लगी, 'भगवन्, आप पधारे, आपका स्वागत है लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि एक ब्राह्मण आपके द्वार पर पिछले तीन दिन से भूखा-प्यासा खड़ा आपसे मिलने का इंतज़ार कर रहा है। वह सशरीर यमलोक आया है। कहता है, वह अपने पिता द्वारा आपको दान में दिया गया है। आप सबसे पहले उसे भीतर लाइए।'।

कठोपनिषद् में आने वाले आत्म-संवादों में यह बात उभरती है कि यमी अपने पति यमराज से कहती है कि हे सूर्य-पुत्र, आप स्वयं ब्राह्मण देवता को भीतर लेकर आइए क्योंकि ब्राह्मण के रूप में साक्षात् अग्नि ही घर में प्रवेश करती है। आप स्वयं अग्नि-विद्या के ज्ञाता हैं, सूर्य-पुत्र हैं। साधु-हृदय गृहस्थ अपने कल्याण के लिए उस अतिथि रूपी अग्नि को शांत करने के लिए पाद-अर्घ्य आदि से उसका पूजन करते हैं। इसलिए आप उस ब्राह्मण के पाँव धोने के लिए तुरन्त जल ले आइए। यह बालक तीन दिन से आपके इंतज़ार में भूखा-प्यासा है। आपके द्वारा उसका पूजन किए जाने पर ही उसे संतोष मिलेगा।

यमी फिर कहती है, 'हे सूर्य पुत्र, जिसके घर में ब्राह्मण-अतिथि बिना भोजन किए रहता है, उस मन्दबुद्धि पुरुष की आशा और प्रतीक्षा, उनकी पूर्ति से होने वाले सब प्रकार के सुख, सुन्दर वाणी से मिलने वाले सभी प्रकार के फल एवं यज्ञ तथा पूर्व जन्मों के किए शुभ कर्मों के फल तथा समस्त पुत्र और पशु नष्ट हो जाते हैं।'।

यमी ने कहने को तो पति से यह कह दिया लेकिन आखिर यमराज तो यमराज हैं। जिस यमराज को देखकर ही किसी का कलेजा काँप जाए, जिसे साक्षात् काल कहते हैं, जिसका नाम सुनते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे काले भैंसे पर सवार होकर बहुत डरावने स्वरूप में सामने आते हैं, ऐसे यमराज को जब उनकी पत्नी ने इस तरह के वाक्य कहे, तो मृत्यु के देवता कहलाने वाले यमराज भी सोच में पड़ गए। हिटलर दुनिया का बहुत बड़ा आततायी था लेकिन अपनी पत्नी के सामने संभवतः वह भी झुक जाया करता होगा। कोई डीआईजी, एसपी सड़क पर भले ही हंटर फटकार ले, लेकिन घर पर अपनी पत्नी के सामने विनम्र हो ही जाता होगा।

ऐसे ही यमराज को उनकी पत्नी यमी ने कहा, 'हे सूर्य-पुत्र, घर आए अतिथि को भीतर लाएँ, उनका स्वागत-सत्कार करें।' यमी ने अपनी बात बहुत सम्मान से, बड़े

अदब से अपने पति से कही। हर पत्नी का दायित्व है कि वह अपने पति के प्रति सम्मानजनक भाषा का प्रयोग करे। आप यदि अपने पति के साथ शाहजहाँ की तरह व्यवहार करेंगी, तो वे भी आपको मुमताज महल से कम इज्जत नहीं देंगे। जिंदगी का तो सौदा ही यही है कि इज्जत दो, इज्जत लो।

आजकल तो जमाना ही बदल गया है। औरतें अपने पति को तुम कह कर बुलाने लगी हैं। इसमें दोष पुरुषों का भी है, वे भी तो पत्नी को तुम से संबोधित करते हैं। जैसा दोगे, वैसा ही पाओगे। एक-दूसरे की गलती का खामियाजा दोनों को भुगतना पड़ रहा है। अब वो राम-सीता का जमाना गया। अब तो दोनों एक-दूसरे को आँख दिखाते रहते हैं। जीवन को अगर स्वर्ग बनाना है, तो पति-पत्नी ऐसे बन जाएँ कि जैसे दूध में मिश्री घुली हो।

पत्नी अगर पति को पूरा प्यार और सम्मान देती रहेगी, तो यह मुमकिन ही नहीं है कि पति किसी दूसरी की तरफ झाँके भी। हम पति के गौरव का ध्यान नहीं रखते, जब-तब उसकी उपेक्षा कर देते हैं, इसीलिए तो वह कटने लगता है, घर छोड़कर बाहर सुख ढूँढ़ने लगता है। बाकी, मार्क ट्वेन अपनी पत्नी की याद में कहा करते थे, मेरा स्वर्ग वहीं था जहाँ मेरी पत्नी थी। टालस्टाय से पूछा, तो वे कहने लगे कि मेरी बीमारी की खबर मेरी पत्नी को मत देना, नहीं तो वह मुझे शांति से मरने भी नहीं देगी। अगर आप चाहते हैं कि जीवन की हर घड़ी में आपकी याद बनी रहे, तो एक-दूसरे को प्यार और इज्जत देने में रत्ती भर भी कंजूसी न करें।

पति चाहता है कि पत्नी उसे सम्मानजनक तरीके से बुलाए, तो पति को भी उसी सम्मान से पत्नी को बुलाना होगा। अगर आप पति हैं, तो पत्नी को सम्मान देना शुरू करें और यदि आप पत्नी हैं, तो पति को सम्मान देना शुरू करें। अच्छा कार्य शुरू करने के लिए न तो ज्यादा सोचना चाहिए और न ही मुहूर्त तलाशना चाहिए। अच्छा कार्य करने की जैसे ही समझ आई, हमें उसी क्षण उसे शुरू कर देना चाहिए। संसार का सबसे अच्छा मुहूर्त वही है जिस क्षण जो कार्य करने की अंतर्प्रेरणा जग जाए। जो चीज हाथों-हाथ लागू नहीं हो पाती, वह केवल मंसूबा बन कर रह जाती है और मंसूबों में तो मारवाड़ कब से डूबा पड़ा है।

बहिनों, आप तो मेरा कहना मानेंगी। आप लोग तो धर्म और संस्कारों को धारण करने वाली हैं, आपको यह शुरुआत करनी चाहिए कि पति को 'आप' कहकर बुलाएँ। आप अपने पति को यह तो कह नहीं सकतीं कि वे आपको 'आप' कहें, लेकिन आप इतना अवश्य कर सकती हैं कि घर के सभी सदस्यों, यहाँ तक कि काम करने वाली नौकरानी को भी 'आप' कहकर बुलाएँ। यह देखकर पति भी पत्नी को 'आप' कहने को मजबूर हो जाएगा। आखिर खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता ही है। आप

मिश्री हो जाओ, अपने आप अगले का नमक गलने लग जाएगा। जीवन में इस तरह की व्यावहारिकता अपना ली जाए, तो कोई समस्या ही न रहे।

पुरुषों में ईगो, अभिमान की बड़ी समस्या रहती है। ऐसा लगता है कि उसके ईगो ने नागाई धार ली है। पुरुष सब कुछ सहन कर लेगा, लेकिन उसके ईगो को ठेस पहुँचेगी, तो बर्दाशत नहीं कर पाएगा। पति अपनी पत्नी को बहुत प्यार करता है, यहाँ तक कि पत्नी के पीछे माँ-बाप से अलग होना तक स्वीकार कर लेता है, लेकिन वह अपनी उपेक्षा बर्दाशत नहीं कर पाता। नारी को हमेशा ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे पुरुष का ईगो संतुष्ट होता रहे। अरे भाई, किसी भी काम से पहले भैरूजी को राजी करना जरूरी होता है, अब ये पतिदेव कौन से भैरूजी से कम हैं। कहीं ऐसा न हो कि पति के प्रति हमारी उपेक्षा किसी तलाक का, जुदाई का कारण बन जाए। दोनों के बीच कोई खाई खड़ी हो जाए।

मैंने सुना है कि नारी बड़ी चतुर होती है, होशियार होती है। किसे बनाना, किसे गिराना उसे खूब आता है। वह सबको बना सकती है लेकिन कई बार पति को नहीं बना पाती। कोशिश तो करती होगी, लेकिन परिणाम यह निकलता है कि नारी और नर में एक दीवार खड़ी हो जाती है। नारी को चाहिए कि वह पति से इस तरह का व्यवहार करे कि उसके सास-ससुर, ननद, देवरानी, जेठानी, देवर, जेठ सभी उस पर गौरव कर सकें। बहुत-सी कहानियाँ सुनते हैं, अमुक घर में बहू क्या आई, घर ही टूट गया। ऐसा करके उसने कोई चतुराई नहीं की। अपने ही पाँवों पर कुल्हाड़ी मार ली। घर तोड़ने से बहू को तो आजादी मिल जाएगी, लेकिन संपूर्ण घर का स्वामित्व, घर का प्यार, कुटुंब का सम्मान नहीं मिल सकेगा। एक बहू या पत्नी होने के नाते उसे इस तरह की भाषा का इस्तेमाल करना चाहिए, ऐसा व्यवहार करना चाहिए जो पूरे परिवार को एक सूत्र में बाँध कर रख सके।

प्रायः देखा गया है कि नारी अपने पति के प्रति नाराज़गी दिखाती रहती है। पति पर शक करती है, संदेह करती है। परिणाम यह निकलता है कि तकरार में ही जीवन बीत जाता है। दोनों को एक-दूसरे पर भरोसा रखना चाहिए। पति की व्यापारिक परेशानियाँ हो सकती हैं। परेशान पति घर आए और यहाँ आते ही उसे जली-कटी सुननी पड़े, तो उसे घर काटने को दौड़ेगा, वह घर में आना कम पसंद करेगा। उसका अधिक समय बाहर बीतने लगेगा। वह बाहर सुख ढूँढ़ेगा। घर में मिली उपेक्षा का परिणाम उसके पूरे परिवार को झेलना पड़ेगा।

पति-पत्नी की हालत तो देखो, एक पत्नी ने अपने पति को रात को बारह बजे जगाया और कहा, दूध पी लो। पति चौंका, आज ऐसा क्या हो गया, इतना प्रेम कहाँ से उमड़ आया कि आधी रात को जगाकर दूध पिला रही है। पति ने पूछ ही लिया कि

भागवान, आज उल्टे बाँस बरेली कैसे ? पत्नी ने कहा, अभी-अभी कलैण्डर देखा, तो पता चला कि आज नागपंचमी है। अब आधी रात को नाग ढूँढ़ने कहाँ जाऊँ, सो सोचा....।

ऐसा हुआ कि एक पति-पत्नी के बीच कई दिन से बोलचाल बंद थी। एक दिन पति को कहीं बाहर जाना था। उसने एक पर्ची पर लिखा, मुझे कल सुबह की ट्रेन से जाना है, पाँच बजे उठा देना। पर्ची उसने टेबल पर रख दी। सुबह उसकी आँख खुली तो देखा, घड़ी आठ बजा रही थी। वह गुस्से में भर उठा और अपनी पत्नी पर बरसने ही वाला था कि उसकी नज़र वहाँ रखी एक दूसरी पर्ची पर पड़ी, जिस पर लिखा था, सुबह के पाँच बज गए हैं, उठ जाइए। अब देखिए, पति-पत्नी के बीच हिन्दुस्तान-पाकिस्तान वाले हालात हैं, फिर भी कह रहे हैं, 'हम साथ-साथ हैं।'

पति-पत्नी का रिश्ता जीवन का सबसे करीबी रिश्ता होता है। पति अगर पतंग बन जाए, तो पत्नी उसकी डोर बन जाए। पत्नी अगर अंगार बन जाए, तो पति गंगा की जलधार बन जाए। पति-पत्नी का रिश्ता तो प्रेम का रिश्ता है, विश्वास का सौदा है। एक-दूसरे के साथ संतुलन की नृत्य नाटिका है। अगर आप पत्नी हैं, तो मेरा अनुरोध है कि अपने पति से इतना प्रेम करो कि वह आपमें किसी देवी के दर्शन करे और अगर आप पति हैं, तो अपनी पत्नी से इतनी मोहब्बत करें कि वह आपको किसी फरिश्ते से कम न समझे। अगर हम अपने रिश्तों को प्रेम का मंदिर बना लें, तो जीवन की बाँसुरी से कुछ ऐसे स्वर निकलेंगे -

तुम्हीं मेरे मंदिर, तुम्हीं मेरी पूजा,  
 तुम्हीं देवता हो, तुम्हीं देवता हो।  
 कोई मेरी आँखों से देखे तो समझे,  
 कि तुम मेरे क्या हो, कि तुम मेरे क्या हो ?  
 जिधर देखती हूँ, उधर तुम ही तुम हो  
 न जाने मगर किन खयालों में गुम हो।  
 मुझे देखकर तुम, जरा मुस्करा दो,  
 नहीं तो मैं समझूँगी, मुझसे खफ़ा हो।  
 बहुत रात बीती, चलो मैं सुला दूँ,  
 पवन छेड़े सरगम, मैं लोरी सुना दूँ।  
 तुम्हें देखकर ये खयाल आ रहा है,  
 कि जैसे फरिश्ता, कोई सो रहा हो।

यम और यमी के बीच में विश्वास-भरा रिश्ता था। यमी यमलोक की महारानी थी। पत्नी का महत्त्व यमराज भलीभाँति समझते थे। यमराज उसके हर संकेत को समझ

रहे थे। यमराज किसी प्राणी को धरती से उसकी इच्छा के विपरीत उठाकर लाते हैं, लेकिन यहाँ यमी की बात को उन्होंने ध्यानपूर्वक सुना। यमराज भले ही काले-कलूटे हैं, भैंसे की सवारी करते हैं, उन्हें देखकर भले ही कोई डर जाए, भले ही यमराज को दुनिया अच्छी नज़रों से न देखे, लेकिन उनकी पत्नी उन्हें सम्मान से सम्बोधित करती है। यमी ने उनसे कहा कि घर आए अतिथि का सम्मान-सहित सत्कार करें।

अतिथि का सत्कार करने के पीछे पूरा एक दर्शन है। अतिथि कौन, जिसके आने की तिथि न हो। अतिथि वह होता है जिसे हम जानते नहीं, पहचानते नहीं, लेकिन उसने हमारे यहाँ आकर भोजन करने की कृपा की। बिना सूचना जो हमारे यहाँ पहुँचता है, उसे हम कहते हैं अतिथि। हम खाना खाने बैठें और कोई हमारे घर आ गया। हमने अपनी थाली में से दो रोटी उसे भी परोस दीं, तो यह कहलाएगा अतिथि-सत्कार।

कोई हमारे द्वार पर अतिथि बनकर आता है, तो वह भगवान के बराबर होता है। हम ऐसा समझेंगे, तो भगवान के प्रति हमसे कोई भूल न होगी। लोग एक भूल कर जाते हैं। वे बाहर से आए अतिथि का तो सत्कार कर लेते हैं, लेकिन कई बार घर के सदस्यों को भूल जाते हैं।

ऐसे किस्से सुने गए हैं। किसी घर में शादी-समारोह होता है तो हम लोग दुनियाभर को तो न्यौता दे आते हैं लेकिन कई बार घर के सदस्यों की तरफ हमारी नज़र नहीं पड़ती। अपने भाई तक को भूल जाते हैं। समारोह के दौरान पता चलता है कि अमुक भाई और उसका परिवार तो आया ही नहीं। पूछने पर पता चलता है कि उन्हें कहा ही नहीं गया। बोले, तुम तो भाई हो, तुम्हें कैसी पत्रिका? बस, यहीं चूक हो जाती है। घर वालों को भूल जाते हैं।

जागरूकतापूर्वक जीने वाला व्यक्ति इस बात का बोध और विवेक रखे कि वो जिस तरह किसी अतिथि के सत्कार में कोई कमी नहीं रखता, उसी तरह परिवार के सदस्यों को भी न भूले। यह परिवार की खुशहाली का राज है। एक-दूसरे से तालमेल बिठाने का तरीका यही है कि हम घरवालों की उपेक्षा न करें। उनको भी समय दें, सम्मान दें। उनकी सुख-सुविधा का खयाल रखें। प्रेम ऐसे ही बढ़ता है। घर में सुख-शांति की ऐसे ही बढ़ोतरी होती है।

सास फल खा रही है। ज़रूर खाए, लेकिन दो पीस अपनी बहू को भी दे, हालाँकि फल सुधार कर आपकी बहू ही लाई है। वह अपने आप खा सकती है, लेकिन सास के हाथ से दिए गए फल का स्वाद कुछ अलग ही होगा। उसका खुद खाना अलग बात है और सास का खिलाना अलग बात है। अपने हाथ से खाए तो यह उसका स्वेच्छा से खाना हुआ लेकिन सास ने खिलाया, तो यह बहू के प्रति उनके प्यार का इजहार हुआ।

आप छोटे हैं, चॉकलेट या कुछ खाने की इच्छा हो रही है, अवश्य खाएँ, लेकिन अपने दादाजी को भी पूछ लें। हो सकता है वे चॉकलेट खाएँ ही नहीं, लेकिन आपका पूछना उनके लिए सुखद होगा। खाना महत्त्वपूर्ण नहीं है, आपका पूछना महत्त्वपूर्ण हो जाएगा। इसलिए घर के सदस्यों का और घर आए अतिथियों का सत्कार होना चाहिए। जिस घर में अतिथियों का सत्कार होता है, उस घर की देहरी पर मत्था टेकना किसी गुरुद्वारे में मत्था टेक आने के समान होगा। जिस घर में गए हुए अतिथि का सत्कार हो चुका हो और आने वाले अतिथि का इंतज़ार हो रहा हो, उस घर में तो स्वयं देवता भी आने को आतुर रहते हैं।

यमी ने मृत्युदेव से कहा, 'हे सूर्य-पुत्र, आपके द्वार पर ब्राह्मण के रूप में अतिथि आए हैं।' ब्राह्मण अग्नि-देवता के समान होता है। ब्राह्मण पूजा करता है, आहुति देता है। वह अग्नि-तत्त्व की साधना करता है; इसीलिए वह अपने आप में अग्नि होता है। जो केवल जन्म से ब्राह्मण हैं, उनकी बात छोड़ दीजिए। कर्म से ब्राह्मण होना ही ब्राह्मणत्व की पहचान है।

यह सच है कि मैंने वैश्य-कुल में जन्म लिया है, लेकिन मैं कर्म से ब्राह्मण हूँ। मैं चाहता हूँ आप भी ब्राह्मण बनें। मैं संसार में रहकर भी कमल की तरह निर्मल और निस्पृह रहने का आनन्द लेता हूँ, इसका पूरा बोध भी रखता हूँ। मेरी समझ से ब्राह्मण होना जीवन का बहुत बड़ा सौभाग्य है। समस्त मानव जाति में किसी भी व्यक्ति का ब्राह्मण हो जाना, उसकी जन्म-जन्म की साधना का फल होता है। यही वजह है कि प्राचीनकाल में बड़े-बड़े राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार ब्राह्मणों का सम्मान करते थे। वे मानते थे कि ब्राह्मण को दो पैसे का दान दिया और उसने स्वीकार कर लिया, तो समझो धन्य हो गए। उस ज़माने में ब्राह्मण आसानी से दान स्वीकार नहीं करते थे।

राजा बली ने महान यज्ञ किया। उन्होंने शुक्राचार्य को यज्ञाचार्य बनाया। उस यज्ञ की विशेषता यह थी कि जो भी उसे पूरा कर लेगा, उसे देवता भी पराजित नहीं कर पाएँगे। दानवों के राजा बली ने इस तरह का यज्ञ करने की ठान ली। यज्ञ पूरा होता देख देवता घबराए। यज्ञ पूर्ण हो गया, तो बली अपराजेय हो जाएगा। अब क्या किया जाए। सारे देवता प्रभु के पास पहुँचे। भगवान विष्णु के दरबार में उन्होंने अपनी पीड़ा बताई। आप ही कोई राह सुझाएँ, प्रभु।

भगवान ने तब वामन का अवतार लिया। एक छोटा, नाटा-सा बालक बनकर वे बली की यज्ञशाला के बाहर पहुँचे। भीतर यज्ञ चल रहा था। बली आहुतियाँ दे रहा था। शुक्राचार्य यज्ञ करवा रहे थे। उन्हें पहले ही अंदेशा था कि विष्णु कोई-न-कोई गड़बड़ कर सकते हैं। इसलिए उन्होंने यज्ञशाला के द्वार पर पहरा लगवा रखा था ताकि कोई भीतर प्रवेश न कर पाए। वामन को बाहर ही रोक दिया गया। बली को पता चला कि

एक ब्राह्मण यज्ञशाला के बाहर खड़ा है और दान माँग रहा है, तो उनसे न रहा गया। वे यज्ञ की वेदी से उठ गए। उनके गुरु शुक्राचार्य ने उन्हें खूब समझाया कि यज्ञ अधूरा रह जाएगा; लेकिन बली नहीं माना। उसे इस बात की चिंता थी कि एक ब्राह्मण उनके द्वार से निराश न लौट जाए। ब्राह्मण निराश लौट गया, तो उनकी कीर्ति नष्ट हो जाएगी। वे बाहर आए। देखा कि सिर पर छाता, हाथ में कमंडल, गले में यज्ञोपवीत धारण किए एक बालक खड़ा है। बली पहचान गए कि यह विष्णु भगवान हैं, लेकिन प्रत्यक्ष में कुछ नहीं बोल पाए। बालक ने उनसे कहा, 'हे राजन्, तुम्हें धन्य है। एक ब्राह्मण के लिए तुम यज्ञ की वेदी छोड़कर उठ आए, तुम्हारा कल्याण हो।'

बली ने पूछा, 'ब्राह्मण देवता! क्या माँगते हो? मेरे द्वार से निराश न लौटोगे।' वामन बली को परखते हैं, वे पूछते हैं, 'कहीं इनकार तो न कर दोगे?' बली उन्हें आश्वस्त करते हैं। तब तक शुक्राचार्य भी वहाँ आ जाते हैं। वे विष्णु की रचाई माया को समझ जाते हैं। वे बली को समझाते हैं कि वह कोई प्रण न करे, अन्यथा सब कुछ खो बैठेगा। ये साक्षात् विष्णु हैं। बली कहते हैं, जो भी हो घर आए ब्राह्मण को दान देने से मैं पीछे नहीं हट सकता। शुक्राचार्य फिर समझाते हैं कि मेरी बात नहीं मानी, तो तू श्रीहीन हो जाएगा, लक्ष्मीहीन हो जाएगा। लेकिन बावला हो चुके बली ने उनकी एक न सुनी।

वामन बली से तीन पाँव जमीन माँगते हैं। बली प्रसन्न हो कहता है, हे ब्राह्मण देवता, आपने माँगा भी तो क्या माँगा। वामन अपने कमंडल से जल निकालकर बली से प्रतिज्ञा करने को कहते हैं। शुक्राचार्य देखते हैं कि बली नहीं समझ रहे हैं, तो वे सूक्ष्म रूप बनाकर कमंडल की नली में प्रवेश कर जाते हैं। बली अपनी हथेली में पानी लेने का प्रयास करते हैं, तो पानी नहीं निकलता। भगवान विष्णु मुस्कराते हैं। उन्हें शुक्राचार्य द्वारा अपने शिष्य को बचाने के लिए किया जा रहा प्रयास समझ में आ जाता है। वे सोचते हैं कि शुक्राचार्य ने दानवों के गुरु बनकर देवताओं का बहुत नुकसान किया है। आज इन्हें भी थोड़ी-सी अक्ल दे दी जाए। वे जमीन पर पड़ा एक तिनका उठाकर कमंडल की नली में डालते हैं जिससे शुक्राचार्य की एक आँख फूट जाती है। अंततः बली अँजुली में जल भर कर प्रतिज्ञा लेते हैं।

वामन उनसे तीन पाँव जमीन माँगते हैं। वामन पहले पाँव में देवलोक माप लेते हैं, दूसरे पाँव में पूरी धरती आ जाती है। तीसरे पाँव में आधे में पूरा पाताल लोक आ जाता है तो वामन बली से पूछते हैं, अब आधा पाँव कहाँ रखूँ? बली सिर झुका लेते हैं और कहते हैं, प्रभु! आधा पाँव मेरे सिर पर रखें। तब वामन प्रभु अपने असली रूप में प्रकट होते हैं और कहते हैं, तुम धन्य हो राजा बली। जिस सिर पर मेरा पाँव लगा, वह हमेशा मेरा हिस्सा बना रहेगा और तुम पाताल के अधिपति कहलाओगे। इसके साथ ही बली सीधे पाताल चला गया।

इस कथा में जो संदेश है, उसका सार यही है कि घर आए अतिथि का सत्कार होना चाहिए। यमराज ने भी घर आए अतिथि का सत्कार करना उचित समझा। यमी ने अपने पति से कहा कि अग्नि देवता ब्राह्मण के रूप में हमारे द्वार आए हैं, आप उनसे ऐसा व्यवहार करें जिससे हमारे यहाँ सुख-शांति बनी रहे। कहीं ऐसा न हो कि ब्राह्मण देवता नाराज होकर हमें श्राप दे जाएँ। ऐसे ब्राह्मण कोई सामान्य पुरुष नहीं हुआ करते। ये तो एक तरह से ब्रह्मा के ही अंश होते हैं। इनमें ब्रह्म-तत्त्व समाहित होता है। जो अपनी साँस-साँस में ब्रह्म-तत्त्व की उपासना करते हैं, वे ब्राह्मण होते हैं। ऐसे ब्राह्मणों का होना धरती का सौभाग्य है। ऐसे ब्राह्मण का घर की दहलीज़ पर माँगने आना बहुत बड़ी बात है।

जब-जब भी लगे कि ब्रह्म-तत्त्व की सेवा में लीन रहने वाले किसी ब्राह्मण के दर्शन हुए हैं तो उसकी सेवा वैसे ही करना जैसे अपने गुरु की करते हो, जैसे मंदिर में जाकर भगवान की पूजा करते हो, क्योंकि प्रभु की सेवा में और ब्राह्मण की सेवा में यूँ कोई अंतर नहीं है। वे ब्राह्मण अपने-आप में चलते-फिरते मंदिर हुआ करते हैं, पवित्र मानसरोवर, पवित्र पुष्कर सरोवर की तरह हुआ करते हैं। उनके पास बैठना ही अपने-आप में गंगा-स्नान करने जैसा हुआ करता है। इसलिए यमी कहती है, हे सूर्य-पुत्र, जाइए, जल से उस ब्राह्मण का पाद-प्रक्षालन करिए। घर पर कोई मेहमान आए, तो उसके सम्मान का सबसे अच्छा तरीका यही है कि सबसे पहले जल से उनके चरण पखारे जाएँ।

रामायण से यही सीख मिलती है कि हमें किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। आधुनिक युग में श्री रामानन्द सागर ने टीवी पर रामायण को धारावाहिक के रूप में प्रदर्शित कर आज की पीढ़ी को एक ऐसा खज़ाना दे दिया है कि जिसका कोई मोल नहीं लगाया जा सकता। जिस महान ग्रंथ को लोग पढ़कर जानें, उसे फिल्मों के रूप में देख श्रद्धा का आवेश कई गुणा बढ़ गया। सभी जानते हैं कि जब-जब टीवी पर रामायण का प्रसारण होता था, देशभर में सड़कें सूनी हो जाया करती थीं। रामायण ने लोगों को बताया कि जब-जब ऋषि-मुनि राम-दशरथ के महलों में आए, तब-तब राम-दशरथ ने उनके पाँव धोकर अपने माथे से लगाया। इसी तरह वनवास के दौरान राम जिस-जिस ऋषि-मुनि के आश्रम में गए, वहाँ उन्होंने गंगा-जल से उनके पाँव धोए। सम्मान राम का नहीं, घर आए अतिथि का किया गया। अतिथि के इस तरह के सम्मान का तरीका आज देखने को नहीं मिलता।

कुछ वर्ष पहले तक लोग अपने घरों के बाहर लिखते थे, अतिथि देवो भवः। जमाने ने करवट बदली। फिर लिखा जाने लगा, स्वागतम्। आजकल तो प्रायः घरों के बाहर एक तख्ती लटकी मिलती है, जिस पर लिखा होता है, कुत्ते से सावधान। पता



नहीं किस कुत्ते से सावधान रहना है। लोगों का नज़रिया बदल गया, शब्द बदल गए। अतिथि का सत्कार तो आज भी होता है। आज लोगों के पास ख़ूब पैसा है। किसी ज़माने में गिने-चुने लोग ही लखपति हुआ करते थे। अब तो करोड़पतियों की संख्या भी इतनी है कि गिनी न जा सके। अरबपति भी ख़ूब हो गए हैं। फ़र्क़ केवल इतना ही आया है कि पहले ग़ैरों की भी सेवा होती थी, आजकल सिर्फ़ अपनों की ही सेवा होती है। पहले कोई गाँव से होकर गुज़रता था, तो उसका सामर्थ्य-अनुसार सत्कार किया जाता था। अब परिचितों का ही सत्कार होता है।

पहले दाल-रोटी से काम चलता था। अब कोई अतिथि आ जाए, तो दो-तीन सब्जी बनती है। मिठाई भी रखी जाती है। हमारे एक प्रिय श्रावक हैं रमेश जी अग्रवाल। कागज के बड़े व्यापारी हैं। हमारे साहित्य-प्रकाशन में उनकी बहुत बड़ी भूमिका है। वे कहते हैं, प्रभु घर पधारते रहें, आपके आने से हमें भी उस दिन कुछ विशेष खाने को मिल जाया करता है। घरवाली चार व्यंजन बना लेती है। आपके सत्कार में हमारा ही स्वार्थ है।

सत्कार करना ही चाहिए। ऊपर वाले ने दिया है तो बाँटो। आटा कोई पीपों में रखने के लिए तो होता नहीं है, पीपों में रखोगे तो ईलियाँ खा जाएँगी। अरे भाई, खाओगे और खिलाओगे तो ऊपरवाला ख़जाना भरता रहेगा। केवल बटोरोगे, तो बटेर बन कर रह जाओगे। बटेर का क्या होता है, आप भली-भाँति जानते हैं। बहेलिया आएगा और बटेर का बँटाढार कर जाएगा। आजकल सत्कार का एक और तरीका हो गया है। किसी के घर जाएँ, तो घरवाली एक ऐसी प्लेट ले आती है जिसके चार खानों में बादाम, काजू, किशमिश, अखरोट भरे होते हैं।

मैं एक बार किसी के यहाँ मेहमान बना। घरवाली ऐसी ही प्लेट ले आई। मैं चौंका, अरे इतने महँगे ड्राई फ़ूट। उसने राज की बात बताई, महाराजश्री! ये काजू-बादाम सस्ते पड़ते हैं। मैंने पूछ लिया, वो भला कैसे? उसने बताया, चार लोग घर में आए, प्लेट उनके आगे कर दी। उठाकर भी वे कितना लेंगे। एक-एक बार प्लेट में हाथ डालेंगे, तब भी माल बचा रह जाएगा। एक बार की भरी हुई प्लेट कई महीने चल जाती है। किसी के स्वागत के लिए काजू-बादाम सबसे सस्ती चीज साबित होती है। अन्य नाश्ता रखूँ तो महँगा पड़ता है। अगर मैं नाश्ते की प्लेट में दो नमकीन, दो मिठाई और चाय-कॉफी रखूँ, तो सारी उठ जाएगी। बादाम-काजू रखो, तो दो-चार पीस उठते हैं। नाम बड़ा, दाम छोटा।

बात नचिकेता के स्वागत की हो रही थी। यमी ने पति से कहा, तो यमराज ने विचार किया कि ब्राह्मण का स्वागत-सत्कार न किया, तो उसका यश कलंकित हो जाएगा। पुण्य क्षीण हो जाएँगे। सुख-शांति रूठ सकती है। ब्राह्मण को रुष्ट क्यों किया

जाए। यमी की बातें यमराज के समझ में आ गई। वे तत्काल यमलोक के द्वार पर प्रस्तुत हुए। यमराज ने ब्राह्मण के पाँव धोए। नचिकेता प्रसन्न हो गए। तीन दिन से यमराज का इंतज़ार करते जो उनका मन ख़राब हो रहा था, वह बदल गया। वह सोचने लगे, यमराज के बारे में लोग अच्छे विचार नहीं रखते, लेकिन ये तो बहुत ही सज्जन हैं। देखो तो सही, पाद-प्रक्षालन के लिए कितनी विनम्रता से हाथ में गंगा-जल का कलश लिये चले आ रहे हैं।

यमराज की विनम्रता ने उनकी पहले से बनी हुई छवि को तोड़ा। यमराज अकड़ते तो रूप अलग होता, लेकिन वे विनम्रता से प्रस्तुत हुए। अतिथि का स्वागत इसी तरह किया जाता है। तभी दोनों के बीच आत्मीयता का संबंध बनता है। तब घर आया अतिथि आशीर्वाद ही देकर जाएगा। अतिथियों के आशीर्वाद से तो नवग्रहों के दोष दूर हो जाते हैं। दुर्वासा भले ही क्रोध के अवतार कहे जाते हों, पर अगर उनकी भी दिल से सेवा की जाए, आतिथ्य-सत्कार से उन्हें ख़ुश किया जाए, तो वे भी ऐसा आशीर्वाद और दिव्य मंत्र दे जाते हैं कि कुंती पाँच महान पुत्रों की माँ बनने का सौभाग्य प्राप्त कर लेती है।

तो क्या आप समझे कि आतिथ्य सत्कार क्यों किया जाना चाहिए, उसके क्या फ़ायदे होते हैं? फ़ायदा समझा तभी तो यमराज ने नचिकेता का इस तरह स्वागत-सत्कार किया। यदि यमराज नचिकेता के सामने हाथ में मृत्युदंड लेकर आते, तो नचिकेता की तो घिग्घी बँध जाती, पर हाथ में गंगा-जल और पूजा का अर्घ्य लेकर आए हैं, तो नचिकेता उत्साह और विश्वास से भर उठा। उसे लगा, अब मृत्युदेव से डरने की ज़रूरत नहीं है। अब तो मृत्यु से मुलाकात का आनन्द ही कुछ और होगा। कुछ रहस्य खुलेंगे, कुछ उपलब्धियाँ होंगी, कुछ गीत रचेंगे, कोई गीता जन्म लेगी, कोई रामायण फिर से पैदा होगी, कोई वेद फिर से अंकुरित होगा, कोई अर्जुन फिर से कृष्ण का आह्वान करेगा।

देखते हैं, कठोपनिषद् में अब कौन-से घुंघरू बजते हैं, कौन-सी वीणा के तार झनझनाते हैं, कौन-सी बाँसुरी की स्वर लहरियाँ अपने लोगों के बीच बिखरती हैं? यह हम आने वाले पृष्ठों में देखेंगे।



# 6

## आतिथ्य-सत्कार का तरीका

कठोपनिषद् में दी गई आतिथ्य-सत्कार की भाषा बहुत ही सरस और अंतर-चक्षु खोलने वाली है। यमराज का नचिकेता से प्रथम साक्षात्कार में किया गया स्वागत अपने आप में बड़ी सीख दे जाता है। कठोपनिषद् कहता है कि यमराज ने बड़े ही विनम्र शब्दों में कहा, 'हे ब्राह्मण, आप नमस्कार करने योग्य अतिथि हैं, आपको नमस्कार है। हे ब्राह्मण! मेरा कल्याण हो। आप प्रथम तो ब्राह्मण हैं। फिर आप मेरे अतिथि हैं क्योंकि आप आयु पूरी होने से पूर्व ही यमलोक आए हैं। इसलिए आपकी सेवा व सत्कार करना मेरा कर्तव्य है। आपने जो तीन रात्रियों तक मेरे घर पर बिना भोजन किए निवास किया है, इसलिए आप प्रत्येक रात्रि के बदले मुझसे तीन वरदान माँग लीजिए।

ऋषि उद्दालक यज्ञ के दौरान हुए घटनाक्रम में अपने पुत्र नचिकेता को यमराज को दान कर देते हैं। नचिकेता सशरीर यमलोक पहुँचते हैं। यमराज कहीं बाहर गए हुए होने से नचिकेता यमलोक के द्वार पर ही उनका इंतजार करते हैं। इस दौरान यमी उनके लिए भोजन व आराम करने की व्यवस्था करवाना चाहती है, लेकिन नचिकेता विनम्रता से अस्वीकार कर देते हैं। जब कोई व्यक्ति किसी को दान में दे दिया जाता है, तो उसे वही करना चाहिए जो उसका मालिक आदेश दे। यमराज वहाँ नहीं थे, इसलिए नचिकेता यमलोक के द्वार पर ही खड़े हो गए।

यमी ने पूरा प्रयास किया कि नचिकेता का आतिथ्य-सत्कार किया जाए। कोई भी पत्नी हो, वह चाहेगी कि उसके पति का कल्याण हो। पति घर पर न हो और कोई अतिथि आ जाए, तो उसका पहला कर्तव्य यही होता है कि वह उसका स्वागत-सत्कार करे। वह नहीं चाहती कि उससे ऐसा कोई अनर्थ हो जाए, जिससे उसके पति के पुण्य नष्ट हो जाएँ। पत्नी अपने पति का भला ही चाहेगी।

एक महिला मेरे पास आई और कहने लगी, 'महाराज जी, मेरे पति गुटखा बहुत खाते हैं। आप इनका गुटखा छुड़वा दें, मैं धन्य हो जाऊँगी।' मैंने इस पर ज़्यादा गौर नहीं किया, क्योंकि मेरे पास आने वाली कई महिलाएँ ऐसा आग्रह करती रहती हैं। मेरी समझ से ऐसे पति कम होते हैं जो कहते हों कि मेरी पत्नी में अमुक दुर्गुण हैं, कृपया छुड़वा दीजिए। लेकिन सारी पत्नियाँ एक ही तरह से सोचती हैं। वे पति के स्वास्थ्य को लेकर चिंतित रहती हैं। पत्नी अपने पति की सबसे बड़ी हितैषी होती है, सदा शुभ चाहने वाली होती है। पति तो पत्नी का सुहाग होता है। सुहाग स्वस्थ रहे, सुरक्षित रहे, ताजीवन रहे, पत्नी की यही तो चाहत, दुआ और प्रार्थना होती है।

पत्नी और धर्मपत्नी में अंतर है। धर्मपत्नी वह होती है, जो पति को धर्म की राह पर ले जाए। केवल पत्नी है तो हो सकता है वह पति को पतन के मार्ग पर ले जाए। महिलाएँ विचार करें कि वे क्या हैं, पत्नी या धर्मपत्नी? धर्मपत्नी की प्रेरणा रहेगी कि दुकान जाओ, तो पहले मंदिर में मत्था टेक कर जाना। पत्नी रहेगी तो कहेगी कि शाम का खाना आज बाहर खाएँ। तुम तो दो टिकटें ले आना, बड़ी अच्छी फिल्म है, दिल वाले दुलहनिया ले जाएंगे, मजा आ जाएगा। जिसके जैसे संस्कार होंगे, वैसी बातें होंगी। ज्यों-ज्यों धर्मपत्नियों की बजाय पत्नियों का दौर बढ़ता जा रहा है, त्यों-त्यों बाजारू खाने का चलन बढ़ा है, बीमारियाँ फैल रही हैं, पति की जेब खाली हो रही है। अब पत्नी के रूप में सीता और पार्वती नहीं मिलती, अब तो सिंदुराएँ और कोमोलिकाएँ बनने की होड़ मची है। टीवी धारावाहिकों ने घर-घर इन पात्रों को इस तरह पहुँचा दिया है कि हर पत्नी में उनके चरित्र हावी होते जा रहे हैं। पत्नी से भगवान बचाए, पर अगर धर्मपत्नी मिलती हो तो उस भागवान में ही भगवान देख लें।

उस महिला ने मुझसे आग्रह किया, तो पहले तो मैंने इसे गंभीरता से नहीं लिया, लेकिन जब उसने कहा कि आज उसका जन्म दिन है, तो मैंने उसके पति से बात करने का फैसला किया। धनपति मुकेश अंबानी ने अपनी पत्नी को उसके जन्म दिन पर 240 करोड़ रुपए का विमान गिफ्ट में दिया। जो महिला मेरे पास आई थी, उसके पति की ऐसी क्षमता न थी। पति सामने आए, तो मैं उन्हें अलग से लेकर बैठा। दो मिनट तक अपने तरीके से उन्हें समझाया और यह कहा कि यदि आप गुटखा छोड़े देंगे, तो आपकी पत्नी को आपकी तरफ से यह जन्मदिन का सबसे बड़ा तोहफा होगा। पति को याद ही न था कि आज पत्नी का जन्मदिन है। उन्हें मेरी बात ऐसी लगी कि तत्काल उन्होंने हाथ में जल लिया और गुटखे को हमेशा के लिए तिलांजलि दे दी। पति के इस त्याग पर पत्नी की आँखें भर आईं। उसने कहा, 'मेरी शादी हुए ग्यारह साल हो गए, पर आज मुझे

जितनी खुशी मिली है, उतनी दो बच्चों की माँ बनकर भी नहीं मिल पाई।' इसलिए मैंने कहा, पत्नी से बड़ा पति का कोई हितैषी नहीं होता।

दुनिया में हितैषी दो प्रकार के होते हैं - पहले माँ-बाप और दूसरी पत्नी। पुत्र या पुत्री के हित की जितनी कामना माँ-बाप करते हैं, उतनी कोई नहीं करता। गुरु लोग ज्ञान की बात करते हैं। शिष्यों का हित चाहते हैं, लेकिन उनके हित चाहने में मोह नहीं होता। बुराई छोड़ें तो ठीक, न छोड़ें तो भी ठीक। लेकिन माँ-बाप और पत्नी ऐसे होते हैं जो चाहते हैं कि उनका पुत्र या पति हर हालत में बुराई छोड़ दे। पत्नी हितैषी होती है, इसलिए पति को उसकी बात की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

यही हुआ। तीन दिन बाद यमराज लौटे और यमी से उन्हें सारी बात का पता चला, तो पत्नी की बात को अपने हित में समझते हुए वे तत्काल द्वार तक आए और नचिकेता का स्वागत-सत्कार किया। यमी ने यमराज से कहा कि देखें, अतिथि के भोजन व विश्राम की व्यवस्था करावें। पता लगाएँ कि अतिथि किस प्रयोजन से आए हैं। हमारे द्वार पर कोई आता है और हमारे कुछ करने से प्रसन्न होता है, तो वह कार्य हमें प्रसन्नतापूर्वक करना चाहिए।

उस महिला ने कहा, मेरे पति का गुटखा छुड़वा दीजिए। मैंने पति से कहा कि तुम्हारे एक काम से तुम्हारी पत्नी को जीवनभर का सुख मिल सकता है, तो इससे बड़ी और क्या बात होगी। उसने मान लिया। इसी तरह यमी की बात मानकर यमराज हाथ में ताँबे का कलश लिये द्वार तक पहुँचे। कलश में गंगाजल भरा था। उन्होंने विनम्रतापूर्वक नचिकेता के चरण धोए। अतिथि के सामने अकड़ दिखाने से उसका सत्कार नहीं किया जा सकता। गंगाजल से किया गया अभिषेक हमारी विनम्रता का ही प्रतीक है। कभी यह मत सोचो कि जो हमारे घर आया है, वह छोटा है या बड़ा। घर आया अतिथि भगवान का रूप है और भगवान कभी छोटे या बड़े नहीं होते। भगवान हमेशा बड़े ही होते हैं। भगवान सीधे कभी दैवीय रूप में नहीं आते। वे एक साधारण मानव का रूप लेकर आते हैं। चंदनबाला के सामने भगवान महावीर सामान्य रूप में पहुँचे। मरुदेवी माता के सामने ऋषभदेव और सुदामा के सामने कृष्ण का पहुँचना भी कुछ ऐसा ही था। शबरी के सामने भगवान राम एक वनवासी के रूप में आए थे। राम न जाने कितने लोगों से मिले, लेकिन शबरी ने उनमें भगवान को देख ही लिया। यह चंदनबाला ही थी जिसने महावीर को पहचाना और उनसे आग्रह करने लगी कि प्रभु, मेरी भव-भव की बेड़ियाँ काट दीजिए। भगवान कहाँ होते हैं? देखने और समझने वाले की नजरों में। अन्यथा भगवान आँखों के आगे से निकल जाएँ, हम उन्हें नहीं पहचान पाएँगे।

अतिथि का सत्कार करना प्रभु की प्रार्थना करने जैसा ही है। घर आए अतिथि का विनम्रतापूर्वक सत्कार करना चाहिए, फिर चाहे वह कोई संन्यासी हो या सामान्य आदमी। द्वार आए अतिथि का स्वागत-सत्कार होना ही चाहिए। साधु-साध्वी में प्रायः साध्वी को छोटा पद माना गया है, लेकिन हमारा मानना है कि साध्वी का भी उसी तरह स्वागत-सम्मान होना चाहिए जैसा हम साधु का करते हैं। हम साध्वी के आगमन पर चार कदम आगे चलकर उनका स्वागत करते हैं और जब वे हमारे यहाँ से जाती हैं, तो उन्हें भी द्वार तक पहुँचाने जाते हैं। यह अदब है। अदब तो चाहे बड़े का करो या छोटे का, अदब तो अदब ही रहेगा। अदब लेने की नहीं, देने की चीज है। अदब जितना दोगे, अदब का 'अदब' उतना ही बढ़ेगा। अतिथि का अदब तो हमारा पहला धर्म है। अतिथि-सत्कार से घर की दरिद्रता दूर होती है। हमारे यहाँ मान्यता है कि बहन-बेटी को दिया गया हमेशा फलदायी होता है। बहन-बेटी हमारे घर आकर भोजन करती है, तो नवग्रह-दोष दूर होते हैं। उन्हें हमेशा देते रहना चाहिए। जिसके घर में बाई-बेटी राजी रहती है, उस घर पर लक्ष्मी और विष्णु राजी रहते हैं।

धर्म आखिर क्या है? केवल पूजा-पाठ कर लेना ही धर्म है या कुछ और भी है? अतिथि का सत्कार करना हमारा पहला धर्म है। घर आए अतिथि के समक्ष विनम्रता से पेश हों। जल से उसका अभिषेक करें। बैठने को आसन दें। उनसे कहें, 'आइए, विराजिए। आपका स्वागत है। आपके आने से हमारा घर धन्य हो गया।' इस तरह के शब्द ही आतिथ्य-सत्कार का एक अंग बन जाएँ। कोई अतिथि आया, हम मुँह सुजाए बैठे रहे, अभिवादन तक न किया। अतिथि सोचेगा, घर के भीतर जाकर क्या करूँ। इंसान हो तो मिलूँ, भीतर तो सब मूर्तियाँ बैठी हैं। मूर्तियों के तो दर्शन किए जा सकते हैं। ऐसे में तो अतिथि दरवाजे से ही लौट जाएगा। याद रखना, तब अतिथि का लौटना भगवान का लौटना होगा।

कहते हैं, नचिकेता यमराज के द्वार पर पहुँचे। वहाँ वे अतिथि थे। यमराज का दायित्व था कि वे उनका सम्मान करते। उनसे कहते, हे ब्राह्मण देवता, मैं आपका अभिवादन करता हूँ। यमराज ने नचिकेता से ऐसा ही कहा, उनका स्वागत किया। उनके पाद-प्रक्षालन किए। यूँ तो लोग यमराज से डरते हैं, लेकिन यहाँ बात दूसरी है। नचिकेता यहाँ अतिथि के रूप में आए थे। तीन दिन से भूखे थे। कहीं ऐसा न हो कि नचिकेता रष्ट्र होकर श्राप दे दें। अतिथि का कुपित होना ठीक नहीं होता। एक तो अतिथि, ऊपर से ब्राह्मण, यमराज भला पीछे कैसे रह सकते थे। सत्कार से प्रसन्न होकर अतिथि मेजबान को उसके कल्याण का ही तो आशीर्वाद देगा। इसलिए यमराज ने विनम्रतापूर्वक कहा, 'हे नचिकेता! मैं आपका अभिवादन करता हूँ।'

अतिथि आए तो उससे ऐसा व्यवहार किया जाना चाहिए कि वह संतुष्ट होकर लौटे। अतिथि का असंतुष्ट होकर जाना हमारे हित का सौदा नहीं है। लोग अतिथि को क्यों खिलाते हैं, चाय-पानी क्यों पूछते हैं? अतिथि को मिठाई खिलाई जाती है। पति ने पत्नी से पूछा, तुम ये मिठाई के डिब्बे भर कर रखती हो, मुझे तो नहीं खिलाती। पत्नी ने कहा, ये आपके लिए नहीं, घर आने वाले अतिथियों के लिए हैं। आपकी इज्जत बनी रहे, इसके लिए मैं ये मिठाई रखती हूँ। अतिथि संतुष्ट होकर जाना चाहिए। इसी में आपका और घर-परिवार का कल्याण है।

अतिथि के लिए भी नियम-कायदे हैं। ऐसा नहीं है कि आप कहीं अतिथि बनकर गए, तो वहाँ अतिथि ही बन कर रहें। उस घर के लिए अपनी आहुतियाँ देने की कोशिश करें। ऐसी आहुतियाँ भी मत दे बैठना कि घर में रहने वालों के बीच दीवारें खड़ी कर आओ। अतिथि तो शकुनि भी बना था। हालाँकि वह धृतराष्ट्र का साला था, लेकिन साले ने पूरा घर बरबाद कर डाला। यह देश और देश की माटी एक दफा भाभी की बेइज्जती के लिए दुर्योधन को तो माफ कर सकती है, लेकिन घर में आकर सत्यानाश करने वाले साले को कभी माफ नहीं कर सकती। शकुनि यानी सत्यानाश का दूसरा नाम। ऐसे मेहमान से तो भगवान बचाए।

मेहमान तो मेह जैसा हो, आए तो घर-आँगन को तृप्त कर जाए। जिसके आने से गीत बन जाए कि 'आने से जिसके आए बहार, जाने से जिसके जाए बहार।' मेहमान तो जँवाई भी होता है। ससुराल जाओ, तो वहाँ केवल जँवाई बनकर न बैठ जाना। जिस पत्नी को अपना माना है, उसके माता-पिता को अपने माता-पिता जैसा समझना। हमारे यहाँ कहा जाता है कि बेटा देकर बेटा लिया जाता है। लेकिन वास्तव में ऐसा होता दिखता नहीं है। बेटा तो जाती है, पर बेटा नहीं मिलता। इस व्यवस्था में परिवर्तन होना चाहिए। जँवाई-पद तो एक दिन का है। किसी की बेटा आपकी बहू बन जाती है, तो आपकी बेटा भी तो किसी की बहू बनेगी। जँवाई बेटा बन जाए, तो सारी समस्या ही हल हो जाए। फिर कोई यह समझेगा ही नहीं कि एक बेटा और हो गई। उन्हें लगेगा, हमने एक बेटा को जन्म देकर किसी एक बेटे को गोद पा लिया है।

तुम्हें पा के हमने जहाँ पा लिया है,  
जमीं तो जमीं, आसमां पा लिया है।

तब बेटा के जन्म पर और जँवाई के घर आने पर यही लगेगा कि तुम्हें क्या पा लिया, अपने घर-आँगन में ही सारा जहाँ पा लिया, सारा आसमां पा लिया। संसार वो नहीं है, जो धरती पर बना है; संसार वो है जो हमारी बाँहों में आ जाता है।

आप चाहें जँवाई के रूप में मेहमान बनें या किसी मित्र के रूप में, उस घर के लिए मददगार अवश्य बनें। हुमायूँ जैसों ने तो अगर किसी एक झोपड़े में भी रात भर का बसेरा पा लिया था, तो उस झोपड़े को बाद में उसने झोपड़ा न रहने दिया; उसे भी मार्बल का महल बना दिया था। खिलाने वाला तो खिलाकर खुश हो जाएगा, पर हम किसी के घर जाकर तभी खाएँ जब हम उस खाए गए नमक का ऋण वापस किसी न किसी रूप में चुकता कर सकें।

दुनिया में दो किस्म के लोग होते हैं – कुछ खाकर खुश होते हैं और कुछ खिलाकर। कुछ देकर खुश होते हैं और कुछ लेकर। जो देकर खुश होते हैं, वे अगले जन्म में सम्राट हो जाते हैं। जो लेकर खुश होते हैं, वे इस जन्म में भले ही भिखारी न हो, पर अगले जन्म के लिए तो उन्होंने व्यवस्था कर ही ली है। इसीलिए तो जब कोई भिखारी हमारे यहाँ भीख माँगने आता है, तो भले ही हमें क्यों न लगता हो कि यह माँगने आया है, पर हकीकत में वह माँगता कम है, अपनी दयनीय दशा दिखाकर हमें बहुत-कुछ दे जाता है। हम जो देते हैं, वह तो कौड़ी दो कौड़ी का होता है, पर वह जो देकर जाता है, वह करोड़ों का होता है। भिखारी हमें पैसा तो नहीं देता, पर जीवन की यह सीख जरूर दे जाता है कि बंदे, मैंने कुछ न दिया सो मेरी यह हालत है; सोच लो, अगर तुमने भी कुछ न दिया, तो तुम्हारी भी वही हालत होने वाली है, जो आज मेरी है।

ऐसा हुआ, एक इंसान जन्म-जन्मांतर का दरिद्र था। भीख मांगकर गुजारा करता। हाँ, उसकी एक जरूर खास आदत थी कि वह जब भी भीख माँगने के लिए घर से निकलता, भगवानजी को याद करके ही निकला करता था। एक दिन भगवानजी ने सोचा कि यह बेचारा रोज मुझे याद करता है, तो चलो आज इसकी गरीबी दूर कर देता हूँ। आज जैसे ही भिखारी भीख माँगने के लिए निकला और कुछ दूर ही चला होगा कि तभी उसे सामने से एक चमचमाता हुआ रथ आता दिखाई दिया। उसे लगा, जरूर यह रथ राजा का होगा। उसने मन में ठान लिया कि आज वह राजा से ही भीख माँगेंगा। राजा से कहेगा कि प्रभु, आज इतना दे दो कि फिर कभी किसी से माँगने की जरूरत ही न रहे।

मिलेगा भी तो उतना ही न जितना हम अपनी ओर से किसी की झोली में डालेंगे। बीजों को अगर बोया ही नहीं, तो धरती लौटाएगी कैसे? भिखारी जैसे ही आगे बढ़ा कि अचानक वह रथ भिखारी के पास आकर रुक गया। रथ में से दिव्य आभा लिये हुए एक व्यक्ति उतर कर आए और नीचे उतरते ही उसने भिखारी के सामने अपना हाथ फैलाया और कहा, 'भाई, जो तुम्हें देना हो, मुझे दे दो।'



भिखारी स्तब्ध रह गया। यहाँ तो उल्टे लेने के देने पड़ गए। कहाँ तो वह लेने निकला था और कहाँ यहाँ देना पड़ रहा है। पर क्या करे, कोई माँगे, तो देना तो पड़ेगा। भिखारी भी जब घर से निकलता है, तो खाली हाथ नहीं निकलता। कटोरे में कुछ खोटी चवन्नियाँ, झोले में कुछ सूखी रोटियाँ या बासी अनाज साथ लेकर निकलता है। इससे माँगने में सुविधा रहती है। कटोरे में जब कुछ चवन्नियाँ रहती हैं, तो उसे देखकर देने वाला समझ जाता है कि यह कोई याचक है। अपने आप सहानुभूति पैदा हो जाती है। देने का जी कर लेता है।

भिखारी ने अपनी झोली में हाथ डाला। देखा, उसकी पत्नी ने उसकी झोली में आज मुट्ठी-दो मुट्ठी चावल डाल दिए थे। भिखारी ने झोली में से एक चुटकी चावल निकाले और रथ से उतरे उस व्यक्ति के हाथ में दे दिए। उस व्यक्ति ने इस दान के लिए झुककर आभार व्यक्त किया और पुनः अपने रथ पर सवार होकर आगे बढ़ गया।

यह सब हाल देखकर भिखारी इतना खिन्न हुआ कि उसे लगा, आज मुहूर्त ठीक नहीं हुआ, घर से निकलते ही अपनी ही जेब सलामत नहीं रही, अब आगे क्या मिलेगा? यह सोचकर वह वापस घर लौट आया और खीझ खाते हुए झोली अपनी घरवाली के आगे फेंक दी। झोली के चावल झोंपड़े के आँगन में बिखर गए। भिखारी और उसकी पत्नी के आश्चर्य का तब ठिकाना न रहा, जब उन्होंने देखा कि चावल के उन दानों में कुछ दाने चमक रहे थे। करीब जाकर देखा तो पाया कि चावल के उतने दाने सोने के हो गए, जितने उसने उस व्यक्ति को दान में दिए थे।

भिखारी ने अपनी पत्नी को सारा किस्सा बताया, तो पत्नी ने चिल्लाकर कहा, 'अरे दौड़कर जाओ, उस रथ वाले को ये बचे हुए सारे चावल भी दे आओ, ये भी सोने के हो जाएँगे।' भिखारी ने माथा पीटते हुए कहा, 'अरी भागवान, अब वो रथ वाला कहाँ मिलने वाला है। लक्ष्मी तो मेरे द्वार आई थी, मैं ही उसे पहचान न पाया।'

मिलेगा तो आखिर वही न, जो हम अपनी ओर से देंगे। कुदरत का तो कानून ही यही है - इस हाथ दे, उस हाथ ले। अपने घर में जब भी किराने का सामान खरीदो, तो केवल घर के सदस्यों तक के लिए ही मत खरीदना। एक हिस्सा पहले से ही उन लोगों के लिए खरीद लेना, जो हमारे घर में मेहमान बनेंगे। जिस घर में जा चुके मेहमान की सेवा हो चुकी है, और आने वाले मेहमान की इंतज़ारी हो रही है, उस घर में तो मैं और आप तो क्या, स्वयं भगवान भी कभी मेहमान बनकर आने की राह देखा करते हैं। किसी के यहाँ अतिथि बन कर जाएँ और वहाँ आपका स्वागत हो, यहाँ तक तो ठीक है। बाद में वहाँ कोई काम दिखे, तो अवश्य करें। केवल अतिथि ही बने न रहें। बेटे की

बारात लेकर जाएँ, तो लड़की वाले से आतिथ्य-सत्कार जरूर करवाएँ, पर जरूरत पड़ जाए, तो खुद भी काम में हाथ बँटाने से पीछे न रहें। अतिथि को उतना ही लेना चाहिए जितना वह खुद दूसरों को देने की क्षमता रखे। ऐसा नहीं कि मैं खुद तो अतिथि बनकर जाऊँ और मेजबान से खूब अपेक्षा रखूँ लेकिन कोई मेरे यहाँ आए तो मैं उसका सत्कार न करूँ।

बहुत से लोग किसी के यहाँ मेहमान बनकर जाते हैं तो वहाँ से वापसी का टिकिट बनवाने का जिम्मा भी मेजबान पर छोड़ देते हैं। बेचारा मेजबान संकोच में मारे जवाब नहीं देता; टिकिट बनवा कर ले आता है। तब उस व्यक्ति का भी दायित्व बनता है कि वह मेजबान कभी उसके यहाँ आए, तो उसका वैसा ही सत्कार किया जाए। यमराज ने यमी की बात मानते हुए घर आए अतिथि का, नचिकेता का आदर के साथ सत्कार किया। सत्कार के बाद क्या होता है। यमराज नचिकेता को क्या देना चाहते हैं, नचिकेता उनसे क्या पाना चाहते हैं? उनके बीच क्या संवाद होता है? यह आप आगे पढ़ेंगे।



# 7

## स्वर्ग का राज

यमराज के आतिथ्य-सत्कार को स्वीकार करते हुए 'शुभम् भूयात्' तथा 'शिवास्ते पंथानः' के भाव रखते हुए नचिकेता यमराज के शुभ की, कल्याण की कामना करते हैं। यमलोक की यह व्यवस्था है कि वहाँ पर कोई प्राणी मरकर ही पहुँच सकता है, लेकिन नचिकेता सशरीर यमलोक पहुँचे थे। ऐसी स्थिति में यमराज का दायित्व बनता था कि चाहे जिस भी तरह से वे यमलोक पहुँचे हों, उनका आयुष्य अभी शेष होने के कारण उन्हें पुनः धरती पर भेजा जाए; लेकिन उन्हें खाली हाथ भी तो नहीं भेज सकते थे। एक ब्राह्मण अतिथि के रूप में यमराज के द्वार पर पहुँचा था। यमराज की पत्नी यमी भी उन्हें अतिथि का दर्जा दे चुकी थी। तब भला यमराज कैसे पीछे रह सकते थे? ऐसी स्थिति में यमराज ने आतिथ्य-सत्कार की परंपरा का निर्वाह किया, यही अपने-आप में प्रेरणास्पद घटना है। हम लोग इस बात से यह सीख ले सकते हैं कि जब यमराज जैसे देवता भी, कि जिनके नाम मात्र से रूह काँप उठती है, वह भी घर आए मेहमान को सम्मान देना अपना धर्म समझता है, तो हम लोग तो सामान्य लोग हैं। आतिथ्य-सत्कार को हमें अपना धर्म, घर की शोभा और रिश्तों का आधार मानना चाहिए।

किसी का अभिषेक करना हो, तो गंगाजल से उनके पाँव धोना आतिथ्य-सत्कार का पहला पायदान माना जाता है। यमराज ने भी ऐसा ही किया। उन्होंने नचिकेता का सम्मान करते हुए उन्हें भोजन-पानी के लिए अनुरोध किया, लेकिन नचिकेता वहाँ कोई भोजन करने तो गए नहीं थे। पिता के द्वारा मृत्यु को दान में दिए जाने के कारण ही उन्हें यमलोक तक की यात्रा करनी पड़ी थी। दुनिया में कौन व्यक्ति होगा, जो अपने लिए मृत्यु की वांछा या मृत्यु की कामना करेगा? जीवन जीने के लिए है। किसी को भी जन्म-जन्मान्तर की तपस्या के बाद मानव-जीवन मिलता है। बड़े सौभाग्य से खिलता है यह मानव-जीवन का फूल। इस तरह उपलब्ध हुए जीवन को भला कौन समाप्त कर यमलोक पहुँचना चाहेगा? कोई नहीं।

जीवन तो एक वरदान है। कृष्ण की बाँसुरी की तरह सरसाता हुआ उपवन है। जीवन का पल-पल आनन्द लेने की अगर आदत डाल लो, तो जीवन से बढ़कर न कोई स्वर्ग है, न कोई वैकुण्ठ है। सच्चाई तो यह है कि जीवन ही भगवान है और जीवन ही ब्रह्म-धाम। जीवन उत्साह से भरा हो, तो जीवन को जीने का मजा ही कुछ और है। जीवन को ऐसे जीओ जैसे सागर में लहरें उठती हैं, मंदिर में दीप जलता है, रात में चाँदनी महकती है। लोग मंदिर जाते हैं; मैं तो कहूँगा आप अपने जीवन को ही मंदिर बना लो। अपने बच्चे को ही भगवान का बाल रूप समझ लो, अपने सामने आने वाले हर रूप में प्रभु की मूरत देख लो, तो आपको प्रभु की पूजा या इबादत के लिए किसी मंदिर-मस्जिद या गिरजाघर जाने की ज़रूरत ही न पड़े। तुम जहाँ हो, वहीं मंदिर है।

जीवन कोई एकांत में बैठकर, मायूस होकर, चिंता में पड़कर बिताने के लिए नहीं हुआ करता। जीवन जीने के लिए है। मरना कोई उपलब्धि की बात थोड़े ही है। सारा सार तो जीने में है। जीवन को हर हाल में उत्साह, उमंग और ऊर्जा के साथ जीना - यही तो जीवन की सबसे बड़ी तपस्या है। मैं तो कहूँगा, आप अपने जीवन को ही अपना तपोवन बना लें और हर हाल में जीवन को धन्य और सार्थक करने की पहल करते रहें। आगे तो जैसी प्रभु इच्छा होगी, वही काम आएगी।

हम हर रोज जीवन का मूल्यांकन करते रहें। हर दिन, हर माह, हर साल। मूल्यांकन नियमित करते रहना चाहिए। मूल्यांकन से ही हम परिणाम तक पहुँच सकते हैं। दुनिया की चाहे कोई सरकार हो या पार्टी, अगर वे भी अपने कार्य-कलाप का, हार-जीत का मूल्यांकन करते रहेंगे, तो उनमें भी सदा सुधरने की, नया कुछ करने की संभावना बनी रहेगी। यदि आप कोई फैक्ट्री भी चलाते हैं, तो मैं तो कहूँगा, आप अपने हर रोज के उत्पादन का भी मूल्यांकन करते रहें? मूल्यांकन से ही स्तर में सुधार आता है। मैं स्वयं भी अपना, अपने जीवन का, अपने रिश्तों का, अपने कार्य-कलापों का, अपने जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का मूल्यांकन करता रहता हूँ। जीवन को कोई बाँगे की तरह थोड़े ही जीना होता है। जीवन को जागरूकता से जीओ। बुद्ध बनकर नहीं, बुद्ध बनकर जीओ। हर व्यक्ति यह मूल्यांकन करे कि आज मैंने दिनभर क्या किया? जो कुछ भी किया, उसमें कितना सार्थक था और कितना निरर्थक? सुबह हुई, शाम हुई, रात आ गई। सुबह उठा। नित्यकर्म किया। भोजन किया। व्यापार किया। शाम हुई, घर आया, खाना खाया, सो गया। दिनभर में जो कुछ किया, उसका निष्कर्ष क्या रहा, इसका मूल्यांकन होना ही चाहिए। जीवन को सार्थक बनाना मनुष्य के ही हाथ में हुआ करता है। हमारे प्रत्येक हानि-लाभ के, यश-अपयश के, सफलता-विफलता के जवाबदेह आखिर हम स्वयं ही हैं। नचिकेता यमलोक पहुँचा था, तो इसके निहित अर्थ थे। पिता के आदेश की पालना, उसके लिए आवश्यक थी। वह स्वयं

अपना जीवन धन्य करना चाहता था, सार्थक करना चाहता था। पिता की ओर से मृत्यु को दान में दिए जाने से वह यमराज के सम्मुख उपस्थित हुआ था।

अभी तक तो हम इतना भली-भाँति समझ चुके हैं कि सशरीर यमलोक पहुँचे नचिकेता का यमराज ने परंपरा के अनुसार स्वागत-सत्कार किया। यमराज ऐसा करके स्वयं अपना कल्याण चाहते थे। कुछ भी करके, ब्राह्मण को प्रसन्न करना वे आवश्यक समझते थे। उन्होंने भी नचिकेता से अपने लिए आशीर्वाद माँगा होगा। सत्पुरुषों का आशीर्वाद सभी को मिलना चाहिए। जो लोग ब्रह्म-तत्त्व की उपासना में लगे रहते हैं, ऐसे लोगों का आशीर्वाद फलदायी होता है।

यमराज अपनी ओर से नचिकेता को प्रसन्न करने के लिए कहते हैं, 'आप मेरे इंतजार में तीन दिन और तीन रात्रि भूखे-प्यासे यमलोक के द्वार पर खड़े रहे, इसके बदले मैं आपको तीन वरदान देने को प्रतिबद्ध हूँ।' नचिकेता वहाँ कोई वरदान लेने नहीं गए थे। पिता द्वारा मृत्यु को दान में दिए जाने के कारण नचिकेता सशरीर धरती से यमलोक की तरफ चले थे, तो उनके मन में रहा होगा कि मेरा यमलोक तक जाना किसी-न-किसी हेतु की वजह से है। यमलोक आना मेरे भले के लिए ही होगा। जो कुछ भी होता है, अच्छे के लिए ही होता है।

हर काम के पीछे प्रकृति की कोई-न-कोई व्यवस्था काम करती है। पिता उन्हें यमलोक न भेजते, तो क्या कठोपनिषद् जैसे आध्यात्मिक ग्रंथ का निर्माण हो सकता था? पृथ्वीलोक से यमलोक तक गए एक मानव का यमराज से वैसा आध्यात्मिक संवाद हो सकता था, जैसा नचिकेता से हुआ? हर काम का कोई-न-कोई हेतु अवश्य होता है। प्रकृति अपनी व्यवस्था बैठाती है।

यमराज ने नचिकेता को तीन वर देने चाहे। नचिकेता ने विचार करने के बाद यमराज से कहा, 'यदि आप मुझे कुछ देना चाहते हैं, तो पहला वरदान यही दें कि जब आप मुझे पृथ्वीलोक पर लौटाएँ तो मेरे पिता, जो मेरे द्वारा परामर्श दिए जाने पर मुझ पर क्रोधित और खिन्न होकर, उद्विग्न हो गए थे, वे मुझ पर फिर से प्रसन्न हो जाएँ। पहले की भाँति प्रेम करने लगेँ। वरदान के रूप में किसी संतान को परम सत्ता से कुछ मिल रहा हो, तो तय है कि वह ऐसा ही वरदान चाहेगी कि उसके माता-पिता उससे प्रसन्न रहें।'

नचिकेता जानते थे कि पिता अपनी संतान का कभी बुरा नहीं चाहते। आवेश में आकर संतान को मृत्यु को दान में नहीं दे सकते, लेकिन उद्दालक ने ऐसा किया, तो उसके पीछे कुछ-न-कुछ निहित अर्थ रहा होगा। इसमें भी नियति की कोई-न-कोई व्यवस्था रही होगी। इसीलिए तो उद्दालक ऐसा कर बैठे थे। वे अपने प्रिय और सर्वश्रेष्ठ पुत्र को मृत्यु को दान में दे बैठे। हालाँकि बाद में संभव है, उन्हें इसका प्रायश्चित्त भी

हुआ होगा, लेकिन पिता के कहे वचनों की आन रखने के लिए नचिकेता जैसा पुत्र यमराज के द्वार तक चला आया था।

यमराज ने जब वर देने चाहे तो पुत्र के मुख से यही निकला, मेरे पिता मुझ पर पहले की भाँति प्रसन्न हो जाएँ। किसी भी व्यक्ति पर गुरु का उपकार सौ गुना होता है, पिता का उपकार हजार गुना होता है और माँ का उपकार लाख गुना होता है। जिस व्यक्ति का हम पर उपकार हो, वह हमसे रूठा रहे, तो यह हमारे लिए मरने के समान होगा। माता-पिता तो हमारे जीवन के अंग हैं। न केवल अंग हैं, अपितु हमारे जनक, पालक और संरक्षक भी हैं। जन्म देने के कारण वे हमारे ब्रह्मा हैं। पालन करने के कारण वे हमारे विष्णु हैं और संस्कार देकर जीवन का उद्धार करने के कारण वे हमारे शिव-शंकर हैं। जब हम इस धरती पर आँख खोलते हैं, तो सिर्फ उन्हीं की बदौलत। जीवन में कुछ बनते हैं, तो उन्हीं के कारण। हमारा पालन-पोषण होता है, उन्हीं की बदौलत; हमें संस्कार मिलते हैं, उन्हीं की बदौलत। यानी कुल मिलाकर हमारे माता-पिता हमारे मंदिर हैं, तीर्थ हैं, ईश्वर हैं। वे हमारे सखा भी हैं और सीख देने वाले आचार्य भी। हर संतान का दायित्व है कि वह अपने माता-पिता के प्रति फ़र्ज को समझे। माता-पिता ने संतान के लिए जो कुछ किया है, उसका मूल्य तो चुकाया नहीं जा सकता, लेकिन संतान को ऐसा भी कोई काम नहीं करना चाहिए, जिससे उनका दिल दुखे, या उनके मन में हमारे प्रति अफसोस जाहिर हो।

एक पुरानी कहानी है। एक युवक एक वेश्या के प्यार में पड़ गया। वेश्या कभी किसी एक व्यक्ति से प्यार नहीं किया करती। युवक तो उस पर ऐसा दीवाना हो गया कि उससे विवाह करने तक की सोचने लगा। एक दिन उसने अपने दिल की बात वेश्या से कह दी। वेश्या हैरान हो गई। भला किसी एक से विवाह करके वह बंधन में कहाँ बँध सकती थी। उसने युवक को टालने के लिए कह दिया, 'मुझसे शादी करने के लिए पहले मोल चुकाना होगा और मोल यह है कि तुम अपनी माँ का कलेजा मुझे लाकर दो। फिर मैं तुमसे विवाह कर सकती हूँ।'

युवक को मानो मनचाही मुराद मिल गई। वह खुशी-खुशी घर पहुँचा। उसकी माँ ने उसे कहा, 'खाना गर्म कर देती हूँ, खा ले।' युवक को तो होश ही नहीं था। उसने माँ की बात को सुना-अनसुना किया और रसोई से चाकू लेकर उसके सीने में कई वार कर डाले। आँखों में हैरानगी के भाव लिये माँ ने दम तोड़ दिया। युवक ने माँ का कलेजा निकाला और वेश्या के यहाँ पहुँचा। वेश्या उसे देख हैरत में पड़ गई। उसने युवक के गाल पर तमाचा जड़ते हुए कहा, 'तुम इंसान नहीं, हब्शी और हैवान हो। अरे, जो अपनी माँ का न हो सका, वह अपनी बीवी का क्या होगा।' यह कहते हुए वेश्या ने अपने घर का दरवाजा बंद कर दिया।

कहानी पुरानी है, लेकिन हर युग में प्रासंगिक है। कोई भी महिला यह न सोचे कि उनके पति उनके पीछे पागल बने हुए हैं। कोई भी पति अपनी पत्नी के पीछे पागल नहीं होता। हर इंसान की कोई-न-कोई मजबूरी होती होगी जिसके कारण वह पत्नी को निभाता होगा। पत्नी के कहने पर माँ-बाप को छोड़ देना, यह इंसान की कृतघ्नता है और किसी श्रवणकुमार की तरह माँ-बाप की सेवा को अपना सौभाग्य मानना व्यक्ति की कृतज्ञता है।

नचिकेता ने यमराज से कहा, 'मुझे यही वरदान दीजिए कि मेरे माता-पिता मुझ पर प्रसन्न हो जाएँ। जरा सोचें, हमें अपने माँ-बाप और पति-पत्नी में से किसी एक को चुनने का विकल्प दिया जाए, तो हम किसको चुनना पसंद करेंगे?' इसका जवाब ही आपकी कृतज्ञता और कृतघ्नता बता देगी।

भले ही कोई कहता हो कि धर्म की शुरुआत मंदिर से होती है, जबकि धर्म की असली शुरुआत व्यक्ति के अपने घर से हुआ करती है। घर इंसान का पहला मंदिर है। ईश्वर के नाम पर बनाए गए मंदिर तो नंबर दो पर हैं। पहला मंदिर खुद का घर हो और दूसरा मंदिर भगवान का दर हो।

एक महानुभाव हुए हैं - ईश्वरचन्द्र विद्यासागर। वे कलकत्ता हाईकोर्ट में न्यायाधीश हुआ करते थे। उन दिनों कलकत्ता में गवर्नर सबसे बड़ा पद हुआ करता था। एक बार गवर्नर ने ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से कहा, 'आप विदेश पढ़ने जाएँ, अपने ज्ञान का विस्तार करते हुए कुछ और डिग्रियाँ ले आएँ।' ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने अगले दिन गवर्नर को बताया कि वे विदेश नहीं जा सकते क्योंकि उनकी माँ ने उन्हें विदेश जाने की अनुमति नहीं दी है।

गवर्नर ने कहा, 'मैं आपको आदेश देता हूँ, आप विदेश जाएँ।' विद्यासागर विचार में पड़ गए। कुछ देर बाद फिर गवर्नर ने उनसे पूछा, 'मैंने आपको जो कुछ कहा, आपने सुना नहीं क्या?' विद्यासागर ने जवाब दिया, 'सुन तो लिया सर, पर मैं सॉरी निवेदन करता हूँ। मेरे सामने दो विकल्प हैं। एक तरफ आपका आदेश है, दूसरी तरफ माँ का। जब दो में से किसी एक के आदेश की मुझे पालना करनी है, तो फिर मेरे लिए यही उचित है कि मैं अपनी माँ की आज्ञा का पालन करूँ।'

यह है, वह तरीका, जो हमें हमारे माता-पिता के आशीर्वाद के योग्य बनाता है। सभी को अपने माता-पिता की इच्छाओं का सम्मान करना चाहिए। माँ-बाप के आशीर्ष लेने चाहिए। माँ-बाप के दिल को दुख पहुँचा कर कभी कोई सुखी नहीं रह पाया, फल-फूल नहीं पाया। सास-ससुर हों या माँ-बाप, हम उनका आशीर्वाद नहीं ले पाए,

तो किसी भी मंदिर या मस्जिद में हमारी प्रार्थना कबूल नहीं होगी। पहली दुआ माँ-बाप के आशीर्वाद से ही कबूल हो पाएगी।

नचिकेता ने यमराज से पहला वर यही माँगा, 'मैं यहाँ से धरती पर जाऊँ तो मेरे माता-पिता मुझ पर प्रसन्न हों। नचिकेता ने बड़ी चतुराई से एक वरदान में दो वर माँग लिए। पहला तो यही कि मैं यहाँ से धरती पर जाऊँ, यानी आप मुझे यहीं यमलोक में न रख लें। दूसरा यह कि धरती पर जाऊँ तो माता-पिता का प्यार मुझे मिल जाए। यमराज कहते हैं, तथास्तु। मैं तुम्हें वरदान देता हूँ, तुम धरती पर जाओगे तो तुम्हारे माता-पिता तुमसे पहले की भाँति ही प्रसन्न होंगे। वे तो तुम्हें जीवित देखकर ही फूले न समाएँगे, तुम्हें सीधा गले से लगा लेंगे।

यमराज ने कहा, 'नचिकेता, अब तुम दूसरा वरदान माँगो।' नचिकेता ने कहा, 'सुनते हैं कि स्वर्ग में कोई दुख नहीं है, मृत्यु का भय नहीं है। वहाँ जाने वाले आनन्द का उपभोग करते हैं। इसलिए हे मृत्यु देवता! आप मुझे स्वर्ग के बारे में बताएँ। उस स्वर्ग के बारे में, जिसके लिए कहा गया है कि यज्ञ में अग्नि के साथ आहुतियाँ देकर स्वर्ग की प्राप्ति की जाती है, यज्ञ की उस अग्नि का क्या अर्थ है? वह अग्नि कहाँ रहती है? स्वर्ग में ऐसा क्या है, जो सब यहाँ आने की चाह करते हैं?'

स्वर्ग के बारे में हर किसी को चाह होती है। धरती पर आने वाला कोई भी प्राणी स्वर्ग जाना चाहता है। इसके लिए वह पूजा-पाठ करता है, शील-व्रत धारण करता है, यज्ञ करता है। धर्म के नाम पर कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। सवाल बहुत महत्वपूर्ण है। तीन लोक माने गए हैं - पृथ्वी-लोक, स्वर्ग-लोक व नरक-लोक। नरक में दुःख ही दुःख है। स्वर्ग में सुख ही सुख है। पृथ्वी लोक में सुख और दुख दोनों हैं। इसलिए पृथ्वी लोक मध्य लोक कहलाता है। नरक में रहने वाले हमेशा पीड़ा भोगते रहते हैं। स्वर्ग में रहने वाले आनन्द का उपभोग करते हैं। पृथ्वी-लोक पर दोनों है।

नरक के जीव वहाँ से निकलना चाहते हैं। स्वर्ग में रहने वाले वहाँ उपलब्ध भोगों को भोगने के बाद ऊब जाते हैं और वहाँ से पृथ्वी पर आना चाहते हैं। कठोपनिषद् कहता है, स्वर्ग-लोक में किसी तरह का रोग, शोक, दुख नहीं है। बुढ़ापा नहीं है, लेकिन यह अधूरा सच है। वास्तव में स्वर्ग में भी ईर्ष्या, लालच, भोग है। तभी तो दानवों ने जब स्वर्ग-लोक पर आक्रमण किया, तो देवराज इन्द्र भागे-भागे भगवान विष्णु के पास गए। वहाँ से उपाय बताए जाने पर वे महर्षि दधीचि के पास गए और उनके देहदान की स्थितियाँ बनीं। दधीचि की हड्डियों से बने वज्र से दानवों का नाश हो सका। इसलिए परेशानियाँ स्वर्ग में भी कम नहीं हैं।



धनुर्धारी अर्जुन स्वर्ग पहुँचते हैं, तो उर्वशी उन पर मुग्ध हो जाती है। अर्जुन तो दैवीय धनुर्विद्या पाने स्वर्ग पहुँचते हैं और उर्वशी उन पर काम का बाण चलाती है। अर्जुन उन्हें इनकार कर देते हैं। उसका प्रणय का प्रस्ताव टुकरा देते हैं। इससे क्रोधित होकर उर्वशी अर्जुन को श्राप दे देती है। सो, स्वर्ग में भी श्राप है, शराब है, क्रोध है, काम है। उर्वशी का अर्जुन पर मोहित होना साबित करता है कि भोग की प्रवृत्ति वहाँ भी कम नहीं है। कामाँधता वहाँ भी पाई जाती है। धृतराष्ट्र वहाँ भी बैठे हैं। ययातियों की वहाँ भी भीड़ है।

कहते हैं, विश्वामित्र ने घोर तपस्या की। इन्द्र को लगा कि उसका सिंहासन कोई छीन न ले। उन्होंने मेनका को विश्वामित्र की तपस्या भंग करने भेज दिया। कोई कितना ही बड़ा साधु-ज्ञानी क्यों न हो, फिसल सकता है। वह भी आखिर इंसान है। भला जब देवता फिसल सकते हैं, तो बिचारे इंसानों की क्या बिसात? विश्वामित्र भले ही संत क्यों न हों, पर थे तो आखिर इंसान ही। इंसानी फितरत तो उनकी भी थी, सो विश्वामित्र की तपस्या भंग हो गई। मानवीय कमजोरी हर स्थान पर विद्यमान रहती है। मेनका हर जगह काम कर जाती है, विश्वामित्र हर जगह पराजित हो जाते हैं। स्वर्ग की गत तो आपने जान ली है, सो स्वर्ग भी बुराइयों से अछूता नहीं है।

आम आदमी सुखों का उपभोग करना चाहता है। वह चाहता है कि उसके पास मर्सिडीज गाड़ी हो। विशाल घर हो। बहुत-सी फैक्ट्री हों। धन बरस रहा हो। ख़ूब इज़्जत हो। ये सब क्या हैं? धरती पर स्वर्ग जैसा सुख ही तो है। कुछ लोग धरती पर भी स्वर्ग जैसा सुख भोगते हैं और मरकर भी स्वर्ग में चले जाते हैं। जिनके नसीब में धरती पर स्वर्ग का सुख नहीं, वे अच्छे कर्म कर स्वर्ग पा लेते हैं।

नचिकेता पूछ रहे हैं, 'हे यमराज, ऐसा क्या है स्वर्ग में जिसके लिए लोग इतने लालायित रहते हैं। धरती पर रहने वाले स्वर्ग प्राप्ति के लिए विशाल यज्ञ करते हैं। इन यज्ञों में जो अग्नि जलती है, वह कहाँ रहती है। उसका रहस्य क्या है? आप मुझे दूसरे वर के रूप में इस अग्नि का रहस्य बताएँ।' यमराज कहते हैं, 'हे नचिकेता, स्वर्गदायिनी अग्नि-विद्या को जानने वाला मैं, तुम्हारे लिए उसे भली-भाँति बतलाता हूँ, उसे मुझसे समझ लो। तुम इस विद्या को अविनाशी लोक की प्राप्ति कराने वाली, उसका आधार बुद्धि रूपी गुहा में स्थित जानो।'

जो लोग अग्नि की आराधना करते हैं, यज्ञादि करते हैं, यमराज उन्हें बताना चाह रहे हैं कि आखिर वह अग्नि रहती कहाँ है? यमराज कहते हैं, तुम उस अग्नि को अपनी बुद्धि रूपी गुफा में स्थित जानो। इस गुह्य विद्या को मैं तुम्हें बताता हूँ। इसे जानकर सभी जीव उस अनन्त व अविनाशी स्वर्ग-लोक को प्राप्त होते हैं। इसे गहन बुद्धि से ही समझा जा सकता है।

जो लोग घी की आहुति देते हैं, वे इसे समझने की कोशिश करें कि असली यज्ञ कहाँ होता है? क्या पृथ्वी पर किया जाने वाला ही यज्ञ है? असली यज्ञ क्या घी और समिधा की आहुति से हो जाएगा? यमराज कहते हैं, असली यज्ञ के लिए इंसान को अपनी बुद्धि से जुड़ना होगा। बुद्धि रूपी गुफा में स्थित अग्नि को समझना होगा। अर्थात् वास्तव में बुद्धि को उपयोग में लें। शास्त्रों का अधिकतम अध्ययन करें। खूब ज्ञानार्जन करें। तब ही कोई अग्नि-तत्त्व का सच्चा उपासक बन सकता है। अग्नि-तत्त्व को अपने में आत्मसात् कर सकता है।

अग्निदेव कहाँ रहते हैं, मनुष्य की बुद्धि में। दुनिया में किसी भी कच्ची चीज को पकाने के लिए अग्नि का सहारा लेना पड़ता है। मनुष्य को अपने जीवन को पकाने के लिए इसी तत्त्व का सहारा लेना होगा। अग्नि रूपी बुद्धि एक साधन है। इंसान पच्चीस वर्ष तक बुद्धि को तराशता है, फिर विवाह हो जाता है और वह सांसारिक क्रिया-कलापों में व्यस्त हो जाता है। अपनी बुद्धि का उपयोग घर चलाने, व्यापार करने आदि में करने लगता है। औरतें घर के सुव्यवस्थित संचालन में जुट जाती हैं। उनकी बुद्धि वहाँ लगने लगती हैं। कुछ ही लोग होते हैं जो सांसारिक जीवन के बावजूद अपनी बुद्धि के विकास के लिए भी तत्पर हो जाते हैं।

इंसान जब तक जीए, उसे विद्यार्थी बन कर रहना चाहिए। इससे ज्ञान प्राप्ति के रास्ते सदैव खुले रहते हैं। भले ही कोई गुरु कितना ही बड़ा क्यों न बन जाए, दार्शनिक क्यों न बन जाए, उसे अपने आप को विद्यार्थी बनाकर रखना चाहिए ताकि ज्ञान-प्राप्ति की धारा बहती रहे। कोई व्यक्ति घर बनाता है, केवल उसमें प्रवेश के लिए ही रास्ते नहीं बनाता, वह कई दरवाजे बनाता है, खिड़कियाँ बनाता है ताकि घर में हमारे साथ शुद्ध हवा भी प्रवेश कर सके। भीतर जाने वाला बाहर भी आ सके।

प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञान-प्राप्ति के रास्ते पर चलते रहना चाहिए। इंसान को ज्ञान बढ़ाने के लिए हमेशा तीन फार्मूले ध्यान में रखने चाहिए। पहला, पढ़ो। दूसरा, जो पढ़ा, उसके बारे में दूसरों से संवाद करते रहें। जितनी संभव हो, बातचीत करें। इससे हमारे ज्ञान को और विस्तार मिलेगा। संवाद से ज्ञान बढ़ता है। संवाद यदि टूट जाए, तो संबंध टूट जाता है। संवाद जारी रहेगा, तो संबंध जारी रहेगा।

किसी से अनबन हो जाए, तब भी बातचीत बंद न करो। बातचीत बंद करने से धीरे-धीरे संबंध भी बंद हो जा जाया करते हैं। तीसरा फार्मूला यह है कि जो पढ़ा-लिखा, उसका पुनरावर्तन करते रहो। जो एम.ए. कर चुका है, वह आठवीं की पुस्तक उठाकर फिर से नहीं देखेगा, तो पहले का ज्ञान भूल जाएगा। जो भी आपने पढ़ा है, उसे मौका निकालकर पढ़ते रहें। अर्जित ज्ञान छूटे नहीं, संवाद टूटे नहीं, ज्ञान बिखर न जाए,

क्योंकि ज्ञान के बिखरने का अर्थ है, हमारे जीवन के शुरुआती 25 साल का बिखर जाना।

इंसान की बुद्धि चार प्रकार की होती है - पहली, घड़े में भरे जल के समान। सीमित बुद्धि वाले लोग घड़े में भरे पानी के समान होते हैं। घड़े में आखिर कितना पानी आ सकता है, जितनी उसकी क्षमता है। दूसरी होती है, कुएँ के जल-सी बुद्धि। कुएँ में से पानी निकलता रहता है, फिर भी वापस आता रहता है। बुद्धि खर्च होती रहती है, लेकिन नया ज्ञान आता रहता है। यह हुई कल्याणकारी बुद्धि। तीसरी बुद्धि होती है, तालाब के जल जैसी। तालाब का जल परोपकार के काम आता है। स्वयं का भला करता है और दूसरों के भी काम आता है। चौथी बुद्धि होती है, समुद्र के जल की भाँति। आपने देखा होगा, समुद्र में अथाह जल होता है, उसकी कोई थाह नहीं ले सकता।

दुनिया में ऐसे भी ज्ञानी हुए कि उनके नजदीक तक कोई नहीं पहुँच पाया। आइंस्टीन, मैक्समूलर, ओशो, श्री अरविन्द। इन लोगों के पास ज्ञान का खजाना था। देश के राष्ट्रपति रह चुके अब्दुल कलाम के बारे में सभी जानते हैं। ऐसे ज्ञानियों के पास कोई समस्या लेकर जाओ, तो तत्काल उसका निपटारा कर देते थे। किसी समस्या के कई आयाम समझा देते थे।

इसे यूँ भी समझा जा सकता है, पहली बुद्धि, कर्तव्य बुद्धि। ऐसे लोग कर्तव्य से कभी विचलित नहीं होते। दूसरी बुद्धि सफल बुद्धि, ये लोग हमेशा कामयाबी पाने के रास्ते ढूँढ़ते रहते हैं। अपनी बुद्धि को तराश कर पैना करते रहते हैं। तीसरी होती है सेवाभावी बुद्धि। ये लोग हमेशा दूसरों का कल्याण करने में लगे रहते हैं; और चौथी बुद्धि होती है, स्वार्थ बुद्धि। इस बुद्धि के मालिक सिर्फ अपने कल्याण की सोचते हैं। मैं और मेरा, बाकी क्या लागे है तेरा। इस तरह के लोगों को दूसरों से कोई लेना-देना नहीं होता। उन्हें न तो किसी के प्रति कर्तव्य दिखाना होता है, और न ही वे किसी की सेवा करने की चाह रखते हैं।

इसलिए कहा गया है, हम सब को बुद्धि की उपासना बड़े मनोयोग से करनी चाहिए क्योंकि अग्नि देवता बुद्धि रूपी गुफा में निवास करते हैं। बुद्धि से ही कैरियर का निर्माण होता है। बुद्धि से ही जीवन का निर्माण होता है। बुद्धि से ही सारे रिश्ते-नाते बनते हैं। बुद्धि से ही इंसान सम्पत्ति कमाने योग्य बनता है। एक कहावत सभी जानते हैं, अक्ल बड़ी या भैंस। देखने में भैंस ही बड़ी दिखती है, लेकिन बुद्धि सूक्ष्म रूप होते हुए भी बड़ी होती है।

राजा तो केवल अपने क्षेत्र में ही पूजा जाता है, लेकिन बुद्धिमान व्यक्ति की पूछ हर क्षेत्र में होती है। वह सर्वत्र यश प्राप्त करेगा। चंदन की तो चुटकी ही भली, गाडा

भला न काठ का। चंदन की तो एक चुटकी हर तरफ खुशबू कर देगी। काठ से भरा गाड़ा भी हो, तो कोई फायदा नहीं। चातुर तो इक ही भला, मूर्ख भले न साठ। बुद्धिमान तो दो जने ही पर्याप्त हैं। सुकरात के कोई हजारों शिष्य नहीं थे। दो-तीन शिष्यों ने ही उन्हें अमर कर दिया। एक ज्ञानी शिष्य भी गुरु को अमर कर देता है। अज्ञानी सौ शिष्य भी बेकार हैं।

संगत बुद्धिमान की करो, काम आएगी। सौ कौओं के बीच एक हंस पहुँच गया, तो कौए उसे डूबो देंगे। इसके विपरीत सौ हंसों के बीच एक कौआ पहुँच गया तो हंस उसे भी अपने जैसा बना लेंगे। इसलिए कहा है, संगत हमेशा बुद्धिमान आदमी की करो। उससे बातचीत करो, संवाद करो।

आज के बच्चे ज्यादा बुद्धिमान होते हैं क्योंकि वे जिज्ञासा व्यक्त करते रहते हैं। जितनी जिज्ञासा, उतना ज्ञान। सवाल पर सवाल पूछते हैं, बच्चे। इसलिए उन्हें उनके जवाब भी मिलते हैं। वर्तमान युग की सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि आज जिज्ञासाएँ बहुत हैं। जितनी जिज्ञासाएँ होंगी, ज्ञान और विज्ञान की सफलताओं के उतने ही द्वार खुलते चले जाएंगे। तात्कालिक बुद्धि हर किसी में नहीं होती। इस तरह की बुद्धि वाले जहाँ भी जाएँगे, लोगों की निगाहों में रहेंगे। लोगों का सम्मान पाएँगे। वे अपने साथ ही दूसरों के लिए भी स्वर्ग का निर्माण करेंगे।

लार्ड माउंटबेटन अमरीकी नौसेना में भर्ती होने गए, तो सेनाध्यक्ष ने उनसे पूछा, 'आप पानी के जहाज को लेकर जाओगे और तूफान आ गया तो क्या करोगे?' माउंटबेटन ने जवाब दिया, 'मैं तत्काल लंगर डाल दूँगा।'

फिर पूछा गया, 'एक और तूफान आ गया तो?'

जवाब दिया, 'मैं एक और लंगर डाल दूँगा।'

सेनाध्यक्ष ने उनके धैर्य की परीक्षा लेते हुए फिर पूछा, 'मान लो, एक और तूफान आ गया तो क्या करोगे?'

माउंटबेटन का जवाब फिर वही था, 'एक और लंगर डाल दूँगा।' काफी देर सवाल होते रहे। आखिर सेनाध्यक्ष ने पूछा, भाई, 'तुम इतने लंगर कहाँ से लाओगे?'

माउंटबेटन ने तत्काल जवाब दिया, 'जहाँ से आप इतने तूफान लाओगे..।'

कहानी छोटी है, लेकिन संदेश बड़ा देती है। किसी भी परिस्थिति में क्या किया जाए, इसका तत्काल हल ढूँढ़ने वाला ही सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ सकता है।

एक आदमी ने दो रुपए का दूध खरीदा। उसने देखा दूध में मक्खी गिरी थी। उसने दूकानदार से कहा, 'दो रुपए के दूध में मक्खी?' दूकानदार ने कहा, 'दो रुपए के दूध में

आपको हाथी तो मिलने से रहा।' इस तरह के तात्कालिक जवाब भले ही एक बार आपको हँसा दें, लेकिन यह सच है कि ऐसे लोग ही आगे बढ़ जाते हैं।

यमराज ने नचिकेता को ज्ञान देते हुए कहा, हे नचिकेता, तुम अग्नि का स्थान बुद्धि जानो। बुद्धि वाली गुफा में ही अग्नि-तत्त्व विद्यमान रहता है। हम लंग जब ध्यान करते हैं, तो बुद्धि से एकाकार होते हैं। बुद्धि में स्थित होते हैं। अग्नि-तत्त्व में ही स्थित हो रहे होते हैं। तब ईश्वर में स्थित हो रहे होते हैं। जीवन की मूल ऊर्जा में स्थित हो रहे होते हैं।

बुद्धि को बढ़ाने के दो तरीके हैं - पहला स्वाध्याय, दूसरा ध्यान। याद रखो, केवल दो ही तत्त्व उपयोगी नहीं बनेंगे। बुद्धि को बचाने के लिए चिंता से बचो। तनाव से बचो। क्रोध से बचो। तनाव मत पालो। कहीं ऐसा न हो कि ध्यान तो करते रहे और साथ में चिंता भी पाल ली, तनाव को भी ओढ़ लिया। बात-बात में क्रोध न करो। ऐसा करते रहे, तो ध्यान-स्वाध्याय में जितनी ऊर्जा खर्च करोगे, उससे कहीं ज्यादा ऊर्जा चिंता और तनाव में खर्च कर दोगे। इसलिए शांति, आनन्द, एकाग्रता पर जोर दो। ये वे चीजें हैं जो हमारी बुद्धि को और बढ़ाती हैं।

जीवन में रचनाधर्मिता होनी चाहिए। केवल बैठे न रहें। अपनी बुद्धि का उपयोग करते रहें। कुछ सार्थक कार्य करें। लगना चाहिए कि आज का दिन कुछ किया, तो अमुक परिणाम निकला। कम्प्यूटर के आगे बैठ जाँ। फैक्ट्री चले जाँ। और कुछ काम न हो, तो कोई अच्छी किताब ही पढ़ने बैठ जाँ। गीत लिखें, कविता लिखें। बुद्धि का सार्थक उपयोग होता रहना चाहिए। शांति और एकाग्रता जीवन में उतरनी चाहिए। प्रसन्न रहें, मिलनसार बनें। सकारात्मकता को जीवन में जोड़े रखें। इससे हमारी बुद्धि और प्रखर होगी। हमारा व्यक्तिगत विकास होगा। जो इंसान अपनी बुद्धि से एकाकार होता है, वह अपने भीतर अग्नि-तत्त्व आत्मसात कर रहा होता है। अग्नि-तत्त्व को साधने का सबसे बढ़िया उपाय है, बुद्धि का अधिकतम उपयोग। बुद्धि-तत्त्व में ही ईश्वर की तलाश करो। बुद्धि को जितना काम में लोगे, उसका पैनापन बढ़ता जाएगा। ऐसा करने से अग्नि-तत्त्व का बुद्धि में स्थायी निवास रहेगा। फिर कोई भी यज्ञ हो, उसे फलीभूत होना ही होगा।



# 8

## मरना मना है

कोई भी दैवीय शक्ति अपने किसी भी भक्त पर प्रसन्न होती है, तो उसे सहज ही उसका मनचाहा वरदान देना चाहती है। दैवीय शक्ति को पहले से ही यह अहसास होता है कि पृथ्वी-गृह पर रहने वाले इंसान किसी-न-किसी प्रयोजन से ही दैवीय शक्ति का आह्वान करते हैं। नचिकेता को भी यमराज ने प्रसन्न होकर कहा कि माँगो वत्स, क्या माँगते हो ? मैं तुम्हें तीन वर देने को उत्सुक हूँ।

तब नचिकेता ने पहले वरदान के रूप में अपने पिता की प्रसन्नता चाही थी, अर्थात् मेरे पिता मुझ पर प्रसन्न हों, मेरे माता-पिता का जीवन सुखमय हो। मेरे प्रति उनका प्रेम बना रहे। उनका शेष जीवन प्रभु के प्रति समर्पित हो। किसी भी संतान का पहला दायित्व यही होता है कि उसके माता-पिता उससे प्रसन्न हों। माता-पिता रुष्ट होकर अपनी संतान के प्रति शिकवा या शिकायत करें, यह किसी भी संतान के लिए ठीक नहीं कहा जा सकता। माता-पिता की नाराज़गी संतान के लिए देवताओं के रुष्ट होने के समान है। उनकी प्रसन्नता देवताओं की पूजा के समान है।

यमराज ने अपनी ओर से तथास्तु कहते हुए, नचिकेता को पिता की प्रसन्नता का वरदान दिया। नचिकेता ने दूसरे वरदान के रूप में यमराज से प्रार्थना की कि लोग स्वर्ग की प्राप्ति के लिए यज्ञ करते हैं, उसमें अग्नि तथा अग्नि-विद्या की उपासना करते हैं, उस अग्नि-विद्या का रहस्य क्या है।

यमराज ने समझाया कि अग्नि-विद्या मनुष्य की बुद्धि रूपी गुफा में स्थित है। जीवन में यह बात भली-भाँति जान लेनी चाहिए कि इंसान के जीवन में जिन-जिन पदार्थों और तत्त्वों का महत्त्व है, उनमें अग्नि अत्यंत प्रधान तत्त्व है। सामान्य तौर पर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश - इन पाँच तत्त्वों को हम सभी महत्त्व देते हैं, लेकिन जीवन और मृत्यु की दहलीज़ पर हम कोई अंतर करना चाहें, तो अग्नि ही वह

तत्त्व है जो व्यक्ति को जीवित रखती है और जिसके अभाव में व्यक्ति मर जाया करता है। अग्नि जीवन की ऊर्जा है, ऊष्मा है, तेजस्विता है, जीवन की जान है।

जब कोई इंसान अपने नश्वर शरीर का त्याग करता है तो पहली घटना यही घटित होती है कि व्यक्ति की चलने वाली श्वास बंद हो जाया करती है। केवल श्वास ही बंद नहीं होती, उसके शरीर का तापमान भी धीरे-धीरे कम होता चला जाता है। तापमान यानी अग्नि। व्यक्ति के जीवन की अग्नि बुझ जाती है, तो वह जीवन भी बुझ जाया करता है। इस शरीर को ज्योतिर्मय और शरीर को सक्रिय रखने वाला अगर कोई साधन है तो वह साधन है अग्नि।

हिमालय की कंदराओं और गुफाओं में रहने वाले ऋषि-मुनियों का शरीर भीषण सर्दी में भी गर्म रहता है, अर्थात् कितनी भी सर्दी क्यों न पड़े, शरीर में मौजूद अग्नि-तत्त्व शरीर को गर्म रखता है। गर्म शरीर जीवित होने की निशानी है।

अग्नि वह देवता है, वह महाभूत है जो प्राणी मात्र में विद्यमान रहता है। अग्नि है तो हम हैं, अग्नि निकल गई तो जीवन बुझ गया। दुनिया में प्रचलित अनेक परंपराएं मानती हैं कि अग्नि-तत्त्व की उपासना से स्वर्ग नहीं मिलता, लेकिन यह सभी मानते हैं कि अग्नि हमारे जीवन का आधार है। शरीर को सक्रिय रखने का आधार तत्त्व अग्नि है। दुनिया में जितनी भी चीजें चालित होती हैं, उनके पीछे अग्नि की ऊर्जा काम करती है। करंट क्या है? अग्नि ही तो है। मशीन गर्म होती है, भाप बनती है, उससे ऊर्जा उत्पन्न होती है और गाड़ी चल पड़ती है। कहते हैं कि सृष्टि का जन्म हुआ, तो ईश्वर ने अपने-आप को जिस रूप में प्रकट किया, वह पहला तत्त्व अग्नि ही था। धरती एक आग के गोले से ही बनी। इसी तरह अग्नि-तत्त्व से एक-एक कर चीजें बनती चली गईं। मिट्टी भी रही होगी, जल भी रहा होगा, लेकिन यह भी सत्य है कि अग्नि भी थी।

ज़रा सोचो, आसमान में सूर्य उगता है, सूर्य क्या है? अग्नि का एक गोला। अगर सूर्य न होता, तो क्या होता? अगर धरती पर अग्नि न होती, तो क्या होता? सिवा अंधकार के, सिवा बर्फ के और कुछ न होता। इसलिए अग्नि का संतुलन जीवन और जगत् का संतुलन है। कोई व्यक्ति निराश-हताश बैठा है, तो निश्चित रूप से उसके भीतर का अग्नि-तत्त्व कमजोर होगा। उसे कोई ऊर्जा देने वाला, प्रेरणा देने वाला शिक्षक मिल जाए, तो उसका अग्नि-तत्त्व फिर से जागृत हो जाएगा। ऊर्जा जागृत हो जाएगी, विश्वास जागृत हो जाएगा। वह फिर ऊर्जा से भरकर कार्य करना प्रारंभ कर देगा।

लोग सूर्य नमस्कार करते हैं। सूर्य नमस्कार क्या है? सूर्य के सामने योगाभ्यास करते हुए सूर्य की ऊर्जा को ग्रहण करने का तरीका। सुबह-सुबह सूर्य के सामने

घड़ी-दो-घड़ी रहा जाए या सूर्य स्नान किया जाए, तो इससे हमारे शरीर का स्ट्रक्चर मजबूत होता है। हड्डियाँ मजबूत होती हैं। सूर्य की ऊर्जा से हमें विटामिन डी मिलता है। कोई मुझसे पूछे कि आत्मबल और आत्मविश्वास क्या है तो मैं यही कहूँगा कि मन में अग्नि-तत्त्व की प्रधानता होना ही आत्मबल और आत्मविश्वास है। हमारे ऊर्जा भरे शब्द लोगों की सोई हुई चेतना को जगा देते हैं। यह चेतना का जगना वास्तव में अग्नि का जगना है। मनुष्य के भीतर अग्नि के भी कई रूप होते हैं। आपने देखा होगा, किसी इंसान को गुस्सा आता है, तो उसकी साँस तेज चलने लगती है, आँखें लाल हो जाती हैं। दरअसल गुस्सा आने पर दिमाग का टेम्प्रेचर और शरीर का ब्लड-प्रेसर बढ़ जाता है। यह वास्तव में शरीर में अग्नि का उदय है, जिससे हमारे किसी भी क्रिया-कलाप से उसके आयाम बदलने लगते हैं।

व्यक्ति के भीतर का अग्नि-तत्त्व जब अधोगामी हो जाता है, तो उसका ब्लड-प्रेसर घट-बढ़ जाता है। क्रोध भीतर पैदा होता है, तो अग्नि अधोगामी हो जाती है। गुस्सा या कामजनित वेग उठने पर हम शरीर को गर्म महसूस करते हैं। मानो, बुखार चढ़ गया हो। क्रोध क्या है, शरीर में छिपा बुखार। बुखार आने पर शरीर तपने लग जाता है। जब भोग की इच्छा जगती है तब शरीर गर्म होने लगता है, साँसें तेज चलने लगती हैं, शरीर ऊष्मा-प्रधान हो जाता है, रक्त का प्रवाह बढ़ जाता है। यह भी अग्नि का ही एक स्वरूप है। भोग के समय अग्नि तेज हो जाती है, तो सृजन करती है।

भीतर की अग्नि जब-जब प्रबल और प्रखर होती है, तब-तब मानव-जीवन के विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। आशा और निराशा कुछ ऐसी ही हैं। हमारे भीतर आशा का संचार हो रहा हो, तो इसका अर्थ है कि भीतर स्थित अग्नि जाज्वल्यमान हो रही है, हमारा आभामंडल तेज हो रहा है। निराशा का अर्थ है - हमारे भीतर की अग्नि की आँच मंद हो गई है।

वैदिक परंपरा में यज्ञ के अनुष्ठान शुरू किए गए, तो उनमें अग्नि-तत्त्व को प्रधानता दी गई। कोई यह न समझे कि अग्नि की पूजा से भगवान मिल जाएँगे। यज्ञ में जलाई जाने वाली अग्नि यह प्रेरणा देती है कि जैसे यज्ञ के कुण्ड में अग्नि की आहुति देने से देवता प्रसन्न होते हैं, ठीक वैसे ही हमारे भीतर सात्त्विक अग्नि प्रकट हो जाए, तो यह अग्नि हमारे जीवन के विकास का आधार बन सकती है; हमारे मनोबल, आत्मविश्वास को मजबूत कर सकती है और यही अग्नि परमात्म-तत्त्व से मिलने का हमारा मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

कहते हैं, एक आदमी के दोनों हाथ कट गए। वह सेना में था। युद्ध में उसे अपने दोनों हाथ खोने पड़े। उसे सेना से मुक्ति दे दी गई। वह घर लौट आया। कुछ दिन तो



ठीक से बीते, लेकिन धीरे-धीरे वह घर में एक निरर्थक चीज़ बनकर रह गया। पुरुष कमाता और स्त्री घर का काम करती सबको अच्छी लगती है। काम न करे, तो माँ को बेटा और पत्नी को पति भी नहीं सुहाते।

एक दिन वह इतना व्यथित हुआ कि उसने आत्महत्या करने की सोच ली और घर से निकल गया। वह रेल लाइन पर जाकर सो गया। जब वह सो गया, तो उसकी नजर अपने पाँवों की तरफ पड़ी। उसके मन में सकारात्मक विचारों ने जन्म लेना शुरू कर दिया। सोचने लगा, हाथ कट गए तो क्या, दोनों पाँव तो अभी मौजूद हैं। साँस तो चलती है। अभी तो मैं बहुत कुछ कर सकता हूँ। प्रभु ने यह जीवन यूँ ही समाप्त करने को तो नहीं दिया। मरना इंसान की मजबूरी हो सकती है, लेकिन मरना इंसान का लक्ष्य कतई नहीं है। मरना मना है। मारना बिल्कुल मना है। सहज मरना जीवन का उपसंहार है। जानबूझ कर मरना आत्महत्या है। आत्महत्या पाप है, आत्महत्या अपराध है। इसीलिए मरना मना है।

आपने कभी लतीफ़ों की किताब देखी होगी। उसका शीर्षक होता है, हँसना मना है। अब लतीफा पढ़कर तो हँसी आएगी ही। फिर भी लिखा है, हँसना मना है। यही तो खूबी है किताब की। वे किताबें कहती हैं हँसना मना है; मैं कहता हूँ मरना मना है। इंसान जीने के लिए है, मरने के लिए नहीं। एक बेशक्रीमती जिंदगी को समाप्त करने का किसी को क्या हक़ है? यमराज के सामने जाने वाला यदि डर गया, तो उनसे बात कैसे कर पाएगा। नचिकेता नहीं डरा, तभी तो यमराज को उसे वरदान देने पड़े। वरदान भी कैसे, नचिकेता ने वरदान में यमराज से मृत्यु का रहस्य ही पूछ लिया।

नचिकेता जीवन का प्रतीक है और यमराज साक्षात् मृत्यु का। दोनों के बीच होने वाला संवाद जीवन और मृत्यु के बीच होने वाला संवाद है। नचिकेता अर्थात् एक जीवन जो यमराज अर्थात् मृत्यु से साक्षात्कार करने पहुँचा था। हम सब जीवन के प्रतीक हैं। जीवन का आनन्द ही कुछ और है। याद रखो - जीवन जीने के लिए है, मरने के लिए नहीं। जो भी उपाय करो, जीने के लिए करो। मरना तो अपनेआप होगा। जीना अपने आप नहीं हो सकता। जीने के लिए कई पापड़ बेलने पड़ते हैं। कई तरह के संघर्ष और पुरुषार्थ करने होते हैं। धरती जीने के लिए है, कुछ फूल खिलाने के लिए है। मुरझाने का पुरुषार्थ तुम मत करो। यह पुरुषार्थ प्रकृति को ही करने दो। हम तो पुरुषार्थ जीने का करेंगे, संजीदगी से जीने का करेंगे।

वह सैनिक इतना सोचते ही ऊर्जा से भर उठा कि अभी उसके दोनों पाँव हैं। हाथ कट गए तो क्या हुआ, पाँव अभी सुरक्षित हैं। उसने नए सिरे से जिंदगी को समझना प्रारंभ किया। उसने पाँवों से लिखना शुरू किया और जो काम कभी वह हाथों से किया

करता था, अब पैरों से करने लगा। आखिर उसकी ज़िंदगी पटरी पर लौट आई। कहाँ तो वह पटरी पर अपनी जान देने गया था और कहाँ ज़िंदगी पटरी पर फिर से दौड़ने लगी। अपने भीतर की अग्नि को सही तरीके से उपयोग में लेने का ही यह परिणाम था। उसके भीतर की अग्नि का प्रभाव कम हुआ, तो वह मरने चल पड़ा था, लेकिन जैसे ही अग्नि-तत्त्व जागृत हुआ, ज़िंदगी में रंग भर गए। भीतर नई ऊर्जा का संचार हुआ। यह भीतर अग्नि का जगना ही है। वह सैनिक निराशा के बादलों से निकल आया। आशा का सूरज उग आया।

जिसकी अग्नि बुझ गई, उसका जीवन बुझ गया। जिसकी अग्नि जल गई, वह आगे बढ़ गया। कठोपनिषद् जैसे पवित्र शास्त्र की आखिर रचना क्यों हुई? जिसमें जीवन की बजाय मृत्यु के बारे में लिखा है, उसका जीवन में क्या उपयोग? सवाल उठ सकता है कि हम लोग मृत्यु की चर्चा क्यों कर रहे हैं। वास्तव में हम लोग मृत्यु की चर्चा नहीं कर रहे। कठोपनिषद् पर चर्चा का अर्थ यही है कि हम जीवन पर चर्चा कर रहे हैं। इस जीवन की भी चर्चा कर रहे हैं और जीवन के उपरांत के जीवन की भी चर्चा कर रहे हैं।

मृत्यु तो जीवन का उपसंहार है। मृत्यु जीवन की एक कड़ी है। मृत्यु जीवन को समाप्त नहीं करती, अपितु जीवन की धाराओं को नए-नए आयाम देती है। कोई इंसान सीढ़ी से ऊपर चढ़ता है, तो सीढ़ी उसे ऊँचाइयों पर ले जाती है; लेकिन नीचे उतरने वाले को वह नीचे भी ले आती है। मृत्यु एक सीढ़ी ही है जो मानव-जीवन को नए आयाम देती है। मृत्यु उस लोक की ताकत है, जबकि अग्नि इस लोक की शक्ति है।

नचिकेता ने यमराज से अग्नि का रहस्य जानना चाहा। यमराज ने अग्नि की जो व्याख्या की, उसका सार यही निकलता है कि इंसान को अपनी बुद्धि को पराकाष्ठा तक ले जाना चाहिए; अपनी प्रज्ञा को, मेधा को, प्रतिभा को जागृत करना चाहिए। यह सबसे महान् यज्ञ है। ईश्वर ने जो हमें बुद्धि दी है, उसे और पैना बनाने का प्रयास करना चाहिए। पेंसिल चलाते-चलाते मोटी हो जाती है तो हम उसे पैना करते हैं, बुद्धि के मामले में भी ऐसा ही है। चलते-चलते हमारी बुद्धि भी मोटी हो जाती है। कितने लोग हैं जो इसे फिर से धार देते हैं? यज्ञ में अग्नि की उपासना का यही अर्थ है कि भीतर प्रेरणा का दीप जल उठे। निराशा-भाव न रहे। बुद्धि निरंतर प्रखर होती चली जाए।

लोग बुद्धि का उपयोग तो करते हैं, लेकिन समय-समय पर उसे धार नहीं लगाते। एक व्यक्ति कुल्हाड़ी लेकर पेड़ काटने निकला। पहले दिन उसने बीस पेड़ काट डाले। अगले दिन वह दस पेड़ ही काट सका। तीसरे दिन सुबह से शाम हो गई लेकिन वह चार से ज्यादा पेड़ नहीं काट सका। चौथे दिन एक भी पेड़ नहीं कटा, तो

बड़ा उदास हो गया। वह एक संत के पास गया। उसने अपनी व्यथा सुनाई, तो संत मुस्कराए। वह बोला, 'मेरी समस्या पर आप मुस्करा रहे हैं, भगवंत, ये क्या है?'

संत ने उसे समझाया कि उसने केवल पेड़ काटने पर ही ध्यान दिया, हर रोज कुल्हाड़ी की धार को तेज नहीं किया। आखिर एक बार की धार कितने पेड़ काटती? इंसान के साथ भी यही हो रहा है। वह बुद्धि का उपयोग तो कर रहा है, लेकिन उसे धार नहीं लगाता। यहीं पर उससे गलती है जाती है। बुद्धि को धार लगाते रहना चाहिए। भीतर की बुद्धि को और प्रखर बनाते रहना चाहिए।

मृत्यु कब हमारा द्वार खटखटाएगी, इसकी चिंता मत करो। मृत्यु तो अनिवार्य है, एक दिन आ जाएगी। इससे कोई नहीं बच सका। जिंदगी को हमेशा धार लगाते रहना चाहिए। अग्नि क्या है, यह ब्रह्म-विद्या है और ब्रह्म-विद्या क्या है, यह ज्ञान-विद्या है, बुद्धि-विद्या है। जो लोग यज्ञ का आयोजन करते हैं, उन्हें केवल यज्ञ-कुण्ड में आहुतियाँ ही नहीं देते रहना चाहिए। केवल नारियल ही अग्नि में नहीं डालते रहना चाहिए। यह काम भी जरूरी है, लेकिन खुद को यहीं तक सीमित नहीं कर लेना चाहिए। असली यज्ञ तो यही है कि व्यक्ति अपनी बुद्धि की साधना करे। आज का युग शिक्षा का युग है, बुद्धि का युग है। कठोपनिषद् हमें बुद्धि की साधना करने की प्रेरणा देता है। यमराज कहते हैं - तुम बुद्धि की गुफा में प्रवेश करो। ज्ञान के प्रकाश को उपलब्ध करो। सच्चा प्रकाश ज्ञान का ही प्रकाश है। और प्रकाश तो आते-जाते रहते हैं। ज्ञान का प्रकाश ही वह प्रकाश है जो हमेशा बढ़ता रहता है -

सरस्वती के भंडार की बड़ी अपूर्व बात।

ज्यूँ खरचै त्यूँ-त्यूँ बढ़ै, बिन खरचै घटी जाय ॥

ज्ञान के खजाने की यही तो खास बात है कि इसे जितना खरचेंगे, यह उतना ही बढ़ता जाएगा। जितना बाँटेंगे, उतना ही दुगुना-चौगुना होता जाएगा। गीता के भगवान कहते हैं, 'ज्ञानाग्निः सर्व कर्माणि भस्मसात् कुरुतेर्जुन' - हे अर्जुन, तुम ज्ञान रूपी अग्नि को प्रज्वलित करो। क्योंकि यह अग्नि सारे अज्ञान को जलाने में सक्षम है। हमें अपने जीवन में ज्ञान रूपी अग्नि प्रज्वलित करने का प्रयास करना चाहिए। कंधे-कंधे मिले हुए हैं, कदम-कदम के साथ हैं। पेट करोड़ों भरने हैं, पर उससे दुगुने हाथ हैं। जीवन को मायूस और निराश बनाने की बजाय, उत्साह और उमंग के साथ जीना चाहिए। कठोपनिषद् से प्रेरणा लीजिए और अपने घर में ज्ञान की ज्योत जलाइए। केवल ब्राह्मण लोग ही ज्ञान की शरण ग्रहण न करें। हर जाति, हर कौम, हर वर्ग ज्ञान से प्रकाशित हो। जैसे चरित्र इंसान की ताकत होती है, वैसे ही ज्ञान उसके विकास की आधारशिला होती

है। ज्ञान से ही विकास होता है, ज्ञान से ही धन का अर्जन होता है, ज्ञान से ही यश प्राप्त होता है। ज्ञान से ही जीवन सार्थक होता है।

हमारा हर दिन उत्साह और उमंग से भरा होना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि पूरी जिंदगी जी ली, लेकिन उसका कोई अर्थ समझ में नहीं आया। जीए क्यों, क्योंकि मरे नहीं? भला, यह क्या बात हुई? हमारा हर दिन परिणामदायी होना चाहिए। सूरज उगता है, तो एक परिणाम लेकर साँझ को अस्ताचल की ओर जाता है। हम भी सार्थक परिणाम लेकर जाएँगे, तो इस जीवन का सही उपयोग माना जाएगा।

ऐसे लोग अभागे होते हैं, जो पूरी जिंदगी जीने के बाद भी मृत्यु का स्वागत नहीं कर पाते। कहते हैं, अभी तो बहुत-कुछ करना शेष है। जीवन के भोगों से मन नहीं भरा। अभी पोते की शादी करनी है। उसके बेटे का मुँह देखना है। इच्छाएँ, लालसाएँ समाप्त ही नहीं होतीं। अरे भाई, पूरा जीवन जी लिया, अब भी कुछ शेष है?

जिन लोगों को जीवन का ज्ञान नहीं होता, वे और जीने की लालसा में फँसे रहते हैं। जिन्हें जीवन की अनित्यता का बोध हो गया, वे जीते भी हैं शान से और मौत का स्वागत भी करते हैं शान से। आज मरना हो, तो भी शान से तैयार हैं। अतृप्त रहने वाले कहते हैं, अभी मन नहीं भरा। अभी तो कई काम बाकी हैं। अरे, भले आदमी, साठ साल बीत गए, अब भी कुछ बाकी है तो बचे हुए गिनती के साल में क्या कर पाओगे? कुछ साल बाद मृत्यु आएगी, तब भी यही कहोगे, हे मृत्युदेव, कुछ दिन बाद आना। एक दुकान में घाटा चल रहा है, उसे लाभ में लाना है। अरे भाई, ययाति मत बनो। महावीर और बुद्ध बनो। हँसते-हँसते जीयो, और हँसते-हँसते मरो। गाँधी की तरह जीये तो भी धन्य है, और मरे तो भी धन्य है। अमरता के राज इस तरह की मृत्यु में ही छिपे हैं।

आदमी तो मुसाफिर है, उसे चलने के लिए तैयार रहना चाहिए। मृत्यु का कोई भरोसा नहीं, कब आ जाए। किसका, कितना आयुष्य शेष है, कोई नहीं जानता। इसलिए वह आ धमके, उससे पहले इतना कुछ कर डालो कि जाने का गम न रहे। आज को इतना जी लो कि कल की लालसा ही न रहे। वर्तमान को शक्तिमान बनाओ। भविष्य को भविष्य का नहीं, वर्तमान का परिणाम बनाओ।

न तो इंसान का अतीत प्रभावशाली होता है और न ही भविष्य का कोई ठिकाना। सबसे शक्तिशाली है आज, वर्तमान। आज को भरपूर जी लो। उसे अपनी संपूर्ण ऊर्जा से इतना शक्तिशाली और उपयोगी बना लो कि हमारा भविष्य हमारे वर्तमान का परिणाम हो जाए।

नचिकेता ने यमराज से तीसरे वर के रूप में यज्ञ की अग्नि का रहस्य जानना चाहा। यज्ञ में अग्नि की उपासना से स्वर्ग मिलता है। ऐसे आनन्दमयी लोक की प्राप्ति के लिए अग्नि की उपासना करें। मनुष्य अग्नि की उपासना के रूप में अपनी बुद्धि को, प्रतिभा को धारदार बनाए, सही तरीके से उपयोग करे तो वर्तमान को सफल बनाने के साथ ही स्वर्ग जितना आनन्द धरती पर ही पा सकता है। मृत्यु के बाद की चर्चा बाद में। अभी जीवन हमारे हाथ में है, तो जीवन की चर्चा करें। मृत्यु को भी समझेंगे, तो उसे भी जीवन के लिए ही समझेंगे।

नचिकेता ने तीसरा वर माँगा। कठोपनिषद् के शब्द हैं, 'मरे हुए व्यक्ति के विषय में जो यह संशय है, कोई तो यों कहते हैं, रहता है, और कोई कहते हैं, नहीं रहता। आपसे शिक्षित हुआ मैं इसे जान सकूँ, मेरे वरों में यह तीसरा वर है। हे गुरुदेव, आप बताएँ, इंसान मरने के बाद रहता है तो कहाँ और नहीं रहता तो क्यों? आखिर इसका रहस्य क्या है?'

नचिकेता कहते हैं, 'मृत्यु और जीवन के बारे में जितना आप जानते हैं, उतना और कौन जान सकता है? आत्म-तत्त्व, प्राण-तत्त्व को जानने वाले, जीवात्मा को समझने वाले आप ही हैं। आप संसार के सबसे बड़े गुरु हैं, जिन्हें जीवन का भी ज्ञान है और मृत्यु का भी।' यमराज संसार का सबसे बड़ा शिक्षक है, जो जीवन के प्रत्येक पल की, क्षणभंगुरता की हमें शिक्षा देता है। आती साँस जीवन है, जाती साँस मृत्यु है। एक क्षण जीवन है, तो एक क्षण मृत्यु है। कोई मृत्यु के जरिये जीवन को समझने की कोशिश तो करे।

दुनिया का सबसे बड़ा वैज्ञानिक मृत्युदेव ही है। वह पलक झपकते ही किसी भी इंसान के प्राणों को निकाल लेता है। इंसान जीवन भर साधना करके भी इस सत्य को नहीं जान पाता, जिसे सिर्फ मृत्यु के देवता ही जान पाते हैं; इसलिए हे यमराज, आप ही महायोगी हैं। आप आते हैं, और पलक झपकते किसी के भी प्राण निकाल लेते हैं।

नचिकेता पूछना चाहता है, आखिर आत्म-ज्ञान का रहस्य क्या है? मृत्यु के उपरांत का जीवन क्या है? हे गुरुदेव! जरा समझाइए। बड़ा गहरा प्रश्न है यह। मृत्यु से मृत्यु का रहस्य पूछा जा रहा है। नचिकेता के जरिये हम लोग मृत्यु से मुलाकात कर रहे हैं। यों तो लोग मृत्यु का नाम सुनते ही भयभीत हो जाते हैं। आप घबराएँ नहीं, नचिकेता को माध्यम बनाएँ और मृत्यु से मृत्यु को समझने की कोशिश करें। मृत्यु को समझना बड़ा दिलचस्प विषय है। जो वैज्ञानिक मृत्यु के रहस्य को समझना चाहते हैं, वे कठोपनिषद् पढ़ें। उन्हें कई रहस्यमय सूत्र मिल सकते हैं। मुझे भुगतना बुरा लगता है,

मृत्यु बुरी नहीं लगती। मृत्यु तो जीवन का प्रसाद लगता है। मरते समय रोते वही हैं, जो जीवन में कुछ कर न पाए। अतृप्त आत्माएँ रोती हैं, तृप्त आत्माएँ मुक्त हो जाती हैं।

नचिकेता मृत्यु से मृत्यु का रहस्य पूछ रहे हैं। आखिर मृत्यु है क्या, जो पलक झपकते ही सारी इहलीला का स्वरूप ही बदल देती है। हम एक मोमबत्ती जलाते हैं, उसकी बाती जलती है, ज्योति पैदा होती है, धुआँ भी उठता है, मोम पिघलता है; लेकिन एक पल ऐसा आता है जब सब समाप्त हो जाता है। प्रश्न उठता है, कहाँ गई ज्योति? कहाँ गया धुआँ? क्या था जो धुएँ के रूप में, ज्योति के रूप में व्याप्त था? आखिर मनुष्य पृथ्वी पर जन्म क्यों लेता है? यहाँ रहने के दौरान ही मृत्यु क्यों घटित होती है। मृत्यु के बाद जीवन रहता है या समाप्त हो जाता है? हमने जो संतान पैदा की, उसे पैदा करने में क्या सिर्फ हमारी ही भूमिका है या कोई और भी निमित्त है?

ये सब सवाल हैं जो जीवन के आध्यात्मिक चिंतन और मनन के दौरान हमारे मन में उपस्थित होते हैं। मृत्यु के उपरांत जीवन, एक ऐसा सवाल है, जिसके बारे में व्याख्या करने को बहुत सारे शास्त्र रचे गए हैं। दुनियाभर के तीर्थंकरों, पैगम्बरों, संतों ने इन सवालों का उत्तर जानने के लिए पूरा जन्म लगा दिया। खुद को लम्बी-लम्बी तपस्या में लीन कर लिया। पता नहीं किसने इनमें से कितने सवालों के उत्तर पाए, या नहीं पाए। मुझे लगता है, मृत्यु से बड़ा अध्यापक और कौन हो सकता है? यह ऐसा अध्यापक है, जो न केवल मृत्यु, अपितु जीवन के बारे में भी कई रहस्य खोल सकता है।

एक चित्रकार ने एक चित्र बनाया। उसमें चित्रकार ने एक युवक को दिखाया, जिसके दो पंख लगे थे। उस युवक का चेहरा उसके घने बालों से छिपा था। किसी ने चित्र की व्याख्या पूछी कि भला आदमी के पंख का क्या मतलब और उसका चेहरा क्यों ढका हुआ है? चित्रकार ने बताया कि यह चित्र अवसर का है। अवसर जब आता है, पूछकर नहीं आता। इंसान समय पर अवसर को पहचान ले और उसका चेहरा देख ले, तो उसे उचित परिणाम मिल सकता है। जो ऐसा नहीं कर पाता, उसके आगे से ये अवसर पंखों की सहायता से उड़ जाता है।

जो लोग अवसर का उपयोग कर लेते हैं, उन्हें वह कुछ दे जाता है और जो नहीं कर पाते, वे खाली हाथ रह जाते हैं। मनुष्य को मिला हुआ जीवन एक अवसर ही तो है। जीवन के रहस्यों को जानने के लिए है यह। आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए है। अवसर का उपयोग करने वाले उड़ते जीवन को पकड़ लेते हैं। जो ऐसा नहीं करते, वे कबीर के दोहे की तरह जीवन जीते रहते हैं - चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोय, दो पाटन विच आय के साबित बचा न कोय। हम सब मृत्यु की चक्की में पिसते हुए मृत्यु के निकट पहुँच जाया करते हैं।

किसी के जन्म दिन पर लोग पूछते हैं, कौनसा जन्म दिन है ? जवाब मिलता है, पचासवाँ। आज पचास साल पूरे हो गए। इंसान कितना नादान है। पचास साल पूरे कहाँ हुए, जीवन में से पचास साल कम हो गए। इस लिहाज से जीवन पचास साल छोटा हो गया। क्या करें ? जीवन के प्रति मोह नहीं छूटता।

राम के विवाह के पश्चात् जब विश्वामित्र जाने लगे, तो महाराज दशरथ ने उन्हें कुछ दिन और रुककर महलों में विश्राम करने को कहा। विश्वामित्र ने जवाब दिया, 'ज्यादा रुकना ठीक नहीं है महाराज। मोह में पड़ना अच्छा नहीं है। एक बार ऐसा समय आया था कि मेनका के मोह में पड़ गया था, सब तप चला गया। अब रुका, तो यह रुकना मोह का कारण बन जाएगा।'

समय रहते अपने दायित्वों को पूरा कर इस संसार रूपी जंजाल से निकल जाओ। मोह-माया का त्याग करो, खुद को मुक्त करो संसार से। शेष जीवन को धन्य कर लो। जीवन एक अवसर ही तो है। जो इस अवसर को पहचान लेगा, अपना भला कर लेगा। नचिकेता ने यमराज के सामने गंभीर प्रश्न रखा कि हे गुरुदेव, मैं आपसे शिक्षित हुआ; इसलिए आप मेरे गुरु हुए। आपके शिष्य को तीसरे वर के रूप में बताएँ कि मृत्यु के बाद प्राण रहते हैं या नहीं ? रहते हैं तो कहाँ ? आप मुझे मृत्यु का मर्म समझाएँ। मृत्यु के बाद क्या होता है ?

नचिकेता ने ऐसा क्यों पूछा ? मृत्यु के बारे में जानने से क्या होगा ? इंसान को जीवन पूरे उत्साह और उमंग के साथ जीना चाहिए। पर एक बात सदैव याद रखनी चाहिए कि आखिर यह शरीर मरणधर्मा क्यों है ? उत्साह और उमंग के साथ जीते हुए हमें इतना अंधा भी नहीं हो जाना चाहिए कि हमें मृत्यु के आने का अहसास तक न रहे। हम मृत्यु को भूल ही बैठें।

आज कोई लाखों-करोड़ों कमा रहा है, तो कोई अरबों रुपए तिजोरी में डाल रहा है। रोजाना नई फैक्ट्री खोल रहा है। एक पाँव इधर, दूसरा उधर। घर तो भर रहा है, लेकिन घर-परिवार के सदस्यों के लिए समय ही नहीं है। यह काम, वह काम, काम ही काम। आँख खुलते ही काम शुरू होता है और नींद आने तक काम-ही-काम। अरे भाई, एक दिन तुझे मरना भी है। इतने जंजाल मं मत फँसो। कमाने में इतने व्यस्त मत होओ कि जीवन से शांति ही समाप्त हो जाए। हमारा जीवन केवल पैसा नहीं हो जाना चाहिए। शरीर भौतिक है, धन भौतिक है। भौतिक में हम इतने न उलझ जाएँ कि आत्मा और अध्यात्म याद ही न रह पाएँ।

इंसान जब शरीर छोड़कर जाता है, तो अपने साथ कुछ भी नहीं ले जाता। आज तक कोई कुछ लेकर नहीं जा सका। सब यहीं रह जाता है। ए.सी. तो छोड़ो, नीम की छाँव भी साथ नहीं ले जा सकता। तिजोरी तो यहीं छूटनी है, साथ में एक चिमटी आटा भी नहीं ले जा सकोगे। सब यहीं छूट जाने वाला है। साथ कुछ जाता है, तो जीवन में कमाया गया पाप-पुण्य जाता है। मरने के बाद पीछे कुछ नहीं रहता, केवल यश का शरीर पीछे छूटता है। इसलिए इतना ही कमाओ कि यश कहीं अपयश न बन जाए। इतना ही पैसा कमाओ कि वह पैसा तुम्हारा अनुयायी बना रहे, तुम्हारा मालिक न बन जाए। ज़िंदगी के गुलाम मत बनो, आज़ादी की खुली साँस लो। पैसा सुख देता है, लेकिन पैसा ही सब कुछ नहीं हुआ करता। एक दिन मरना है – इस बात को जो व्यक्ति याद रखेगा, वह फायदे में ही रहेगा। वह पैसे के साथ रह कर भी परमेश्वर से जुड़ा रहेगा।

उसे पहला फायदा तो यह होगा कि आखिर तो एक दिन शरीर को छूट ही जाना है, इस बात का बोध रहेगा। भौतिक संसार के प्रति मूर्च्छा नहीं रहेगी। और कमाओ, और कमाओ की चाह समाप्त हो जाएगी। कहते हैं, संत एकनाथजी से किसी ने पूछा, आप इतने मस्त कैसे रह पाते हैं? संत ने उसे कहा, तेरे सवाल का जवाब दूँ, उससे पहले तू अपनी खैर मना। वह चौंका, आप ऐसा क्यों कह रहे हैं महात्मन्? एकनाथजी ने उसे बताया कि बीस दिन बाद उसकी मृत्यु होने वाली है। यह सुनते ही वह आदमी वहाँ से सरपट भागा। मशहूर था कि संत एकनाथ झूठ नहीं बोलते।

वह आदमी वहाँ से सीधा अपने घर पहुँचा। पुत्र ने कहा, पिताजी दूकान चलें। वह बोला, नहीं बेटे, अब दूकान तुम ही संभालो। मेरा क्या है, मुझे तो ज़्यादा जीना नहीं है, इसलिए शेष समय भगवत् भजन में लगाऊँगा। उस दिन से उसकी दिनचर्या ही बदल जाती है। धर्म-कर्म, पूजा-पाठ में ही उसका सारा समय बीतने लगता है। वह सांसारिक कार्यों को पूरी तरह भूल जाता है। स्थिति यह हो जाती है कि वह संसार से विरत-सा हो जाता है। सोचने लगता है, अब मृत्यु आ भी जाए, तो चिंता नहीं। इतना सोचते ही मन शांत होने लगता है।

बीस दिन बीत गए, मौत तो आई ही नहीं। वह हैरान हुआ। संत एकनाथ का कंहा झूठ तो नहीं हो सकता। वह संत के पास गया। संत समझ गए कि वह क्या पूछना चाहता है। उन्होंने उसे समझाया, भले आदमी, मृत्यु क्या पूछ कर आती है। तुम मेरी मस्ती का राज जानना चाहते थे। राज यह है कि मैंने मृत्यु और जीवन के रहस्य को जान लिया है। यह शरीर तो एक दिन समाप्त होने ही वाला है। वह दिन कौन-सा होगा, यह



किसी को पहले पता नहीं होता। मैं तो तुम्हारे सवाल का जवाब दे रहा था, तुमने तो सचमुच अपना जीवन ही सँवार लिया।

कंस को भविष्यवाणी हुई थी कि आठवाँ पुत्र तेरा काल बनेगा। जीवन के प्रति मोह होने के कारण कंस ने देवकी के सभी पुत्रों को मार डाला। काल तो आठवाँ पुत्र बनना था, लेकिन कंस ने सभी को इसलिए मार डाला क्योंकि वह भय के मारे यह तय नहीं कर पाया कि आठवें की गिनती कहाँ से शुरू होगी। संत एकनाथ ने कहा, मौत तय है, इसलिए जीवन के हर पल का आनन्द लेता हूँ, मेरी मस्ती का यही राज है। एकनाथ ने उसे जीवन और मृत्यु का रहस्य समझा दिया।

जीवन और मृत्यु का बोध होना चाहिए। मृत्युदेव के सामने जाने से भी कुछ लोगों को अक्ल नहीं आती। कई लोग कोमा में चले जाते हैं, उनकी धड़कन बंद हो जाती है। डाक्टर उन्हें मृत घोषित कर देते हैं। लेकिन कुछ देर बाद उनकी धड़कन फिर से चलने लगती है। वे जिंदा हो उठते हैं। ऐसे लोग कई तरह के किस्से सुनाते हैं। मौत के बाद मैं अंधेरी गुफाओं में गया। वहाँ एक सफेद दाढ़ी वाले महात्मा मिले। आकाश में परियों को देखा। कोई बताता है - दो काले-काले दूत मुझे लेने आए थे; लेकिन किसी ने कहा, अभी इस मानव का आयुष्य पूर्ण नहीं हुआ है, इसलिए वे मुझे छोड़ गए।

इस तरह के लोगों के मन से फिर मृत्यु का भय निकल जाता है। उन्हें जीवन की निरर्थकता का बोध हो जाता है। वास्तव में इंसान को मौत नहीं मारती, मौत के प्रति रहने वाला भय मार डालता है। निर्भीकता से जीवन जीने के लिए आवश्यक है व्यक्ति यह बोध रखे कि मृत्यु से सब-कुछ समाप्त नहीं हो जाता। मृत्यु के बाद भी जीवन है। आखिर वह क्या चीज है, जो हमारे जीवन को धारण करती है। वह है, आत्म-चेतना। मृत्यु देव आते हैं, हमारे प्राण ले जाते हैं। मृत्यु के बाद क्या? यह ऐसा प्रश्न है जिसे सुनकर मृत्यु देव भी हक्के-बक्के रह जाते हैं।

यमराज सोचने लगे, नचिकेता ने यह क्या पूछ लिया। मृत्यु अपना रहस्य किसी को नहीं बताती। उसके बारे में कोई कुछ नहीं जानता; इसीलिए तो लोग मृत्यु से डरते हैं। यमराज सोचने लगे कि नचिकेता कुछ और क्यों नहीं माँग लेता। भला ये क्या सवाल हुआ कि मृत्यु के बाद क्या होता है। उन्होंने नचिकेता को समझाने का प्रयास किया कि कुछ और माँग ले। मृत्यु का रहस्य मत पूछ। यह आत्मज्ञान रहने दे।

नचिकेता ने कहा, मैं पृथ्वी से इतनी दूर इसीलिए तो नहीं आया कि आप जो कहें, वही कर लूँ। आपसे शिक्षित हुआ मैं नचिकेता आपसे पुनः आग्रह कर रहा हूँ कि तीसरे वर के रूप में आप मुझे मृत्यु का रहस्य बताएँ। यमराज ने उसे लालच देना चाहा, तुम

कहो तो मैं तुम्हें पृथ्वी का अधिपति बना देता हूँ। तुम्हें दीर्घ आयु प्रदान करता हूँ, बस तुम मृत्यु का रहस्य जानने की जिद मत करो।

नचिकेता अड़ा रहा। कहने लगा, मैं न तो देव-देवांगना चाहता हूँ और न ही पृथ्वी का राज। मृत्यु के बारे में आपसे अधिक कौन बता सकता है! इस प्रश्न का उत्तर अन्य कोई नहीं दे सकता। आप जानते हैं, इसलिए मुझे यह आत्म-ज्ञान प्रदान करें। आप अपना अनुभव मुझे बाँटें।

दुनिया में दो तरह के ज्ञानी होते हैं - एक तो वे जिन्हें किताबों का ज्ञान होता है; दूसरे वे, जिन्हें अनुभव का ज्ञान होता है। किताबी ज्ञान तो पृथ्वी पर खूब मिल जाएगा, लेकिन खुद भोगकर, अनुभव से पाया ज्ञान हर किसी के पास नहीं होता। आप मृत्यु के बारे में सबसे ज्यादा तजुर्बा रखते हैं, इसलिए मैं आपसे मृत्यु का रहस्य जानना चाहता हूँ।

हे यमराज, आप मुझे बताएँ कि इसमें क्या रहस्य है, कुछ लोग कहते हैं, मृत्यु के बाद जीवन रहता है; कुछ कहते हैं, नहीं रहता। इसका क्या रहस्य है? धरती वासियों को तो ये प्रेरणा ही नहीं मिलती कि वे मृत्यु का रहस्य जानना चाहें। वे तो मृत्यु का नाम सुनते ही डर जाते हैं। निर्भयतापूर्वक जीना है, तो मृत्यु से संवाद करो, मृत्यु को समझो।

इंसान को कभी श्मशान भी जाना चाहिए। वहाँ उसे जीवन की नश्वरता का अहसास हो सकता है। जीवन की वास्तविकता क्या है, वहाँ जाकर पता चलेगी। भीतर की अग्नि बुझ गई, तो समझो मृत्यु हो गई। मृत्यु से नहीं डरना चाहिए। मनुष्य को जीवन और मृत्यु के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए। जैसा कल जीए, वैसा ही आज जीओ। बहुत कमा लिया। थोड़ा और कमा लोगे, तो ख़ास फ़र्क नहीं पड़ने वाला। ऐसा तो है नहीं कि ज्यादा पैसे कमा लोगे, तो दीन-दुखियों के लिए अस्पताल बनवाने वाले हो। गरीबों के लिए स्कूल बनवाने वाले हो। साठ साल जी लिए, दस साल और निकल जाएँगे, क्या फ़र्क पड़ जाएगा। वही घर से घाट और घाट से घर। इस दिनचर्या को बदल पाओ, तब तो कुछ और जीने का अर्थ भी होगा।

इसलिए इतना कुछ कर जाओ कि मृत्यु जब भी आए, हम उसका स्वागत करें। मनुष्य के भीतर मृत्यु के भय की ग्रंथि बन जाया करती है। इस ग्रंथि को निकालना जरूरी है। एक साधक के लिए निर्भय चेतना का स्वामी बनना जरूरी है। जब तक निर्भयता नहीं आएगी, साधना में परिपक्वता नहीं आ पाएगी।

एक मूर्तिकार था। बड़ी अच्छी मूर्तियाँ बनाता था। दूर-दूर तक उसका नाम था। एक दिन उसके मन में मरने का डर समा गया। उसने सोचा कि मृत्यु को धोखा कैसे

दिया जाए। आखिरकार अपनी चिंता का एक समाधान उसे सूझ ही गया। उसने अपने जैसी बहुत-सी मूर्तियाँ बना लीं। निन्यानवे मूर्तियाँ बनाकर वह खुद भी उनके बीच जाकर खड़ा हो गया।

यमराज आए, तो चिंतन में पड़ गए। काफी दिमाग लगाया कि इन मूर्तियों के बीच असली मूर्तिकार कौन है? लेकिन यमराज भी तो यमराज थे, मृत्यु के देवता। उन्होंने अपना खेल किया। वे बड़बड़ाने लगे, 'भाई मूर्तिकार, मूर्तियाँ तो आपने बहुत ही अच्छी बनाईं लेकिन एक कमी रख ही दी।' कोई भी कलाकार कितना भी विनम्र क्यों न हो, वह अपनी कलाकृति में कोई कमी बर्दाश्त नहीं कर सकता। वह भूल गया कि वह मृत्यु से बचने के लिए ही अपनी बनाई मूर्तियों के बीच छिपा हुआ है। वह तत्काल बाहर आया और यमराज से अपनी कलाकृति में रह गई कमी के बारे में पूछने लगा। बस यमराज ने उसकी बाँह पकड़ ली। तब मूर्तिकार को होश आया, अरे, ये तो यमराज ने मुझसे छल कर लिया।

दस साल अपनी मूर्तियाँ बनाने में लगा रहा। यदि उसने ये दस साल अपने कल्याण के लिए लगाए होते, तो आज यमराज से उसकी यूँ मुलाकात नहीं होती। वह खुशी-खुशी मृत्यु को गले लगा लेता। लेकिन वह ऐसा नहीं कर पाया। आखिर मृत्यु से साक्षात्कार तो उसे करना ही पड़ा। मृत्यु तो तब भी आती लेकिन तब वह मृत्यु न होकर महोत्सव बन जाती।

इसलिए मृत्यु से घबराओ मत। निर्भय चेतना के स्वामी बनो। नचिकेता का यमराज से किया गया प्रश्न हम सभी के कल्याण के लिए है। यमराज के उत्तर से हम अपना कल्याण कर सकते हैं। प्रभु यही संदेश देते हैं कि हम मृत्यु से निर्भय हो जाएँ। जीवन को निर्भय होकर जीएँ। जीवन का अधिकतम उपयोग सार्थक कार्यों में करें। जीवन में यह तृष्णा न रह जाए कि अमुक काम नहीं कर पाए, अमुक काम की मन में इच्छा ही रह गई। भगत सिंह फाँसी के तख्ते पर हँसते-हँसते गए। हम भी मृत्यु को हँसते-हँसते स्वीकारेंगे, तो योगी कहलाएँगे। इसलिए अनासक्तिपूर्वक जीओ। सबके साथ रहो, हँसो-खेलो, पर चिपको मत। मुक्त होकर जीओ। पुरुषार्थ मृत्यु के लिए नहीं, मुक्ति के लिए करो। मरण हो, तो ऐसा हो जो पुनर्जन्म का इंतकाल कर दे। जीवन एक उत्सव है। इसे इस तरह जीओ कि मृत्यु महोत्सव बन जाए।



# 9

## मृत्यु या मुक्ति

नचिकेता के द्वारा माँगे गए तीन वर में से तीसरा वर यह है कि हे यमराज, दुनिया में कुछ लोग कहते हैं कि इंसान मरने के बाद रहता है, और कुछ कहते हैं कि नहीं रहता। आप इस विषय के परम ज्ञाता हैं। अतः तीसरे वर के रूप में मैं आपसे आत्म-ज्ञान का यह रहस्य जानना चाहूँगा, ताकि मुझे भली-भाँति यह बोध हो सके कि मरने के बाद क्या होता है और क्या नहीं होता? यद्यपि नचिकेता के द्वारा जब प्रथम दो वर माँगे गये, तो यमराज प्रसन्न था कि उसने ऐसे वर माँगे जिनके बारे में ज्ञान देना पृथ्वी वासियों के लिए सहज-सरल है, लेकिन उन्हें यह उमीद तो कतई नहीं थी कि उनके द्वार पर आया नचिकेता प्राणी-मात्र की मृत्यु का रहस्य जान लेना चाहेगा।

यमराज नचिकेता को वर देने के लिए वचनबद्ध थे, क्योंकि उन्होंने ही उसे तीन वर माँगने को कहा था; इसलिए वे विवश थे, मजबूर थे। पृथ्वी पर लोग मृत्यु को आता हुआ तो देखते हैं, लेकिन इसके बाद क्या होता है, इसे कोई नहीं जान पाता। पृथ्वी पर एक भी घर ऐसा न होगा, जहाँ कभी किसी की मृत्यु नहीं हुई हो। यही वजह है कि किसी समय गौतमी के पुत्र की मृत्यु हो गई, तो वह गाँव भर में वैद्यों के पास घूमी। बस, एक ही चाह लेकर कि कोई उसके पुत्र को जीवित कर दे। भला ऐसा कभी हुआ है! हर किसी ने एक ही बात कही - किसी भी प्राणी के लिए यह तो संभव है कि वह किसी को मार दे, लेकिन मरने वाले को कोई जीवित नहीं कर सकता। दुनिया में ईश्वर पराशक्ति के रूप में हर कहीं व्याप्त है। जो काम यमराज नहीं कर सकता, वह पराशक्ति ईश्वरीय शक्ति कर सकती है। वह मृत को भी अमृत कर सकती है।

गौतमी पुत्र-मोह में पागल हो गई थी। उसे किसी की बात पर यकीन नहीं हो रहा था। वह सोच रही थी कि कोई-न-कोई तो ऐसा होगा, जो उसके पुत्र को फिर से जीवित कर देगा। भटकते-भटकते वह बुद्ध के पास पहुँची। बुद्ध ने गौतमी की मनोदशा को समझा। वे सोचने लगे कि गौतमी को सीधे जवाब दिया गया, तो उसके भीतर

मौजूद गहरी आध्यात्मिक संभावना समाप्त हो जाएगी, आध्यात्मिक संभावना की हत्या हो जाएगी।

बुद्ध ने गौतमी से इतना ही कहा, निश्चित तौर पर मैं तुम्हारे पुत्र को जीवित कर सकता हूँ लेकिन तुम्हें एक काम करना होगा। गौतमी तो कुछ भी करने को तैयार थी। वह बोली, आप जो कहेंगे, मैं करने को तैयार हूँ। बुद्ध ने उससे कहा, तुम किसी के घर से सरसों के सात दाने ले आओ। मैं उन दानों को अभिमंत्रित कर दूँगा और तुम्हारा पुत्र फिर से जीवित हो जाएगा। गौतमी प्रसन्न होकर वहाँ से जाने ही लगी थी कि बुद्ध ने उसे टोका, लेकिन एक बात का ध्यान रखना, सरसों के दाने उसी घर से लाना, जहाँ आज तक किसी की मृत्यु नहीं हुई हो।

गौतमी पूरा गाँव घूम आई। लोगों ने कहा कि सरसों के दानों से यदि तुम्हारे पुत्र को फिर से जीवित किया जा सकता है तो सात दाने तो क्या, सात बोरी सरसों देने को तैयार हैं, लेकिन किसी ने कहा – उनके यहाँ दादाजी की मृत्यु हो चुकी है, तो किसी ने अन्य रिश्तेदार की मृत्यु की बात बताई। दिन भर घूमकर गौतमी थक गई और पुनः बुद्ध के पास लौटी। उन्हें सारी बात बताई।

बुद्ध ने गौतमी को समझाया – जो पैदा हुआ है, उसका मरना निश्चित है। तुम इस मोहमाया से बाहर निकलो और अपने आध्यात्मिक स्वरूप को उपलब्ध होओ। जीवन के मर्म को समझने का प्रयत्न करो कि धरती पर जो जन्म लेता है, एक दिन उसे मरना ही होता है। जो फूल खिलता है, उसे मुरझाना ही होता है। सूरज उगता है, तो शाम को उसे ढलना ही होता है –

हँसता हुआ मधुमास भी तुम देखोगे,  
मरुस्थल की कभी प्यास भी तुम देखोगे।  
सीता के स्वयंवर पर इतना न झूमो,  
कल राम का वनवास भी देखोगे ॥

जहाँ भारत है, वहाँ महाभारत है; जहाँ स्वयंवर है, वहाँ वनवास की भी संभावना है। जहाँ चित है, वहाँ पुट भी है। धूप के साथ छाँव और छाँव के साथ धूप; सुख के साथ दुःख और दुःख के साथ सुख; अनुकूलता के साथ प्रतिकूलता और प्रतिकूलता के साथ अनुकूलता एक ही सिक्के के दो पहलू की तरह हैं। जीवन में इस सत्य का हमेशा बोध रखो। परिवर्तनशीलता ही प्रकृति का धर्म है।

मैंने कल कहा था कि मरना मना है। लोग कहते हैं, हँसना मना है और मैं कहता हूँ, मरना मना है। समय आने पर मरना तो जीवन का सौभाग्य है। मनुष्य के लिए मृत्यु वैसे ही होनी चाहिए जैसे साँप के लिए कँचुली का उतरना होता है। शरीर तो नश्वर है; समय आने पर इसका त्याग होना ही चाहिए। इंसान आखिर कब तक इस काया को

ढोता रहेगा। आप जब तक जवान हैं, आपके शरीर में ताकत है, तब तक तो कोई बात नहीं; लेकिन बूढ़ी काया से मोह कैसा? बूढ़ी काया को अमर बनाकर क्या करोगे? एक दिन चले जाने में ही भलाई है। हमेशा सुख-ही-सुख रहा, तो सुख की क्रीमत ही समझ में नहीं आएगी। दुःख-दर्द भी आना ही चाहिए।

जिस व्यक्ति के चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं, बाल सफेद हो गए हैं, हाथ में लाठी आ चुकी है, पत्नी-बच्चे भी उपेक्षा करने लगे हैं, ऐसे किसी व्यक्ति को स्वयं परमात्मा भी आकर कहे कि मैं तुम्हें और सौ साल जीने का वरदान देता हूँ, तो यह आशीर्वाद नहीं, अभिशाप है। बुजुर्ग काया तो यही प्रार्थना करेगी कि चलती-फिरती ही यहाँ से प्रस्थान कर जाऊँ। सहज मृत्यु आए, तो उसका स्वागत है, लेकिन असहज मृत्यु आए, तो मैं यही कहूँगा, मरना मना है।

दुनिया में दो शब्द हैं - आत्महत्या और हत्या। दूसरे का वध करते हैं, तो वह हत्या कहलाती है। आदमी स्वयं का जीवन समाप्त करता है, तो उसे आत्महत्या कहेंगे। मैं नहीं समझता कि आत्महत्या शब्द क्यों बना। आत्मा की तो हत्या की ही नहीं जा सकती। जिस आत्मा के लिए कहा गया है कि प्राणी के जन्म से पहले भी जिसका अस्तित्व रहता है और प्राणी का शरीर शांत होने के बाद भी जिसका अस्तित्व रहेगा, वह है आत्मा। इसलिए आत्महत्या की बजाय इसे देह-हत्या कहा जाना चाहिए।

एक बात तो तय है कि दुनिया में जो प्राणी आया है, उसे एक दिन जाना होगा। ऐसे में कोई व्यक्ति मृत्युदेव के सामने खड़ा होकर मृत्यु के बारे में सवाल करता है, तो एक बार तो मृत्यु भी हिल जाएगी। यदि कोई किसी राजा से पूछे कि आप राजा कैसे बने, इसके लिए क्या तरीका अपनाया तो वह नहीं बताएगा। वह तो रहस्य ही बनाए रखेगा। मृत्यु भी अपनी ओर से नचिकेता को बताने के तैयार नहीं है कि किसी को अपना रहस्य बता दे। व्यक्ति मरने के बाद कहाँ जाता है? मृत्युदेव किस तरह किसी के शरीर से प्राणों का हरण करते हैं, यह जानकारी क्यों देंगे?

यहाँ सवाल बताने या छिपाने का नहीं है, अपितु विवशता का है। वरदान भी तो स्वयं यमराज ने ही तो दिया है कि माँगो नचिकेता, तीन वर के रूप में क्या माँगते हो? अब नचिकेता ने मृत्यु का रहस्य जानना चाहा है, तो यमराज भला पीछे कैसे हट सकते हैं, लेकिन वे अपनी ओर से नचिकेता को भुलावे में डालने की पूरी कोशिश करते हैं। नचिकेता ने पहला वर माँगा, पिता की प्रसन्नता का। दूसरे वर के रूप में अग्नि का रहस्य जानना चाहा और अब तीसरे वर के रूप में वे मृत्युदेव से मृत्यु का ही रहस्य जानना चाहते हैं।

हे मृत्युदेव, बताएँ, मृत्यु के बाद क्या होता है? मुझे इसके बारे में भलीभाँति समझाइए। मैं तो आपका शिष्य हूँ और शिष्य होने के नाते मेरा अधिकार है कि मैं अपने

गुरु से ज्ञान प्राप्त करूँ। गुरु ही शिष्य को ज्ञान न देगा, तो कौन देगा ? गुरु और शिष्य का संबंध बहुत प्रगाढ़ होता है। वैसे ही जैसे ज्ञानी और अज्ञानी का संबंध होता है। ज्ञानी है, इसलिए गुरु कहलाता है और अज्ञानी है, इसलिए शिष्य कहलाता है। गुरु का अर्थ है जो अज्ञान का अंधकार दूर करे। शिष्य का अर्थ है, जो अंधकार को दूर करने का रास्ता जानना चाहता है। गुरु या शिष्य होना बड़ी बात है। शिष्य होने का अर्थ है, समर्पण। अब मेरा मुझमें कुछ भी नहीं रहा ? यह भाव ही शिष्य होने का प्रमाण है। जब तक मैं का भाव रहेगा, शिष्य नहीं बना जा सकता। तब तक शिष्यत्व अधूरा रहेगा।

ऐसा ही हुआ। एक बार स्वामी विवेकानन्द अपने शिष्यों के साथ किसी विषय पर चर्चा कर रहे थे। एकाएक किसी ने पूछ लिया, 'नरक क्या है ?' विवेकानन्द ने सवाल किया, 'यह सवाल कौन पूछ रहा है ?' एक शिष्य खड़ा होकर बोला, 'मैं पूछ रहा हूँ।' विवेकानन्द ने कहा, 'यह जो 'मैं' है, यही नरक का रास्ता है। शिष्य का अर्थ 'मैं' नहीं, गुरु जो कहे वही है। गुरु ने कहा, कौआ सफेद है, तो शिष्य के लिए वह सफेद ही है। भले ही कौआ शिष्य की नज़र में वास्तव में काला है, लेकिन यहाँ वह सफेद ही रहेगा। उसका हर क्रम वही होगा, जो गुरु का आदेश होगा।

गुरु और शिष्य होना बड़ी जवाबदारी का संबंध है। मेरी समझ से तो किसी को गुरु बनाना ही नहीं चाहिए, किसी को शिष्य नहीं बनाना चाहिए और यदि बना लिया है, तो दोनों को अपनी ज़िम्मेदारी समझनी चाहिए। किसी व्यक्ति को या तो शादी करनी नहीं चाहिए क्योंकि शादी करना अनिवार्य नहीं है। पर शादी कर ली जाए, तो उसे पत्नी के प्रति अपने दायित्वों को निभाना चाहिए। कोई ज़रूरी नहीं है कि आप संतानों को जन्म दो। जन्म दे दिया है, तो फिर उनकी ज़िम्मेदारी से मत बचो।

कोई ज़रूरी नहीं है कि आप किसी को गुरु या शिष्य बनाएँ। लेकिन ऐसा कर लिया है, तो दोनों को एक-दूसरे के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी को निभाना चाहिए। गुरु और शिष्य अर्थात् एक महान पथ पर चलने वाले दो सहयात्री। शिष्य को गुरु के साथ चलने के लिए उसका पुत्र होना होता है। गुरु को अपने शिष्य के साथ चलने के लिए उसका सखा होना होता है। गुरु बनकर शिष्य को उपलब्ध नहीं करवाया जा सकता, एक मित्र बनकर शिष्य को उपलब्ध करवाया जा सकता है।

नचिकेता ने अपनी ओर से महात्मा यमराज से कहा कि हे यमराज, मैं ज्ञान प्राप्त करने की मुमुक्षा के साथ आपके समक्ष उपस्थित हुआ हूँ। आपसे यही चाहता हूँ कि आप मुझे मृत्यु का रहस्य समझाएँ। एक तरह से नचिकेता ने बहुत बड़ा खेल खेला। नचिकेता जैसा बालक पैदा न होता, तो संसार में कठोपनिषद् जैसा शास्त्र बन ही न पाता। धरती पर ऐसे शास्त्र का अवतरण ही न हुआ होता। नचिकेता के सवाल से यमराज हिल गए। वे फँस गए। विचार करने लगे, अपने ही बिछाए जाल से कैसे निकलें ? कोई-न-कोई रास्ता तो निकालना ही पड़ेगा। पति-पत्नी बात करना चाह रहे

हों और बच्चा अचानक आ जाए, तो उसे वहाँ से हटाने का रास्ता ढूँढ़ ही लिया जाता है। चाहे इसके लिए उसे टॉफी का लालच ही क्यों न देना पड़े।

यमराज ने भी अपनी ओर से खेल खेला, प्रलोभन का खेल। उन्होंने नचिकेता को प्रलोभन देना चाहा, ताकि वह मृत्यु का रहस्य जानने की जिद न करे। यमराज ने उससे कहा, 'हे नचिकेता, तू सौ वर्ष की आयु वाले बेटे-पोते, बहुत से पशु, हाथी, स्वर्ण और घोड़े माँग ले, विशाल भूमंडल भी माँग ले तथा स्वयं भी जितने वर्ष इच्छा हो जीवित रह। तू धन और चिरस्थायी जीविका माँग ले। मैं तुझे कामनाओं को इच्छानुसार भोगने वाला बना देता हूँ। मनुष्य-लोक में जो-जो भोग दुर्लभ हैं, उन सब भोगों को तू स्वच्छंदता पूर्वक माँग ले। यहाँ रथ और बाजों के सहित ये रमणियाँ हैं। ऐसी स्त्रियाँ मनुष्य को प्राप्त करने योग्य नहीं होतीं। मेरे द्वारा दी हुई इन रमणियों से तू अपनी सेवा करा। परन्तु हे नचिकेता, तू मरण संबंधी प्रश्न मत पूछ।'

यह कहकर यमराज ने अपनी ओर से एक गोटी फिट करनी चाही। यमराज कहते हैं, हे नचिकेता, तुम मेरे यहाँ आए, तुम्हारा स्वागत है। तुम कुछ भी पूछ लो, लेकिन मृत्यु का रहस्य जानने की जिद न करो। यह कोई खेल नहीं है। तू इससे बच। दुनिया में लोग प्रलोभन से डिग जाया करते हैं। मनुष्य को हर कोई प्रलोभन देने को तैयार है। प्रकृति मनुष्य को प्रलोभन देती है। एक इंसान दूसरे को प्रलोभन देता है। आज की भाषा में इस प्रलोभन को रिश्वत कहते हैं। हमारे देश की सबसे बड़ी समस्या ही रिश्वत है। हमारा देश रिश्वत-मुक्त हो जाए, तो देश का कायाकल्प हो जाए। पिछले 50 साल में देश ने जितनी तरक्की की है, आने वाले पाँच साल रिश्वत का नामोनिशान मिटा दिया जाए, तो इस अवधि में देश फिर से सोने की चिड़िया बन सकता है। भारत को किसी ने डुबोया है तो इसी रिश्वत ने, प्रलोभन ने।

साधकों को भी किसी ने लूटा है, तो वह रिश्वत ही है। एक झेन कहानी है, चीन या जापान की। पहाड़ी पर स्थित एक शंकाई मठ से संदेश आया कि वहाँ एक पुजारी की आवश्यकता है। तलहटी से किसी योग्य साधु को भेजा जाए। तलहटी वाले मठ से सूचना पहुँची, तो वहाँ के प्रभारी ने दस शिष्यों का चयन कर उन्हें ऊपर वाले मठ रवाना कर दिया। अन्य शिष्य आश्चर्यचकित थे कि एक साधु की मांग है और दस जनों को भेजा जा रहा है। एक शिष्य ने हिम्मत करके पूछ ही लिया, गुरुदेव! एक शिष्य के लिए बुलावा आया था, आपने दस शिष्य क्यों भेजे? गुरु मुस्कुरा दिए। बात आई-गई हो गई।

कुछ दिन बाद पहाड़ी वाले मठ से धन्यवाद आया कि आपने जिस एक शिष्य को भेजा था, वह पहुँच गया है। शिष्य फिर कौतूहल से भर उठे। एक शिष्य से रहा नहीं गया। उसने पूछ ही लिया, दस को भेजा, एक ही पहुँचा; शेष कहाँ रह गए? गुरु ने खुलासा किया, राह बड़ी दुर्गम थी। दो-तीन तो बीच के पहाड़ी स्थित राजभवनों में



पुरोहित बन गए। कुछ राह में मिली रमणियों के पाश में फँस गए। दो-तीन को किसी सेठ ने प्रलोभन दे दिया, वे वहाँ रह गए। ऊपर तो एक ही शिष्य पहुँचा।

इसलिए कहा है, साधना का मार्ग बड़ा कठिन है। इस मार्ग पर दस रवाना होते हैं तो मंजिल तक कोई एक-आध ही पहुँच पाता है। शेष प्रलोभन का शिकार हो जाया करते हैं। हर कोई ऊपर पहुँच जाएगा, तो वैकुण्ठ भी न रहेगा। वहाँ भी सर्राफा बाजार लग जाएगा, अर्थात् यहाँ पहुँचता कोई कोई ही है। यमराज ने नचिकेता को प्रलोभन दिया – जैसी भी इच्छा हो, पूरी करने का वर देता हूँ। मान जाओ। दुनिया में अनेक प्रकार के लोग होते हैं। ढेर सारे लोग होते हैं, जिनके पास इच्छाएँ होती हैं लेकिन कुछ ऐसे भी होते हैं जिनके पास इच्छा-शक्ति होती है। इच्छाएँ होना कमजोरी है और इच्छा-शक्ति होना इंसान की महान् सफलता और उपलब्धि है। इच्छाएँ तो आकाश की तरह अनन्त कही गई हैं। इनका कोई अन्त नहीं है। इच्छाएँ सागर के समान अथाह हैं। आसमान का अन्त नहीं है और सागर की कोई थाह नहीं है; उसी तरह इच्छाएँ हैं।

इच्छाओं का अंकगणित ही ऐसा है कि ज्यों-ज्यों हम पाते जाते हैं, ज्यादा पाने की तृष्णा पैदा होती जाती है। अगर कोई इंसान सजगतापूर्वक, सचेतनापूर्वक, सतर्कतापूर्वक और बोधपूर्वक अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर रहा है, तो एक दिन वह अपनी बेहोशी और अज्ञान के रास्ते से बाहर निकल आएगा। जरा सोचो, कौन व्यक्ति है जिसने एक मुकाम हासिल करने के बाद विश्राम कर लिया हो। बड़े-से-बड़े राजनेता ने एक पद पाने के बाद दूसरे पद के लिए भागदौड़ शुरू कर दी। शांति नहीं है क्योंकि इंसान अपनी इच्छाओं पर अंकुश नहीं लगा पाता। राजा भर्तृहरि ने खूब राज किया, भोग भी भोगे लेकिन एक समय आया, जब वे राजा न रहे, राजर्षि हो गए। फिल्मी सितारों को देखो। अमिताभ ने इतनी फिल्में बना लीं, खूब पैसे कमा लिए, लेकिन अब भी विश्राम नहीं है। अम्बानी बंधुओं ने अरबों रुपए कमाए होंगे लेकिन भूख शांत नहीं होती। अभी इच्छा है, और कंपनी खोलूँ।

स्तन टाटा ने एक आदर्श उदाहरण पेश किया है। उन्होंने पिछले वर्ष कहा था, व्यापार करने का यह मेरा अंतिम वर्ष है। फिर मैं संन्यास ले लूँगा। मैं इसे कहुँगा जीवन की बुनियादी समझ। व्यापार जरूर करना चाहिए। समृद्धि भी हासिल करनी चाहिए लेकिन एक सीमा पर पहुँच कर अपने परिग्रह पर अंकुश लगा लेना चाहिए। संग्राहक बुद्धि पर अंकुश लग जाना चाहिए। बड़े-बड़े संत मठ और आश्रम बनाते हैं। बनाते हैं इसमें कोई आपत्ति नहीं है; पर बनाते ही चले जाते हैं, यह ठीक नहीं है। आखिर कहीं तो सीमा हो। गृहस्थ व्यक्ति से कहा जाता है कि गृहस्थ आश्रम के बाद वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम की तरफ बढ़ो। अच्छा होगा, जो संत लोग समाज कल्याण में बहुत ज्यादा उलझ चुके हैं, वे समाज कल्याण को भी घर-गृहस्थी का ही जंजाल समझें। एक उम्र आने पर सारी सरपच्चियाँ छोड़ देनी चाहिए। जैनों में एक आचार्य हुए हैं – श्री

तुलसी। समाज ने उन्हें आचार्य-पद दिया। इस पद को उन्होंने वर्षों तक जीया। एक दिन ऐसा आया कि वे पद-मुक्त हो गए। अपना दायित्व किसी और को सौंपा। वे मुक्ति की तरफ बढ़ गए। ऐसे ही सनातन धर्म में स्वामी सत्यमित्रानंद गिरी जी हैं, जिन्होंने हरिद्वार में भारत माता मंदिर बनाया है। बड़े प्रसिद्ध संत हैं। पहले वे शंकराचार्य थे। हिन्दू धर्म में इससे बड़ा और कोई पद नहीं होता। इस पद पर वे काफ़ी साल तक रहे। एक समय आया जब उन्हें यह पद परिग्रह लगा होगा, भारभूत लगा होगा, सो छोड़ दिया। पहले शंकराचार्य लिखते थे, अब स्वामी लिखते हैं। मैं भी पहले पदों का उपयोग करता था। पद बढ़ते ही गए। एक दिन पदों की बोझिलता का एहसास हुआ। पहले इनकी सार्थकता समझ में आई, लेकिन बाद में इनकी व्यर्थता। सो एक दिन सारे पदों को छोड़ दिया। पदों के साथ व्यामोह समाया रहता है। दूसरा कोई हमारे साथ पद का उपयोग न करे तो आकुलता-व्याकुलता रहती है। क्यों न जड़ को ही काट दिया जाए ?

सनातन धर्म में एक बहुत अच्छे संत हुए हैं - स्वामी रामसुखदास जी। ऐसे विरले संत कम होते हैं। उन्होंने जीवन में कभी कोई पद लिया ही नहीं। किसी को अपना शिष्य बनाया ही नहीं। अपने नाम से कोई आश्रम, गौशाला, विद्यालय, अस्पताल कुछ भी नहीं बनाया। मरने से पहले यह वसियत लिख कर गए कि मरने के बाद भी उनके नाम पर कुछ भी न बनाया जाए। जो भी बनाया जाए, सब ठाकुरजी के नाम पर हो। यह त्याग है। कुछ लोग पहले कर देते हैं, कुछ लोग बाद में करते हैं, कुछ लोग कर ही नहीं पाते हैं। सब अपनी-अपनी समझ का परिणाम है। जो तृप्त हो गया वह मुक्त हो गया; जो अतृप्त है, वह उलझा हुआ है। दुनिया के मायाजाल में फँसा हुआ है। फिर चाहे वह संसारी हो या संन्यासी।

हम आने वाली पीढ़ियों के लिए रास्ते खोलें। आखिर हम अपनी इच्छाओं का बोझ कब तक ढोते रहेंगे! एक खास मुकाम हासिल न हो पाए, तब तक लगे रहें; फिर लौट चलें भीतर की ओर। यशस्वी जीवन स्थापित कर लिया, फिर निकल पड़िए प्रभु के मार्ग पर। ऐसा कर लिया, तो मान लीजिएगा, आपने भारत के सच्चे स्वरूप को अपने भीतर जी लिया; अन्यथा भारत में पैदा तो हुए लेकिन उसे जिया नहीं।

तो यह प्रलोभन का रास्ता है जिस पर अधिकांश फिसल जाया करते हैं। तृष्णा, इच्छा उलझाए रखती है। किसी इंसान की इच्छा होती है कि मैं इस लोक में पूरी प्रखरता प्राप्त करूँ और परलोक में भी मुझे किसी इन्द्र का सिंहासन मिल जाए। कुछ लोग जीने की इच्छा करते हैं, तो कुछ लोग मरने की इच्छा करते हैं। कुछ लोग लाभ की इच्छा करते हैं, तो कुछ यश-प्राप्ति की। कुछ विवाह कर आनन्द लेना चाहते हैं, लेकिन वहाँ भी नहीं रुकते। एक मिल गई, तो दूसरी चाहिए। दूसरी मिल गई तो तीसरी की चाह पैदा हो जाती है।

विश्व विजेता बनने का सपना लेकर निकले सिकंदर को एक बुढ़िया ने कहा, तुम दुनिया को जीतने निकले हो, तो अमुक गुफा में रहने वाले फ़क़ीर से ज़रूर मिलना। सिकंदर उस फ़क़ीर से मिला और उन्हें बताने लगा, मैं पृथ्वी ग्रह को जीतने निकला हूँ। फ़क़ीर यह सुनकर हँसा, तुम पृथ्वी ग्रह को जीतने निकले हो, तब तो तुमने खूब धन-धान्य भी पाया होगा। सिकंदर ने कहा, हाँ, मैंने खूब आभूषण, अनाज एकत्र किया है। फ़क़ीर ने कहा, ऐसा करो यह एक खोपड़ी है, इसे जौ के दानों से भर दो। सिकंदर अपना तमाम अनाज उस खोपड़ी में उँडेल बैठा, लेकिन खोपड़ी भरी ही नहीं। सिकंदर हैरान रह गया। फ़क़ीर ने बताया कि इस खोपड़ी का नाम इच्छा है, यह कभी नहीं भर सकती।

एक आदमी ने बहुत से लोगों की किडनियाँ निकालीं और उन्हें बेचकर करोड़ों रुपए कमाए। बुरे काम का नतीजा भी बुरा होना ही था। उसके यहाँ छापा पड़ा और वह पकड़ा गया। आदमी की नीयत तो देखिए, वहाँ भी अधिकारियों को रिश्वत देकर छूटने का प्रयास करने लगा।

यमराज ने भी जब नचिकेता से कहा कि अपनी इच्छाओं की पूर्ति का वरदान माँग ले, तो नचिकेता ने इनकार कर दिया। मृत्युदेव पृथ्वी पर आते होंगे, तो लोग उनसे कहते होंगे, यमदेव आप चाहो तो कुछ और ले जाओ, लेकिन हमारे प्राणों का हरण मत करो। इंसान और इसलिए जीना चाहता है क्योंकि अभी उसका मन नहीं भरा। अरे, आज भी वही कर रहे हो जो कल किया था और कल भी वही करना है, तो इसका अंत कहाँ होगा? रोजाना एक जैसा ही जीवन जीना है, तो कब तक ऐसा करोगे, मन तो कभी भरेगा ही नहीं।

कम जिओ या ज़्यादा, कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। बेवकूफ़ लोग तो जीवन जीते चले जाते हैं, लेकिन प्रज्ञाशील लोग अपने निर्वाण का रास्ता तलाशते हैं। वे मृत्यु पर विजय पाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं ताकि बार-बार जन्म और मृत्यु के चक्कर से छुटकारा मिल जाए; अन्यथा हर जन्म में वही काम करना है, फिर मर जाना है और नया जन्म ले लेना है। यही सिलसिला चलता रहेगा। हमारे भीतर छिपा यह जीवन जीने का पागलपन नहीं तो और क्या है? समझदार लोग अपने जीवन को धन्य बना लेते हैं। मृत्यु के द्वार पर पहुँच कर वे अपनी मुक्ति का प्रबंध कर लेते हैं।

एक सद्गुरु नदी के किनारे बैठे थे। शिष्यों से वार्तालाप चल रहा था। यकायक गुरु हँस पड़े। एक शिष्य ने गुरु की हँसी का कारण जानना चाहा। गुरु ने उन्हें बताया कि इस नदी के दूसरे किनारे पर एक सौदागर अपने काफ़िले के साथ ठहरा हुआ है। इस समय वह नदी में नहा रहा है और उसके मन में विचार उठ रहे हैं कि आज मेरे पास दो गाड़ियों का काफ़िला है। कल चार गाड़ियाँ हो जाएँगी। फिर आठ और सोलह। मैं

किसी नगर का सेठ हो जाऊँगा। एक दिन मैं उस नगर का राजा बन सकता हूँ। फिर तो मैं पड़ोसी राज्य पर आक्रमण करके उसका राज्य भी जीत लूँगा। एक-एक कर बहुत से राज्य जीत लूँगा। गुरु ने शिष्यों से कहा, मुझे हँसी इसलिए आ रही है क्योंकि बड़े-बड़े स्वप्न देखने वाले इस सौदागर की सातवें दिन मृत्यु होने वाली है। मैं चाहता हूँ, मेरा कोई शिष्य वहाँ जाकर उसे बताए कि सात दिन बाद वह मरने वाला है। हो सकता है उसकी आँख खुल जाए और वह इन सात दिनों में अपना जीवन धन्य कर ले। तब उसकी मृत्यु महोत्सव हो सकती है।

एक शिष्य गया और सौदागर को बताया। वह तो अपनी मौत के बारे में सुनते ही एक बार तो बेहोश हो गया। मौत की खबर सुनते ही बड़े-से-बड़ा पराक्रमी भी डर जाएगा। सौदागर को गुरु के पास लाए, उसे होश दिलाया गया। वह तो विक्षिप्त-सा नजर आने लगा। गुरु से कहने लगा, मुझे बचाइए। गुरु ने कहा, यह सब छोड़; तेरी नहीं तेरे सपनों की मृत्यु होने वाली है। तू तो अपना जीवन धन्य कर। राजा परीक्षित को श्राप मिला था कि अमुक दिन आपकी मृत्यु हो जाएगी। उन्होंने किसी से उपाय पूछा तो बताया गया कि सात दिन तक भागवत सुनो। महापुरुषों के जीवन-चरित्र का श्रवण करो। अंत गति सुधर जाएगी। मति शुभ होगी, तो गति भी सुधर जाएगी। जब तक जीओ तब तक सद्बुद्धि बनी रहे और मरो तो सद्गति हो जाए। बस, इतनी प्रार्थना काफ़ी है।

गुरु ने सौदागर से कहा, अपने आप से मुलाकात करो, स्वयं में स्थित हो जाओ, अपनी बुद्धि रूपी गुफा में प्रवेश करो। तमन्नाएँ त्याग दो, भोग तो खूब कर लिया, अब अपने आप से मुलाकात करने का समय है। जो कुछ करो, ध्यानपूर्वक करो, सचेतनतापूर्वक करो। अपने आप में प्रवेश करो, भले ही मन उचट रहा हो, अनावश्यक तमन्नाएँ उठ रही हों, इन तमन्नाओं को शांत करते चले जाओ। यह सोचो कि मैं अपने अंतर्मन को शांत कर रहा हूँ, इसे आनन्दमय बना रहा हूँ। निर्वाण शांतम् अवस्था को प्राप्त करो ताकि जिस क्षण मृत्यु आ जाए, मन में एक ही भाव हो कि मैं मुक्त हो रहा हूँ। मुक्ति के भाव प्रगाढ़ करते चले जाओ। तब मृत्यु केवल काया की होगी, तुम पूरी तरह मुक्त हो जाओगे।

मुक्ति की ज़रूरत क्यों है? ताकि बार-बार जन्मना और मरना न पड़े। इस दलदल से बाहर निकलें। जन्म-जन्मांतर के संस्कारों को यहीं क्षीण करके जाएँ। बैटरी होगी, तो टार्च तो जलेगी ही। काया के प्रति आसक्ति होगी, तो भोग भी सताएँगे, क्रोध भी पैदा होगा। कोई भी अपवाद नहीं है। प्रकृति की सारी संतानों में क्रोध होता है, काम होता है, भोग की इच्छा जगती है। किसी का भी अपमान हो, तो उसे क्रोध आएगा ही। प्राणी मात्र की यही प्रकृति है। कोई भी अपनी उपेक्षा बर्दाश्त नहीं कर पाता। महान्

पुरुष भी अपवाद नहीं रहे। प्रकृति सबको पैदा करती है, तो कोई इनसे मुक्त नहीं हो सकता। पैदा होने के बाद मुक्ति का रास्ता ढूँढ़ा जा सकता है। धर्म-आराधना का, साधना का यही परिणाम है।

हम सभी एक सहयात्री के रूप में पृथ्वी पर आए हैं। मेरे साथ आप भी चल रहे हैं। सौ लोग एक ही रास्ते पर चल रहे हों, तो आगे-पीछे का भेद कैसे किया जा सकता है। जो लोग महापथ पर चल रहे होते हैं, वे लोग मंजिल की तरफ ही चल रहे होते हैं। हम यही कह सकते हैं कि यहाँ सब सहयात्री हैं। मैं थक जाऊँ, तो आप हाथ थाम लेना; आप थक जाओगे तो मैं आपको थाम लूँगा। इस तरह एक-दूसरे की मदद करते हुए मंजिल पा ही लेंगे।

एक छोटे बच्चे की अंगुली थाम कर बड़े उसे सहारा देते हैं। यही बच्चा बड़ा होने पर अपने बुजुर्ग माता-पिता को सहारा देता है। हम सब एक-दूसरे के सहयोगी हैं। सहयोगी का भाव इसीलिए रखें, ताकि हमारे भीतर अहंकार पैदा न होने पाए। अहंकार बहुत खतरनाक है। मनुष्य के रूप में पैदा हुए हैं, तो थोड़ा-बहुत अहंकार तो हमारे भीतर होता ही है। अपनी समझ का उपयोग करते हुए हमने अपने अहम् भाव को बदला है, लेकिन अभी कषाय की काली छाया अपने साथ है।

माना कि हम लोग प्रेम-पथ के राही हो गए हैं, चींटी को भी प्रेम से देख रहे हैं लेकिन अपमान का सामना करने पर गुस्सा आ ही जाता है। महान बनने में वर्षों लगते हैं। केवल झोली पकड़ने से कोई संत या महान नहीं बन जाया करता। व्यायामशाला में जाकर एक दिन व्यायाम करने से कोई पहलवान नहीं बन जाता। धीरे-धीरे बात बनने लगती है। हमारी जिंदगी वीणा के तारों की तरह है। इन पर अंगुली साधनी आना चाहिए, ताकि हमारा जीवन अनुपम बन सके। मरना तो एक दिन है ही, प्रयत्न तो यह करना है कि इसे सार्थक कैसे बनाया जाए? जीवन अगर सार्थक बना लिया, तो समझो मृत्यु भी सार्थक हो गई। जीवन अगर व्यर्थ है, तो मृत्यु भी व्यर्थ है।

मैं फिर से दोहराना चाहता हूँ कि मरना मना है। ईश्वर ने, प्रकृति ने हमें जीवन पुरस्कार के रूप में दिया है। पहले हम जीवन को सार्थक करेंगे, फिर मृत्यु अपने आप सार्थक हो जाएगी। मृत्यु तो जीवन का उपसंहार है। जैसा उपन्यास होगा, वैसा ही उसका उपसंहार होगा। जैसा श्रेष्ठ जीवन हम जीएँगे, हमारी मृत्यु उतनी ही श्रेष्ठ होगी। मरना भी एक कला है, परन्तु मरना तभी आएगा, जब हमें जीना आ जाएगा। इसलिए जीना सीखें, ताकि मरना सीख सकें। मैं मरना सिखाता हूँ; पर यह तभी संभव है जब आप पहले जीना सीख जाएँ।



# 10

## यमराज के प्रलोभन

दुनिया का कोई भी सिद्ध महापुरुष किसी भी व्यक्ति को अपने जीवन का रहस्य प्रदान करता है तो पहले उस व्यक्ति की परीक्षा लेना मुनासिब समझता है। बिना परीक्षा लिये न तो कोई आचार्य अपने किसी विद्यार्थी को सफल घोषित करता है और न ही कोई सिद्ध पुरुष अपने योग्य शिष्य को जीवन की सिद्धियाँ प्रदान किया करता है।

इंसान के लिए ज़रूरी है कि वह जिस व्यक्ति को अपने जीवन का रहस्य बताना चाहता है, पहले उसकी पात्रता की परीक्षा अवश्य करे। बगैर पात्रता, कोई भी चीज़ प्रदान की जाएगी, तो वह वैसे ही व्यर्थ जाएगी जैसे कि कौओं को दिया गया ज्ञान व्यर्थ हो जाया करता है। मोतियों का ज्ञान यदि हंसों को दिया जाता है, तो कौओं को तो कचरे का ही ज्ञान दिया जा सकता है। वे उसी के योग्य होते हैं।

बगैर पात्रता न तो कोई ज्ञान प्राप्त कर सकता है और न ही किसी को ज्ञान दिया जा सकता है। यमराज ने नचिकेता की परीक्षा लेने के लिए यह कहा कि तू मुझसे मृत्यु के रहस्य के बारे में सवाल मत कर। तू चाहे तो मैं तुझे धरती की अकूत संपदा दे सकता हूँ। तीनों लोकों का साम्राज्य प्रदान कर सकता हूँ। इतना धन दे सकता हूँ कि जो कभी भी खत्म नहीं होगा। मैं तुझे रमणियाँ, देवांगनाएँ, सुन्दर पत्नियाँ दे सकता हूँ, लेकिन आत्म-ज्ञान का रहस्य, मृत्यु का रहस्य जानने की जिद न कर।

यमराज ने यह पता लगाने की कोशिश की कि आखिर यह व्यक्ति मृत्यु का रहस्य जानने का, आत्म-ज्ञान का रहस्य पाने का पात्र भी है या नहीं। यमराज के प्रलोभन भी उसी व्यवस्था का हिस्सा थे। यह कसौटी तो होनी ही चाहिए कि आखिर नचिकेता के भीतर मृत्यु का रहस्य जानने की कितनी प्यास है ?

पात्रता बिना किसी को कोई चीज़ नहीं मिलती। दुनिया में दो तरह के लोग होते हैं - एक भोगवादी, दूसरे आत्म-ज्ञानी। एक पराविद्या की रुचि वाले होते हैं, तो दूसरे

अपराविद्या के उपासक। अविद्या की रुचि वालों को तो भोग ही अच्छा लगता है, लेकिन जिन लोगों में आत्म-विद्या की जरा भी प्यास है, अभीप्सा है; वे लोग तो भोग की दहलीज पर क्रदम रखने के बावजूद अंततः भोगों को परास्त करेंगे तथा आत्म-विद्या को प्राप्त करना चाहेंगे।

यमराज ने नचिकेता को अपनी ओर से अनेक प्रलोभन दिए, लेकिन नचिकेता किसी भी प्रलोभन में नहीं आया। प्रलोभन राह से भटका दिया करते हैं। एक पुरानी कहानी है। पुराने ज़माने में एक ब्राह्मण था, जिसका नाम था कपिल। अपने गुरु के पास अध्ययन करता था। वह जिस व्यक्ति के यहाँ भोजन करने जाता था, उसकी एक सुन्दर पुत्री थी। समय का फेर, कपिल उस कन्या के प्रेम में पड़ गया। कन्या को भी उससे प्यार हो गया। कुछ दिन तो दोनों ने खुद पर नियंत्रण रखा, लेकिन जब पानी सिर से ऊपर चला गया तो एक दिन दोनों घर से भाग निकले। वे एक राज्य में जाकर अपनी पहचान छिपाकर रहने लगे। कपिल दिनभर मेहनत करता, लेकिन इतना नहीं कमा पाता कि दो जनों का पेट ठीक से भर सके। अभावों में दिन बीत रहे थे।

एक दिन कपिल से अपनी प्रिय पत्नी का उदास चेहरा न देखा गया। उस राज्य का राजा रोजाना सुबह सबसे पहले चेहरा दिखाने वाले ब्राह्मण को दो माशा सोना दिया करता था। कपिल ने राजा से मिलने का फैसला किया। उसे लगा कि रात को सोया ही रह गया, तो अलसुबह राजा के सामने नहीं पहुँच पाऊँगा। यह सोचकर वह आधी रात को ही घर से निकल पड़ा। रात में उसे राजमहल के आसपास घूमते देख सैनिकों ने चोर समझ कर उसे पकड़ लिया। सुबह उसे राजा के सामने पेश किया गया।

कपिल ने फैसला कि वह सब कुछ सच बता देगा, फिर चाहे जो भी हो। राजा को भी लगा कि यह कोई गरीब ब्राह्मण है, चोर नहीं हो सकता। राजा ने पूछा कि क्या मामला है? कपिल ने सारी कहानी सच बता दी कि महाराज, मैं गुरुकुल में अध्ययन करने गया, लेकिन वहाँ मुझे किसी से प्रेम हो गया और मैं उसे लेकर आपके राज्य में आ गया। यहाँ मेरा गुजारा नहीं चल रहा। पता चला कि आप सुबह सबसे पहले मिलने वाले को दो माशा सोना देते हैं। मैंने सोचा, कहीं सुबह देर न हो जाए, इसलिए रात को ही घर से निकल पड़ा था।

राजा उसकी सच्चाई जानकर बोला, 'माँगो, क्या माँगते हो? जो भी माँगोगे, मैं तुम्हें निराश नहीं करूँगा।' अब कपिल के मन में विचारों का मंथन होने लगा। जब राजा दे ही रहा है तो क्यों न दो माशा की बजाय दो तोला सोना माँग लूँ; पर नहीं, यह भी कम होगा। ऐसा करता हूँ, सौ अशर्कियाँ माँग लेता हूँ। नहीं, ये भी कम रहेंगी; ऐसा करता हूँ, एक हजार अशर्कियाँ माँग लूँ। इस तरह वह विचारों-ही-विचारों में अशर्कियों की

संख्या बढ़ाता रहा। फिर सोचने लगा, क्यों न राजा से उसका राज्य ही माँग लूँ, रोज़ाना की झंझट ही मिट जाएगी।

उसे चुप देखकर राजा ने पूछ लिया, 'किस सोच में पड़ गए ब्राह्मण? माँगो, क्या माँगते हो?' कपिल के विचारों ने फिर करवट बदली। वह कुछ माँगने ही वाला था कि मन ने उसे धिक्कारा, छिः कैसा ब्राह्मण है तू, एक राजा तुझे तेरी इच्छा से कुछ दे रहा है और तू उसका राज्य ही चाहने लगा है! कपिल को बोध हो गया। वह सोचने लगा, चाह को कोई अंत नहीं है। सब कुछ पा लिया जाए, तब भी तृप्ति नहीं होती। कपिल ने सोच लिया, अब कुछ नहीं चाहिए।

मनुष्य को ज्यों-ज्यों मिलता चला जाता है, उसकी भूख बढ़ती चली जाती है, लोभ बढ़ता चला जाता है। एक समय ऐसा आता है कि इंसान को सोने चांदी से बने कैलाश पर्वत मिल जाएँ, तब भी उसे तृप्ति नहीं होती। यमराज ने भी नचिकेता के उस मन को टटोलने का उपक्रम किया। उसे प्रलोभन दिए, लेकिन नचिकेता ज्ञानी था, उम्र भले ही कम थी। कुछ लोग कम उम्र में ही प्रबुद्ध हो जाया करते हैं और कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो बूढ़े होने के बाद भी बुद्ध ही रह जाया करते हैं। यह तो व्यक्ति पर है कि वह अपना कितना विकास कर पाता है।

कुछ लोग ही ऐसे होते हैं जो प्रह्लाद, कार्तिकेय, ध्रुव, अतिमुक्त या नचिकेता बनते हैं। कम उम्र में ही ये लोग ज्ञानी हो जाते हैं लेकिन ययाति जैसे लोग सोचते हैं, थोड़ा और जी लूँ, अभी मेरे सपने अधूरे हैं, अभी मेरी तमन्नाएँ पूरी नहीं हुई। नचिकेता बाल-वय में ही इतना ज्ञानी हो गया कि उसे मृत्यु से साक्षात्कार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

दुनिया में दो तरह के लोग होते हैं - एक तो वे जो ठोकर लगने पर संभल जाते हैं और दूसरे वे, जो दूसरों को ठोकर लगती देखकर सचेत हो जाते हैं। ठोकर खाकर जगना जीवन का संयास है। दूसरों को ठोकर खाते देख संभल जाना जीवन का आत्म-बोध है। जो हुआ, वही तो होना था; अब भी मौका है, संभल चलो। क्या हुआ जो भटके हो। अब भी अवसर है, लौट चलो। हम अब भी अपने जीवन के बोध की ओर लौट सकते हैं। अगर वही गधे की लातें खाने की इच्छा है, तो जन्म-जन्मान्तर लातें खाते रहेंगे और मुक्ति नहीं मिलेगी।

यह तो समय-समय का फ़र्क है, कोई गौपालक बन जाता है और कोई गौशाला का नौकर। कोई व्यक्ति गौतम बुद्ध बन जाता है और कोई बुद्ध ही बना रह जाता है। दोनों तरह के जीवन में संभावनाएँ रहती हैं। यमराज जब संवाद कर रहे हैं तो सामने एक बालक है। वे देखना चाहते हैं कि उसके भीतर भोगों के प्रति चाह है या नहीं। वह भोगों



का भूखा है, तो रमणियाँ दे सकता हूँ। धन का भूखा है, तो उसे अट्टालिकाएँ दे देता हूँ। आखिर यमराज के सामने पहुँच कर कोई खाली हाथ तो लौटेगा नहीं। उसे तो तृप्त होकर ही जाना चाहिए। जैसी जिसकी चाह, यमराज पूरी करने को तत्पर। नचिकेता के मन को टटोल रहे हैं यमराज।

यमराज ने अनेक प्रलोभन दिए, लेकिन नचिकेता माना ही नहीं। वह तो सिर्फ और सिर्फ मृत्यु का रहस्य जानने को उत्सुक था। किसी सदगृहस्थ के सामने भगवान प्रकट हो जाएँ और उससे कहे कि क्या माँगते हो, तो वह क्या माँगेगा! यही कि फैक्ट्री में मंदी चल रही है, तेजी ला दो। पत्नी कहना नहीं मानती, इसका मन बदल दो। लड़के के लिए लड़की नहीं मिल रही, कोई गोटी फिट कर दो। बस गोटियाँ ही फिट करने में लगा रहेगा वह।

ऐसे लोग कम ही होते हैं जो गुरुजनों के पास जाकर बैठें और आत्म-ज्ञान की शिक्षा पाना चाहें। आत्म-ज्ञान की चाहत विरले लोगों में होती है। हर किसी की चाहत सांसारिक ज्ञान और सांसारिक उपलब्धियों की होती है। लोग संतों के पास आध्यात्मिक ज्ञान के लिए कम जाते हैं। कोई तो हाथ दिखाने जाता है, कोई टोना-टोटका करवाने जाता है, तो कोई ग्रह-गोचर की दशा सुधारने जाता है। जो टोटकेबाज होगा, वह टोटका बताएगा; पर जो आत्म-ज्ञानी होगा, वह आत्म-ज्ञान के द्वार खोलेगा।

किसी समय मेरे भीतर भी आत्म-ज्ञान का रहस्य जानने की अभीप्सा जगी थी। इसके लिए मैंने अनेक संतों का द्वार खटखटाया। ठेठ हिमालय तक गया। गंगोत्री की गुफाओं में रहने वाले ऋषियों के पास गया। जिन्हें कुछ पता है, वे मौन हैं। जिन्हें पता नहीं है, वे ठगने-ठगाने का काम कर रहे हैं। क्षमा करें मुझे यह कहने के लिए कि चाहे संत हों या संसारी, सर्वत्र पैसा हावी हो गया है। संतों से कुछ लेने जाओ तो वे देते बाद में हैं, पहले खुद लेते हैं। क्या ज़माना आ गया है? संत लोग गृहस्थियों से तो कहते हैं छोड़ो, और छोड़कर हमारे झोले में डाल दो। संत संत रहे, तो संत का दर्शन भी पापनाशक होता है। संत संसारी हो जाए, तो खुद तो डूबता ही है, औरों को भी ले डूबता है। संसारी तो पूरी तरह संसारी हो गए हैं, लेकिन संन्यासी भी संसारियों के मोहजाल में फँस कर आधे संसारी हो गए हैं। अब उनके पास अध्यात्म कम हो गया है। संसारी के पास तो अध्यात्म था ही नहीं।

संन्यास लेना सौभाग्य की बात है। कपड़े बदलने से कोई संन्यास नहीं होता। शेर की खाल ओढ़ लेने मात्र से कोई गधा शेर नहीं हो जाता। संन्यास त्याग का नाम है, समर्पण का नाम है, प्रभु के अलावा सब कुछ छोड़ देने का मार्ग है। संन्यास मैंने भी लिया है, पर मैं बता देना चाहता हूँ कि जीवन में सच्चा संन्यास बगैर भगवत-कृपा के

नहीं हो सकता। फरीद जैसी फ़कीराई किसी-किसी में आती है। कबीर जैसी साधुक्कड़ी किसी-किसी में होती है। आनंदघन जैसा आनंद किसी-किसी में साकार होता है। रैदास जैसा रमता जोगी कोई-कोई होता है। मैं संतों की बहुत इज़्जत करता हूँ। जो लोग बाहर से संत बने हैं, काश वे भीतर से भी संत बन जाएँ। भोग बहुत हो गया। अब थोड़ा योग हो जाए। भोग की भावना और योग की प्रार्थना - दोनों एक-दूसरे के विरुद्ध हैं। कोई जागे तो सवेरा हो।

अगर किसी की रुचि भोग की है, तो पहले उसकी पूर्ति कर लें। वहाँ से तृप्त हो जाएँ। लगे कि बस, बहुत हो गया, अब कल्याण चाहिए, तब ज्ञान की बात करें। भूखा आदमी महाराज के पास जाएगा, तो क्या करेगा? पहले तो वह लड्डू खाना चाहेगा। महाराज बन जाएगा, तो भी बिदाम की कतलियाँ उसकी आँखों के सामने नृत्य करेंगी। ज़मीन, आश्रम, धन के लालच में पड़ जाएगा। कोई तृप्त आदमी संन्यास लेगा, तो त्यागपूर्ण जीवन की मिसाल बन जाएगा; अन्यथा तृप्ति नहीं हो पाएगी।

ऐसा हुआ कि एक आदमी ने विज्ञापन दिया कि पत्नी चाहिए। अगले सप्ताह दो सौ पत्र आ गए। वह प्रसन्न हुआ, लेकिन ज्यों-ज्यों पत्रों को खोलता गया, ठहाके लगाता गया। सभी पत्रों में एक ही बात लिखी थी - हमारे पास पत्नी है, तुम्हे चाहिए तो तुम ले जाओ। हम तो उससे तृप्त हो गए हैं। नहीं तो वही बात, विवाह होता है, तब विदाई के समय लड़की रोती है, लेकिन बाद में लड़के की बारी आ जाती है। एक आदमी ने किसी से पूछ लिया, तुम्हें अक्सर परेशान देखता हूँ। तुम्हारी पत्नी गालियाँ निकालती रहती है, तुमने क्या सोच कर शादी की थी? उसने जवाब दिया, सोचता तो शादी थोड़े ही करता। पहले सोच लेता, तो आज ये दिन न देखने पड़ते।

यह दुनिया है। नहीं है तो पति चाहिए, पत्नी चाहिए; मिल गए, तो अब छुटकारा चाहिए। ये दुनिया के रंग हैं। जिन लोगों के भीतर तृष्णा रहती है, वे जीवनभर गधे की लातें खाते रहते हैं लेकिन जो लोग जीवन की समझ प्राप्त कर लेते हैं, वे भोग के बाद भी खुद को होश में रखते हैं। उनका बोध और गहरा होता चला जाता है। वे अपने भीतर अनासक्ति के फूल खिला लेते हैं। निर्लिप्तता, निर्लोभ, निस्पृहता उनके भीतर प्रकट होने लगती है। वे राजचन्द्र बन जाते हैं। यहाँ तो जो जीता, वही सिकंदर कहलाता है, शेष सभी हारे हुए हैं।

भले ही कोई किसी क्षेत्र में जीत गया हो, लेकिन काम-क्रोध-मोह-लोभ से हर कोई हारा हुआ है। हम सब अपनी-अपनी तृष्णा से पागल हैं। एक स्त्री की तृष्णा है, जो समाप्त ही नहीं होती। हालत यह है कि लड़कियों की कमी होती जा रही है। लोग दहेज देकर लड़कियाँ लाने लगे हैं। एक महिला ने बताया, उसने अपने बेटे के लिए बहू

खरीदी। बीस लाख रुपए लड़की वालों को दिए, तब कहीं जाकर शादी हो पाई। पैसे देकर शादी की और उस शरीर की चाह समाप्त नहीं हो रही। चाट-चाट कर भी कितना चाटोगे? जिन लोगों के भीतर भोगों की इच्छा होती है, उन्हें दस लाख रुपए देने पड़ें, तब भी वे तैयार रहते हैं। पर जिनके भीतर मोक्ष की मुमुक्षा जग जाया करती है, वे किसी महावीर की तरह, किसी बुद्ध की तरह राज-पाट, पत्नी तक को छोड़कर निकल जाया करते हैं। यह जीवन के प्रति अपनी-अपनी सोच और समझ का परिणाम है।

यमराज ने अपनी ओर से नचिकेता को प्रलोभन दिए, लेकिन वह तैयार नहीं हुआ। नचिकेता ने यमराज को जो जवाब दिए, वे अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। नचिकेता पूर्व जन्म का कोई साधक रहा होगा, जिसने मुमुक्षु की तरह जवाब दिए। ये जवाब उन लोगों के लिए प्रेरणादायी हैं, जो मुमुक्षु की राह पर कदम बढ़ा रहे हैं। ये जवाब प्रेरणा के प्रदीप के समान हैं। एक प्रकाशदीप के समान हैं, ज्योतिपुंज हैं।

नचिकेता ने क्या जवाब दिया, आइए, हम भी जानें। नचिकेता कहते हैं, 'हे यमराज! ये क्षणभंगुर भोग मनुष्य की संपूर्ण इन्द्रियों के तेज को नष्ट कर देते हैं। यह सारा जीवन भी अल्प ही है। आपके वाहन और नाच-गान आपके पास ही रहें। मुझे नहीं चाहिए।'

नचिकेता ने यह जवाब क्यों दिया, आइए, जरा इसे समझें। यम यानी मृत्यु के देव। साक्षात् मृत्यु। यमदूतों के अधिपति। यमराज ने नचिकेता को भोगों की प्राप्ति का प्रलोभन दिया। हे नचिकेता! मैं तुम्हें देवलोक की रमणियाँ उपलब्ध करवा देता हूँ। तब भी नचिकेता नहीं माने। नचिकेता ने यह जवाब क्यों दिया। संभवतः उन्हें अपने पूर्व जन्म का कोई जातीय घटनाक्रम स्मरण रहा हो जिसके चलते ये शब्द निकल कर आए कि भोग मनुष्य की इन्द्रियों के तेज को नष्ट कर देते हैं।

दुनिया में दो शब्द तो सुने जाते हैं - योग और भोग। लेकिन एक तीसरा शब्द भी है - रोग। भोग में उलझोगे, तो रोग से मुलाकात हो ही जाएगी। भोग में रोग के नए-नए द्वार खुलते चले जाएँगे। भोग को भी समझ कर भोगना चाहिए। भोग हैं ही इसलिए कि उनका भोग किया जाए। लेकिन कितना, इसकी कोई एक सीमा तो तय करनी ही पड़ेगी। ऐसा कर पाए, तो मनुष्य धीरे-धीरे भोगों से उपरत होता चला जाएगा। जैसे कमल कीचड़ में उगता है, लेकिन धीरे-धीरे उसकी पंखुड़ियाँ कीचड़ से उपरत होती चली जाती हैं। ऐसे ही हमें भी भोगों के पार चलना है। भोग में उलझे, तो रोग और भोग से निकले तो योग।

भोग क्या है! कीचड़ ही तो है। नर और मादा जहाँ मिलते हैं, वह क्या है? कीचड़ का ही तो स्थान है। भले ही वहाँ से देह-सुख या इन्द्रिय-सुख मिल जाता है, लेकिन

अंततः तो वह कीचड़ का स्थान ही है। उसे पवित्र कैसे कह सकते हैं। किसी के जन्म को पवित्र कार्य की उपमा कैसे दे सकते हैं? जन्म तो खुद ही अपवित्र स्थान से हुआ है। हमारे शरीर में अगर भोगों की तरंग उठती है, तो यह भोगों की आनुवंशिकता ही है। इसलिए भोग को किसी भी तरह से पवित्र काम तो नहीं कहा जा सकता। भोग रोग का मूल है। भोग नैसर्गिक है। प्राणी मात्र के साथ जुड़ी हुई यह प्रकृति है। देवताओं के भी पत्नियाँ होती हैं। स्वर्ग लोक भी भोग भूमि ही है। वहाँ पर भी मेनकाएँ और उवर्शियाँ रहती हैं। वहाँ पर भी इंद्र और इंद्राणियाँ हैं। तीर्थकरों, बुद्धों और अवतारों ने भी कभी-न-कभी तो दांपत्य-जीवन का स्वाद चखा ही है। यहाँ भोग से कोई विरोध नहीं है। पशु-जानवर भी उपभोग करते हैं। पर साल में केवल एक-दो दफ़ा। साल में वे एक-दो दफ़ा करते हैं, तब भी वे पशु और जानवर कहलाते हैं। मनुष्य की पशुता का मत पूछो। मनुष्य पशु से कई-कई गुणा ज़्यादा उपभोग करता है। अगर यह बात सच है तो मनुष्य संगीन पशु है। पशु साल में एक-दो दफ़ा करता है इसलिए पशु कहलाता है। शायद मनुष्य वह होगा, जो जीवन में एक-दो-चार दफ़ा करता हो। नचिकेता तो संगीन साधक आत्मा है। उसका भोगों से क्या वास्ता? यमराज ने नचिकेता को आम आदमी की तरह समझा होगा। सो ज्ञांसे में फ़ँसाना चाहा। समझा होगा - यह भी आम आदमी की तरह बेईमान ही होगा, लोभी-लालची ही होगा। पर वह नचिकेता था। वह प्रलोभनों से नाचने वाला नहीं था। नचिकेता तो वह कहलाता है, जो अपने भीतर की मस्ती में नाच करता है।

इसीलिए नचिकेता कहते हैं, भोगों से इंसान की तेजस्विता नष्ट होती है। योग का मतलब है मन को साधना, अंतर्मन को तपाना। भोगों के बारे में सुनकर कोई भी इनसे मुक्त नहीं हो पाता। ये तो स्थूलिभद्र जैसे लोग होते हैं, जो वेश्या के यहाँ जाकर भी निर्लिप्त रहते हैं। बाकी तो जो मनुष्य जन्मा है, वह शरीर की प्रकृति लेकर आया है। शरीर की प्रकृति स्वाभाविक तौर पर उदय हुआ ही करती है। ज्यों-ज्यों शरीर की प्रकृति, स्वभाव मनुष्य समझने लगेगा, उसे शरीर के प्रति विराग उत्पन्न होता चला जाएगा। विद्या के प्रति हमारा मोह जागा, तो अविद्या के प्रति विरक्ति होती चली जाएगी।

मनुष्य के शरीर में पाँच इन्द्रियाँ प्रमुख हैं। इनका उपयोग रूप को निहारने, खुशबू को सूँघने, स्वाद लेने, सुनने, स्पर्श करने में किया जाता है। हमें कोई चीज़ सुन्दर लगती है, तो हम उसे निहारते हैं। उसे देखने का सुख लेते हैं। सुन्दर स्त्री हमें अच्छी लगती है। अच्छा दृश्य हमारी आँखों को पसंद आता है। वातावरण में रहने वाली महक या किसी भी तरह की गंध को हम नाक से सूँघते हैं। कुछ भी खाते हैं, तो हमारी जिह्वा हमें उसका

स्वाद बताती है। इसी तरह स्पर्श का सुख लेते हैं। पाँचों इन्द्रियाँ एक-एक जीव की हत्या का कारण बनती हैं। पतंगा अपनी आँखों के सुख के कारण मारा जाता है। वह शमा को जलता देखता है और उस पर मंडराने लगता है। कुछ ही देर में उसका जीवन समाप्त हो जाता है। हरिण अपने कानों के सुख के कारण मारा जाता है। संगीत सुनकर वह उसकी ओर खिंचा चला जाता है और जाल में फँस जाता है। भँवरा नाक के कारण मारा जाता है। वह खुशबू की चाह में कमल की पंखुरी पर बैठता है और शाम को पंखुरियाँ उसे कैद कर लेती हैं। मछली अपनी जिह्वा के कारण मारी जाती है। काँटे में लगा आटा खाने की चाह में काँटे में फँस जाती है और किसी और का भोजन बन जाती है। हाथी शरीर के कारण मारा जाता है। शिकारी उसे शराब पिलाकर छोड़ देते हैं और एक स्थान पर छिपाकर बनाए गए गड्ढे के सामने हथिनी को खड़ा कर देते हैं। कामांध हाथी सिर्फ हथिनी को देखता है और उस गड्ढे में गिर कर जान से हाथ धो बैठता है।

जरा सोचो, पाँच जीवों को उनकी एक-एक इन्द्रिय के कारण जान गँवानी पड़ती है, तो मनुष्य के पास तो पाँच-पाँच इन्द्रियाँ हैं। इन्हीं इन्द्रियों के बारे में नचिकेता हमें बता रहे हैं कि भोगों से हमारी इन्द्रियों का तेज नष्ट हो जाता है। जो लोग उन्मुक्त भोग करते हैं, उनके पुण्य धीरे-धीरे कर समाप्त हो जाया करते हैं। ऐशो आराम से जीवन व्यतीत करने वालों के चेहरे पर प्रायः तेजस्विता दिखाई नहीं देती, लालिमा नहीं दिखती, ओज नहीं दिखता।

संत इसीलिए पूजे जाते हैं क्योंकि उनका तेज सुरक्षित रहता है। वे इन्द्रिय संयम-पथ के राही होते हैं। नचिकेता को बोध हो गया था कि ये भोग क्षणभंगुर हैं। सारा जीवन ही अल्प है। कब-किसकी हवा निकल पड़े, पता नहीं चलता। भले ही इंसान सात पीढ़ियों के सपने देखता है लेकिन भविष्य किसी ने नहीं देखा, नहीं जाना। भविष्य नहीं, वर्तमान ही महत्त्वपूर्ण होता है। जीवन कभी भी बिखर सकता है। इन्द्रधनुष कितने समय तक आकाश में रह सकता है? उसका जीवन अत्यंत ही अल्प होता है। कागज की नाव नदी में कितनी देर तैर सकती है? इसी तरह कमल पर ओस की बूँद, सागर में उठने वाली लहर, यह सब क्षणभंगुर जीवन की तरह ही अत्यंत अल्प जीवन लेकर आने वाले निमित्त हैं। जीवन अनित्य है और जीवन से जुड़ा शरीर मरणधर्मा।

शरीर अन्नधर्मा है। दो दिन खाना मत खाओ, सब टाँय-टाँय फिस्स। तपस्या करने के बाद भी अन्न तो चाहिए ही। किसी इंसान में एक गुण धर्म पैदा हो गया, तो तय है कि अन्य गुण धर्म भी उजागर होंगे ही। जैसा खाएँगे, वैसा ही प्रभाव भी होगा। बादाम खाओगे तो दिमाग की शक्ति बढ़ेगी, पर शरीर में उष्णता जागेगी; इसलिए शरीर को उष्णता-प्रधान होने से बचाएँ।

दांपत्य-जीवन उष्णता-रेचन का साधन है। इस पर संयम बरतें। इसके लिए मेवे का बेहिसाब उपयोग न करें। खाने की इच्छा ही है, तो पहले मेवे को रातभर पानी में भिगो दें। इससे उसकी उष्णता समाप्त हो जाएगी। खाओ, लेकिन उसकी तासीर कम कर दो। ज्यादा घी-तेल मत खाओ, शरीर में चिकनाहट बढ़ेगी। यह शरीर के लिए ही घातक हो जाएगी। तरी, मिर्च-मसाले वाला भोजन उष्णता जगाता है। जहाँ तक संभव हो, उष्णता-प्रधान भोजन मत करो। जैसी शरीर की प्रकृति हो, वैसा ही भोजन करना चाहिए।

कुछ लोगों को गुस्सा नहीं आता और कुछ मामूली बात पर ही भड़क उठते हैं। हर किसी की प्रकृति में कोई-न-कोई दोष जरूर होता है। हर व्यक्ति अपनी प्रकृति को समझे। नचिकेता कहते हैं, जीवन अल्प है, सबको मरना है। समझदार धन का अर्जन करता है, तो उचित तरीके से उसका विसर्जन भी करता है, लेकिन जीवन के राग-रंग में उलझे लोग जीवनभर कमाने में ही लगे रहते हैं। गरीब हो, तो खूब मेहनत करो, खूब कमाओ लेकिन एक समय आने पर उसकी सीमा तो तय होनी ही चाहिए। अब कई बंगले हैं, कारें हैं, बच्चे पाँवों पर खड़े हो गए हैं, तो अब यहाँ से निकल लो। मोह-माया कम करो। बुजुर्ग हो गए हो, अब प्रभु का भजन कब करोगे? धंधा जवान लोगों के लिए है। साठ साल के होते ही काम-धाम से संन्यास ले लो, खूब कमा लिया, अब अपनी गद्दी बच्चों को सौंप दो। साठ साल भी न कमा सके, तो अब क्या तीन की तरह कर लोगे। जीवन के पहले पच्चीस साल पढ़ने के लिए, दूसरे पच्चीस साल गृहस्थी के। अगले पच्चीस साल जीवन में रहकर जीवन से उपरत होने के लिए हैं। इसके बाद खुद को प्रभु भजन में व्यस्त कर लो, अब भज कलदारम् नहीं, भज गोविन्दम् की स्वर लहरियाँ सुनाई देनी चाहिए।

पैसा कमाने की एक उम्र होती है, उसके बाद संभल जाओ। जो होना था, वह हुआ। अब संभल चलो। अभी मरे नहीं हो, जीवन का संध्याकाल है, संभल जाओ। नहीं तो फिर जन्म लोगे, फिर मरोगे। यह तो अंतहीन सफर है। कुछ लोग समझदार होते हैं। वे समय रहते अपने लिए मुक्ति का रास्ता खोज लेते हैं। कुछ ऐसा नहीं कर पाते। जीवन में दो रास्ते हैं - गति और स्थिति। गति भी चलती रहे और खुद को किसी स्थिति में स्थितप्रज्ञ भी बना लो। यही जीवन जीने की कला है। संसार और संन्यास - दोनों का आनन्द लिया जाना चाहिए। केवल संन्यासी बन जाओगे, तो संसार का आकर्षण बार-बार अपनी ओर खींचता रहेगा। इसलिए संसार में भी रहकर देख लो। भोग भी कर लो, ताकि मन में न रह जाए। थोड़ा डांस भी कर लो, कुछ गोठियाँ भी फिट कर लो, लेकिन उचित समय पर लौट आओ।

जिस दिन संसार में प्रवेश करो, बोध रखो कि एक दिन वापस लौटना है। सोचो, मैं संसार-सागर में उतर रहा हूँ, इसे समझने के लिए, डूबने के लिए नहीं। डुबकी लगाओ, तो बोध रखना कि वापस लौटना है। जो बाहर निकल जाएगा, उसे बोध मिल गया। जो नहीं निकल सका, समझो मर गया। सबको मरना है, पर परिणाम सबके जुदा-जुदा होंगे। एक जीवन का परिणाम महावीर हो सकता है, बुद्ध हो सकता है तो दूसरे का स्टालिन या हिटलर भी हो सकता है। मीरा, कबीर, सूर सबने अपने-अपने परिणाम निकाले। किसी ने खुद को गाँधी बना लिया, तो कोई गोडसे ही बन पाया। प्रलोभन तो मिलेंगे, इनसे बचें कैसे - जिसने यह जान लिया, उसने जीवन धन्य कर लिया।

नचिकेता यमराज की ओर से दिए गए किसी प्रलोभन में नहीं आया। उसने यमराज से कहा, ये सब बचकानी बातें हैं। ये प्रलोभन किसी और को देना। मेरे साथ आपकी ये चालाकी नहीं चलेगी। मुझे नाच-गाने नहीं चाहिए, ये आपको ही मुबारक। मेरी तो आपसे एक ही प्रार्थना है, कृपया मुझे मृत्यु का रहस्य समझा दीजिए, आत्म-ज्ञान का रहस्य समझा दीजिए। यही तो असली धन है। अन्यथा धन से किसी को तृप्त नहीं किया जा सकता? सिकंदर दुनिया को जीतने निकला। वह ज्यों-ज्यों राज्यों को जीतता गया, उसकी चाह और बढ़ती गई, लेकिन अंत क्या हुआ, वह खाली हाथ ही गया। कोई मित्तल, कोई अंबानी, थोड़ा या ज़्यादा पाने के बाद भी तृप्त नहीं हो पाता। उसे और चाहिए, जबकि सत्य यह है कि कोई चीज़ साथ नहीं जाने वाली है।

लोग अपने बुढ़ापे की व्यवस्था करना चाहते हैं। ज़रूर करें, किसी पर आश्रित न रहें, लेकिन इतना भी न करें कि पैसे के पीछे पागल हो जाएँ, परमात्मा को भूल बैठें। इंसान पुण्य कमाने के लिए दान करता है। यहाँ तक तो ठीक है, लेकिन पहले तो वह पाप करने में लगा रहता है। फिर आँख खुलती है, तो भगवान को रिश्वत देना चाहता है। वह दिखाता है कि लीजिए भगवान, मैंने अमुक का भला कर दिया, ये मंदिर बनवा दिया। पहले पाप करो, लोगों का शोषण करो, फिर उसका प्रायश्चित्त करने के लिए दान करने निकल पड़ो। यह तो उलटी गाड़ी हो गई। कोशिश की जाए कि पाप की तरफ क्रम ही न बढ़ें। कमाया है, अच्छी बात है। अतिरिक्त है, उस धन का विसर्जन अच्छे कार्यों में करो। किसी का भला करो।

एक साधक को मैं जानता हूँ जिन्होंने जीवन को बड़े ही तरीके से जिया। उन्होंने खूब धन कमाया। खुद ने अपनी कमाई में से बचाए 51 लाख रुपए बैंक में 'फिक्स डिपॉजिट' करवा दिए। इकसठ साल के होते ही उन्होंने व्यवसाय बच्चों को सौंप दिया। अब उनके पास हर माह इक्यावन लाख का ब्याज आता है। वे अपनी पत्नी के साथ वर्ष भर तीर्थ स्थलों की यात्रा पर रहते हैं। जब जहाँ, जी चाहे, वे उसी तीर्थ में ठहर जाते हैं।

तीर्थाटन और देशाटन - दोनों साथ-साथ हो जाते हैं। जहाँ लगता है, चार पैसे लगाने हैं, बिना किसी को पूछे लगा देते हैं। इस तरह दान भी हो जाता है। मन को संतोष भी मिलता है। बच्चों से कुछ लेते नहीं, क्योंकि उनके खुद के पास ही इतना है कि कुछ माँगने की ज़रूरत नहीं पड़ती।

ये साधक हर वर्ष 31 मार्च को वर्षभर प्राप्त ब्याज का हिसाब कर लेते हैं। कुछ बच जाता है, तो उसे गौशालाओं को दान दे देते हैं। अगले अप्रैल से फिर नया खाता खुल जाता है। उन्होंने बैंक में वसीयत कर रखी है कि जब तक वे और उनकी पत्नी जीवित हैं, तब तक इस ब्याज का उपयोग वे करेंगे और जिस दिन दोनों की आँख बंद जाएगी, सारी राशि एक चेरिटेबल ट्रस्ट में चली जाएगी। यह ट्रस्ट दीन-दुखियों की सेवा करेगा। इसे कहते हैं, जीवन का प्रबंधन। खुद का काम भी हो गया। चाह भी ज्यादा न रही। आसक्ति से भी छूट गए।

ऐसा कर पाएँ, तो समझना जीवन को सार्थक किया अन्यथा केवल मुनियों के पास गए, उनसे प्रवचन भी सुना, लेकिन भीतर नहीं उतारा। जैसे गए थे, वैसे ही लौट आए। जो सुना, वहीं पांडाल में झटक आए। कोशिश करनी पड़ती है। दो क़दम बढ़ाने पड़ते हैं। परिणाम आज नहीं तो कल आएगा, परिणाम को आना ही पड़ेगा। पानी को एक स्थान पर रोककर उसे पूरे प्रवाह से छोड़ा जाए, तो बिजली बनाने का रास्ता खुल जाता है।

अपने हित के लिए हमें आगे बढ़ना चाहिए। जहाँ जीवन और संबंधों का आत्म-ज्ञान हो जाएँ, वहीं से लौटे चलें। तय कर लें कि शेष जीवन अब कैसे जीना है, कितने क़दम संसार के लिए और कितने क़दम भगवान के लिए चलने हैं! इस तरह का मूल्यांकन करने वाले ही नचिकेता बन सकते हैं। जो ऐसा नहीं कर पाते, वे ययाति बनकर रह जाते हैं। उनकी प्रज्ञा का दीप बुझा हुआ ही रहता है।

हर पल अपने काम का लेखा-जोखा करते रहें। आज कितना अच्छा किया, कितना बुरा हो गया, किसका दिल दुखाया, किसके चेहरे पर मुस्कान लाए - इन सारी बातों पर विचार करना होगा। अन्यथा माँ-बाप चले गए, घर में उनके चित्र लग गए। एक दिन हम भी चले जाएँगे। हमारे बच्चे हमारे चित्र लगा लेंगे। सब यहीं छोड़कर जाना है; इसलिए जो हाथों से काम कर लिया, उसी का परिणाम मिलेगा। नचिकेता को बोध हो गया था; इसीलिए तो वह यमराज के किसी भी प्रलोभन में नहीं आया। वह तो बार-बार इतना ही कहता रहा, हे यमराज, आप तो मुझे मृत्यु का रहस्य समझा दीजिए। यमराज नचिकेता को किस तरह का ज्ञान देते हैं, इसे आने वाले पृष्ठों में देखेंगे।





# 11

## आत्मा में खिलाएँ अनाशक्ति के फूल

यमराज ने आत्म-ज्ञान की जिज्ञासा लेकर उनके सम्मुख उपस्थित हुए नचिकेता को अनेक प्रकार के प्रलोभन दिए, लेकिन नचिकेता किसी भी प्रलोभन में आने की बजाय यमराज से यही अनुरोध करता है, 'मैं तो आपसे आत्म-ज्ञान प्राप्ति की मुमुक्षा लेकर उपस्थित हुआ हूँ।' सामान्य तौर पर लोभ-प्रलोभन के निमित्त पाकर प्रत्येक व्यक्ति कर्तव्य-मार्ग से च्युत हो जाया करता है, लेकिन इंसान की सच्ची कसौटी तभी होती है, जब वह सामने अनुकूल निमित्त उपस्थित होने पर भी अपनी जिज्ञासाओं के समाधान के लिए कृत-संकल्प रहता है। उसे जो ज्ञान प्राप्त करना है, जो मंजिल पानी है, उसे पाकर ही रहता है। वह यही कहता है - 'मैं तो केवल आत्म-ज्ञान का उपासक हूँ, ज्ञान पाने का आकांक्षी हूँ।' जो ऐसा सोचता है, वही उस परम सत्ता तक पहुँच पाता है।

अनुकूल और प्रतिकूल निमित्त इंसान को प्रभावित करते हैं। अनुकूल निमित्त पाकर इंसान फिसल जाया करता है और प्रतिकूल निमित्त देखकर वह खिन्न हो जाया करता है। यह प्राणीमात्र की प्रकृति है। यमराज ने भी यही समझा कि नचिकेता ने पहले वर के रूप में पिता की प्रसन्नता चाही, पिता का कल्याण चाहा और दूसरे वर के रूप में अग्नि का रहस्य जानना चाहा, अग्नि रूप बुद्धि का रहस्य समझने का प्रयास किया। इसी तरह उसने जब तीसरे वर के रूप में मृत्यु का रहस्य, आत्म-ज्ञान का रहस्य जानना चाहा, तो यमराज ने सोचा कि यदि आत्म-ज्ञान और मृत्यु का रहस्य इंसान के हाथ लग जाएगा, तो यह यमराज के लिए खतरे से खाली नहीं होगा। यही सोचकर यमराज ने नचिकेता को अनेक प्रलोभन दिए, ताकि वह उन प्रलोभनों में घिर कर रह जाए, लेकिन नचिकेता तो किसी और ही मिट्टी का बना था। यमराज भी जानता था कि मृत्यु का रहस्य जानने लायक नचिकेता की पात्रता को परखे बगैर उसे इस तरह की जानकारी देना भारी पड़ सकता है। इसलिए परीक्षा ज़रूरी है।

किसी भी व्यक्ति के लिए करोड़पति होना जितने बड़े पुण्य की बात हो सकती है, उसका आत्म-ज्ञानी होना उससे भी लाख गुणा बड़े पुण्य की बात होती है। दुनिया की नज़र में किसी के लिए अंबानी बनना कठिन हो सकता है। लेकिन मैं बता दूँ, अंबानी बनना फिर भी आसान हो सकता है, लेकिन एक योगी, आत्म-ज्ञानी होना करोड़पति और अरबपति बनने से भी ज़्यादा मूल्यवान होता है।

यमराज को जब लगा कि नचिकेता स्थिरचित्त वाला व्यक्ति है, ऐसे मन का मालिक है, जो किसी भी स्थिति में चलायमान नहीं हुआ है, तब यमराज नचिकेता के प्रति प्रसन्न होते हैं। कोई व्यक्ति परीक्षा में सफल होने पर ही उस विषय में सफल माना जा सकता है। नचिकेता उस परीक्षा में सफल हो गया था। वह प्रलोभनों में नहीं आया। मृत्यु के देवता को देखकर डरा तक नहीं। तब यमराज को लगा कि इस बालक से मृत्यु के बारे में, आत्म-ज्ञान के बारे में बात करूँ, तो कोई अनुचित न होगा।

कठोपनिषद् कहता है - यमराज ने अपनी ओर से नचिकेता को समझाया, श्रेय और है तथा प्रेय और है। वे दोनों विभिन्न प्रयोजन वाले होते हुए भी पुरुष को बाँधते हैं। इन दोनों में से श्रेय का ग्रहण करने वाले का शुभ होता है और जो प्रेय को वरण करता है, वह पुरुषार्थ से पतित हो जाता है। श्रेय और प्रेय - ये दोनों मनुष्य के सामने आते हैं। बुद्धिमान मनुष्य इन दोनों के स्वरूप पर विचार करके उनको पृथक्-पृथक् समझ लेता है। विवेकी पुरुष प्रेय के सामने श्रेय का ही वरण करता है, किन्तु मूढ़ लोग लौकिक योग-क्षेम की इच्छा से प्रेय को अपनाता है।

यमराज ने नचिकेता को पात्र समझते हुए प्रतीकात्मक रूप से यह समझाने का प्रयास किया कि दो मार्ग हैं - एक प्रेय और दूसरा श्रेय। प्रेय मार्ग वह है, जो प्रिय लगे और श्रेय मार्ग वह है, जो कल्याणकारी हो, उत्थान करने वाला हो। श्रेय यानी श्रेष्ठ, कल्याण से जुड़ा हुआ मार्ग। प्रेय यानी प्रेम से जुड़ा मार्ग। यानी एक संसार-पथ, दूसरा कल्याण-पथ। सामान्यतौर पर कोई भी इंसान श्रेय के बारे में ज़्यादा नहीं सोच पाता, वह प्रेम के बारे में सोचता है। व्यक्ति को वह अच्छा लगता है, जो प्रिय होता है। वस्तु वह अच्छी लगती है, जो प्रिय होती है। मकान, कपड़ा, धन - सबकी अपनी-अपनी रुचियाँ हैं। हर व्यक्ति की प्रियता अलग-अलग हो सकती है।

आजकल हरेक के हाथ में मोबाइल दिखता है। आपने महसूस किया होगा कि हर मोबाइल से अलग-अलग रिंग टोन बजती है। किसी होटल में खाना खाने जाओ तो मीनू में पचास आइटम होते हैं। जिसे जो पसंद होता है, वही आइटम माँगवाता है। लेकिन मात्र प्रियता ही सब कुछ नहीं होती। व्यक्ति को प्रेय और श्रेय के बीच संतुलन बिठाना आना चाहिए। जीवन वीणा के तार की तरह होना चाहिए। तार संतुलित रहेंगे,

तो वीणा से मधुर आवाज़ निकलेगी। व्यक्ति ऐसा हो जो प्रिय भी लगे और अच्छा भी हो। ऐसा व्यक्ति क्या काम का जो प्रिय तो है लेकिन शराबी है, जुआरी है। ऐसा व्यक्ति त्याज्य होता है। श्रेय का भी ध्यान रखेंगे, तो गलत संगत से बच जाएँगे। प्रेय-श्रेय में संतुलन ज़रूरी है, ताकि जीवन का स्वाद और माधुर्य बना रहे।

यों तो हर चीज़ में प्रियता का संबंध जुड़ा रहता है। खाने-पीने में, देखने में, पहनने में, रिश्ते-नाते में – सबमें प्रियता का संबंध है। खाते हैं तो खाने में स्वादेन्द्रिय की प्रियता है। भोग में स्पर्शेन्द्रिय की प्रियता है। पुरुष किसी स्त्री को गले लगाता है, स्पर्श का सुख पाने की चाह होती है। भर्तृहरि कहते हैं – मांस के लोथड़ों को लोग सौन्दर्य की उपमा देते हैं। मुँह से किसी का चुम्बन क्या है, दूसरे की झूठी लार को अपने मुँह में लेना। वैरागी की भाषा तो यही है, लेकिन संसारी को इसमें प्रियता झलकती है। खाने का सुख, स्पर्श का सुख। मैं ऐसा नहीं कहता कि भोग करो ही मत। यह तो संभव है नहीं कि मेरे कहते ही सब लोग अपनी-अपनी पत्नियों को, अपने-अपने पतियों को छोड़ देंगे। ऐसा करना भी मत। मैं तो संतुलन की बात कह रहा हूँ। जीवन में पत्नी की ज़रूरत भी रहेगी और पति की भी, लेकिन संयम रखें। इससे संन्यास भी सध जाएगा और संसार भी।

संयम कई तरह के होते हैं – आहार-संयम, आचार-संयम, व्यवहार-संयम, वाणी-संयम, भोग-संयम। संयमी होना संपन्न होने से ज़्यादा कठिन है क्योंकि इसमें मन को जीतना होता है। तन पर विजय प्राप्त करनी होती है। असंयमित दोष हम सब लोगों के भीतर है। दोष होना सामान्य बात है, लेकिन दोषों से मुक्त होने का प्रयास करना हम सब लोगों का धर्म है। कीचड़ में पाँव का चले जाना कोई गलत नहीं है। लेकिन फिर उस कीचड़ को ही आत्मसात् कर लेना इसकी कोई ज़रूरत नहीं है। अगर हम कीचड़ में ही उलझे रह जाते हैं, तो यह हमारी कमजोरी है।

व्यक्ति जीवन के बाल्यकाल और किशोर-अवस्था में तो ब्रह्मचर्य आश्रम को जी लेता है। बाद में जब शादी करता है, तो गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। प्रवेश करना बुरा नहीं है; लेकिन क्या गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करने के बाद दूसरा कोई आश्रम नहीं रहता? 20-25 साल की उम्र तक हम लोग ब्रह्मचर्य-आश्रम को जीते हैं। बाद में जब गृहस्थ-आश्रम में क़दम रखते हैं, तो ऐसे डूब जाते हैं कि उससे निकलना याद ही नहीं आता। मरते दम तक गृहस्थी के रस-रंग में, मोह-माया में, भोग-विलास में उलझे रहते हैं। वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम कोई जीता ही नहीं है। बुढ़ापा आने पर जिस इंसान को निकल जाना चाहिए, भोगों से उपरत हो जाना चाहिए, वह उपरत होने की बजाय पहली पत्नी मर जाए, तो दूसरी के लिए अखबारों में वर-वधू के तलाश वाले विज्ञापन में अपने लिए तलाश करता रहता है कि शायद कोई गोटी फिट हो जाए। बुढ़ा चला है, जीवन की

सांध्य वेला की तरफ। पर मुँह से लार टपकना बंद न हुआ। आँखें चुंधिया गईं, फिर भी आँखों में निर्मलता न आई। दाँत गिर गए फिर भी खाने की लालसा न मिटी। कमर झुक गई, फिर भी भोग की पुरानी आदतें नहीं छूटीं। यह बात किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं है। सभी इस मायाजाल के शिकार हैं। जीवन के प्रति गंभीर बनो, होश और बोधपूर्वक जीओ तो संभावना है कि हम लोग मुक्त हो जाएँ। बाकी तो अमृत के कुंड में गिर कर भी कीचड़ ही चाटते हैं।

कहते हैं - एक आदमी सुकरात के पास गया। वह कहने लगा, 'महाराज स्त्री के बारे में आपका क्या नज़रिया है ? मैं जानना चाहता हूँ कि व्यक्ति को जीवन में कितनी बार भोग करना चाहिए ?' सुकरात उस व्यक्ति की मनोदशा समझ गए। वह गहरी मूर्च्छा में था। सुकरात ने उसे जवाब दिया कि जीवन में एक बार भोग पर्याप्त है। उस व्यक्ति ने दुबारा पूछा, 'एक बार से मन न भरे तो ?' सुकरात ने कहा, 'जीवन में दो बार।' व्यक्ति ने फिर सवाल किया, 'इससे भी मन न भरे तो ?' सुकरात ने कहा, 'वर्ष में एक बार किया गया भोग पर्याप्त है।' उस आदमी को इससे भी संतुष्टि न मिली। उसने फिर प्रश्न पूछा, तो सुकरात ने कहा, 'भाई एक महीने में एक बार ठीक है।' लेकिन वह आदमी तो जैसे सुकरात की परीक्षा लेने पर ही उतारू था। उसने फिर पूछा, इससे भी मन न भरे तो क्या करे ? इस बार सुकरात का जवाब था, 'सुनो महाशय, मेरी बातें मनुष्यों के लिए हैं, भेड़ियों के लिए नहीं। एक माह में एक बार से भी मन न भरे, तो फिर तो ऐसा व्यक्ति सिर पर कफ़न बाँध ले और फिर जो चाहे, सो करे।'

ऐसा नहीं कि दांपत्य-जीवन न जीया जाए। बस, प्रेय और श्रेय के बीच संतुलन बिठा लेना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि शादी कर ली, तो पत्नी के साथ व्यभिचार करने लगे। हर तरह की चीज़ का आनन्द लो, लेकिन उसकी एक सीमा रखो। बोलने, खाने, भोगने - सब की सीमा तय कर लो। इससे संसार भी सध जाएगा और संन्यास भी। बोलना अच्छी बात है, लेकिन कुछ समय मौन रहकर भी देखें। शरीर के संचालन के लिए भोजन करें, लेकिन यूँ नहीं कि हर समय कुछ-न-कुछ खाते ही रहें। सप्ताह में एक दिन व्रत-उपवास भी रखें। इससे शरीर की शुद्धि भी हो जाएगी। केवल प्रिय लगता है, इसलिए खाते न चले जाओ। नेत्रों का संयम भी रखो। किसी का कोई अंग देखकर मन मचलता है तो अपना नेत्र-संयम रखो, मन अपने आप शांत हो जाएगा। ताक-झाँक न करें ताकि मन किसी अंग को देखकर उद्वेलित न हो।

भगवान बुद्ध ने एक ध्यान-पद्धति दी थी - विपश्यना चंक्रमण। यानी जब सारी दुनिया सोए, तो तुम जाग जाओ। पूनम की रात में छत या सड़क पर टहलने लगे। इधर-उधर देखने की बजाय अपने उठते-गिरते पाँवों पर ध्यान दो। इसे कहा गया -

विपश्यना चंक्रमण। माह में दो बार ऐसा करोगे, तो नेत्र संयम की शुरुआत हो जाएगी। इसी तरह अपनी कर्णेन्द्रिय पर भी संयम रखो। लोगों को अपनी प्रशंसा सुनना तो अच्छा लगता है, लेकिन कोई निंदा करे, तो मिर्च लग जाती है। यानी अपनी ज़ुबान से किसी की निंदा मत करो, कान से बुरी बातें सुनो मत। यदि सुन लो, तो प्रायश्चित्त करो।

प्रेय की दुनिया से बाहर निकलें। खाली बैठना अच्छा लगता है, लेकिन खाली न बैठें। कुछ-न-कुछ करते रहें। इसलिए नहीं कि धन कमाना है, बल्कि इसलिए ताकि शरीर गतिमान रहे। शेखचिल्ली के बारे में कहते हैं - एक बार शेखचिल्ली एक पेड़ के नीचे लेटा आराम कर रहा था। वहाँ से निकले एक राहगीर ने उससे कहा, 'क्यों बेकार बैठे हो, कुछ काम करो। और कुछ नहीं तो लकड़ी ही काट लाओ।' शेखचिल्ली ने जानना चाहा, लकड़ी काटने से क्या होगा? उस व्यक्ति ने जवाब दिया, 'इससे पैसे मिलेंगे। उन पैसों से तुम गाएँ खरीद लेना, उनके दूध का व्यापार करना।' शेख ने फिर पूछा, 'इससे क्या होगा?' राहगीर ने उसे समझाया, 'भाई फिर कुछ और गाएँ ले आना, इस तरह दूध की मात्रा भी बढ़ जाएगी और पैसे भी खूब आएँगे।' शेखचिल्ली तो शेखचिल्ली ही था। उसने फिर पूछा, 'इससे क्या होगा?' राहगीर ने फिर बताया, 'पैसों से तुम मकान बनवा लेना, नौकर रख लेना और आराम करना।' शेखचिल्ली ने उसे कहा, 'आराम तो मैं अभी कर ही रहा हूँ, उसके लिए इतने काम करने की कहाँ जरूरत है!'

बात हँसने की हो सकती है, लेकिन इस कहानी में यह संदेश छिपा है कि खाली न बैठो, समय का उपयोग करो। अधिकांश भारतीय महिलाएँ मोटी क्यों हो जाती हैं। शादी के बाद कुछ समय तो उनका रसोई में निकल जाता है, पर फिर वे काफी सारा समय सोने में बिता देती हैं। इससे वे मोटी होती जाती हैं। इसके विपरीत कुछ महिलाएँ ऐसी भी होती हैं, जो लगातार कुछ-न-कुछ करती रहती हैं। समय का सही उपयोग उन्हें छरहरी काया वाला रखता है। खाली बैठना अच्छा तो लगता है, लेकिन उसका कोई परिणाम नहीं होता। गीता के भगवान ने इंसान को सक्रिय जीवन जीने की प्रेरणा दी है। जो कुछ काम नहीं करता, वह निकम्मा होता है। निकम्मे लोग केवल खुद के जीवन को निष्फल नहीं करते, बल्कि पूरे देश को निकम्मा कर देते हैं। कहते हैं न कि एक मच्छर सारे देश को हिंजड़ा कर देता है। निकम्मे लोग ऐसे मच्छर, मक्खी की श्रेणी में ही आते हैं।

सक्रिय जीवन तो जीएँ ही, पर संयमित जीवन अवश्य जीएँ। केवल देह-भोग पर ही संयम न रखें, खाने पर भी संयम रखें। शादी-समारोह में गरिष्ठ भोजन से बचें। केवल जीभ की प्रियता के बारे में ही न सोचें। यह भी देखें कि इस तरह के खाने से शरीर

का क्या हाल हो सकता है। लोग अध्यात्म का रास्ता भूल गए हैं। जिंदगी ऐशो आराम से कट रही है। आदमी ही क्यों, संतों को भी सुख-सुविधाएँ चाहिए। श्रेय पर कोई चिंतन ही नहीं करता। इसीलिए अध्यात्म का मार्ग छूटता चला जा रहा है। हम लोग अपने साथ ही प्रवंचना कर रहे हैं।

एक राजा हुए चित्रसेन। मन में तमन्ना जगी कि दुनियाभर के शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया जाए। उन्होंने सबको एकत्र किया और अपनी मंशा से अवगत कराया। मुनादी कराई गई। अनेक विद्वानों को बुलाया गया। विद्वानों ने कई वर्ष की मेहनत से चार ग्रंथ तैयार किए। इन्हें नीतिशास्त्र, आयुर्वेद, न्यायशास्त्र, अध्यात्म शास्त्र - नाम दिया गया। सभी में एक-एक लाख श्लोक थे। राजा ने कहा, 'ये तो बहुत बड़े ग्रंथ हैं, मुझे तो सार रूप में बताएँ।' विद्वान फिर से बैठे। इस बार उन्होंने एक-एक हजार श्लोक में ज्ञान का सार निकाला। राजा ने फिर कहा, 'मेरे पास इतना समय कहाँ है कि इन्हें पढ़ूँ। मुझे तो संक्षिप्त में बताओ।' तब एक-एक श्लोक में सार निकाला गया। उसमें सब-कुछ आ जाता है।

आयुर्वेद में कहा, भोजन तब ही किया जाए जब पहले का भोजन पच जाए। न्यायशास्त्री ने कहा, मनुष्य को अपनी प्रत्येक वृत्ति, प्रवृत्ति न्यायपूर्वक तरीके से अंजाम देनी चाहिए ताकि किसी का अमंगल नहीं हो। धर्मशास्त्र का निचोड़ यून निकला, प्राणी मात्र की रक्षा करें, उसके प्रति दया का भाव रखें। यही श्रेय मार्ग है। भोजन तभी करें जब पहले का भोजन पच जाए। अपनी गतिविधियों को न्यायपूर्वक अंजाम देवें। प्राणी मात्र की रक्षा करें। समभाव रखें। याद रखें, कभी भी ओवर लोडिंग न करें। रसोइयों के हाथ से बना गरिष्ठ भोजन करने से बचें। रात की बजाय दिन में खाना खाएँ। सूर्योदय से सूर्यास्त तक भोजन करें। सूर्यास्त से सूर्योदय तक उपवास करें। यह हुआ संतुलन। चौबीस घंटे में से आधा समय खाने के लिए हुआ और आधा समय खान-पान से मुक्ति के लिए हुआ। कुल मिलाकर संतुलन होना चाहिए। संतुलन ही स्वास्थ्य है। असंतुलन ही रोगों का आधार है।

यमराज ने नचिकेता को प्रेय और श्रेय की बात क्यों समझाई? उन्होंने नचिकेता से कहा था, तुम्हें अकूत धन दे दूँ। देवांगनाएँ, अप्सराएँ दे दूँ। लेकिन नचिकेता नहीं माना। तब यमराज को कहना पड़ा, हे नचिकेता, तुम्हें धन्य है। मैंने तुम्हारे सामने प्रलोभन के कितने ही रास्ते खोले, लेकिन तुम मोह में न आए। तुम सचमुच आत्म-विद्या के अभिलाषी हो। आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के सच्चे पात्र हो। तुमने प्रेय की बजाय श्रेय के मार्ग का चयन किया है अर्थात् आत्म-ज्ञान के मार्ग का चयन किया, भौतिक संसार का नहीं। मैं तुम्हें तीन लोकों का राजा बनाना चाहता था लेकिन तुमने स्वीकार नहीं किया। मैं इसके लिए तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ।

नचिकेता का अनुकूलता के बावजूद प्रलोभन में न आना ही उनके दृढ़ चरित्र की निशानी है। यह नचिकेता की सच्ची मुमुक्षा है। नचिकेता ने अपने आप को यमराज के सामने अनासक्त प्राणी के रूप में प्रस्तुत किया। प्रलोभन से मुक्त रखा। आत्म-ज्ञान के रास्ते पर प्रथम बिन्दु है अनासक्ति। जो संसार में रह कर भी निर्लिप्त रहे, आत्मा में रमण करे लेकिन अनासक्त रहे। संसार में जीए, लेकिन बोध रखे कि एक दिन सबको जाना है। सब यहीं रह जाना है। इसलिए संसार का आनन्द लें, पर मोह न रखें। मोह नाम का तत्त्व ही हमें आत्म-ज्ञान प्राप्त करने से वंचित रखता है। आत्म-ज्ञान का साधक व्यक्ति स्वयं को ऐसे रखे, जैसे कोई धाय माँ होती है। वह दूसरों के बच्चों को अपना दूध पिलाकर बड़ा करती है, लेकिन उन बच्चों पर अपना अधिकार नहीं जताती। सहज भाव से रहें, जो मिल गया, ठीक है। न मिला, तब भी कोई शिकायत नहीं।

कृष्ण ने अवतार लिया, लेकिन वे सबसे बड़े अनासक्त कहलाए क्योंकि उन्होंने सब-कुछ किया, देखा, लेकिन बँधे नहीं। उनके हज़ारों-हज़ार रानियाँ और सखियाँ थीं, उन्होंने महाभारत रचा लेकिन उनकी आसक्ति किसी के प्रति नहीं थी। पत्नी पीहर जाती है, पति से चार दिन भी नहीं रहा जाता। यही आसक्ति है, बंधन है। व्यक्ति चीजों को पकड़ कर बैठा रहता है, अमुक चीज नहीं मिली, तो ज़िंदगी अधूरी लगने लगती है। सब कुछ है, फिर भी मन में कुछ और पाने की तड़प है। इसी का नाम आसक्ति है।

आजकल एक चलन चल पड़ा है। किसी की सगाई होती है तो लड़का अपनी ओर से लड़की को मोबाइल गिफ्ट कर देता है। अब दोनों लगे रहते हैं बातों में। बातें भी कैसी? निरर्थक, बिना काम की। मेरा तो आग्रह है कि बच्चों की सगाई करें, तो तत्काल विवाह कर दें। कम से कम मोबाइल पर होने वाला व्यर्थ का खर्च और समय का अपव्यय तो बच जाएगा। सबसे बड़ी बात क्रीमती समय बचेगा। इधर सगाई, उधर शादी; ये लो रहो साथ-साथ। मिल गए, तो मन की निकल गई। चलो छुट्टी हुई। न मिले, तो प्यास ज़्यादा उठती है। हनीमून के सपने दिखते हैं। मिल गई, तो मेटर फिनिश हुआ।

ध्यान रखो, संसार में रहना बुरा नहीं है, संसार के प्रति आसक्ति बुरी है। राधा कृष्ण के प्रति आसक्ति हुई, लेकिन कृष्ण अनासक्त रहे। प्रेम अलग बात है और राग अलग बात। राग मूर्च्छा है। इस मूर्च्छा से बाहर निकलें। कमल की तरह निर्लिप्त रहें। यह तभी होगा, जब आत्म-ज्ञान की प्राप्ति का लक्ष्य होगा। पत्नी-बच्चे अच्छे लगते हैं। प्रेम का मार्ग ही ऐसा है। पत्नी काली है, तब भी सुन्दर लगती है। दिल लग जाए, तो गधी भी परी लगती है। दिल न लगे, तो परी भी गधी लगती है। सुकरात की पत्नी बहुत तेज स्वभाव की थी, लेकिन उन्होंने संतुलन बिठा लिया। वे प्रेय के मार्ग पर भी चले और श्रेय के मार्ग पर भी।

जीवन का दूसरा मार्ग है अपरिग्रह का। विश्वजित यज्ञ करने का अर्थ यही है कि सब-कुछ दान में देना है। राजा रघु ने भी विश्वजित यज्ञ किया। उन्होंने यज्ञ के बाद अपना सब-कुछ दान में दे दिया। फ़क़ीर हो गए। तभी कौत्स नाम का एक ब्राह्मण उनके पास पहुँचा और कहने लगा, 'महाराज, मेरी शिक्षा पूरी हो गई है। अब मैं अपने गुरु को दक्षिणा देना चाहता हूँ। गुरु ने चौदह करोड़ सोनैया मांगे हैं।' ब्रह्मण ने कहा - 'मैंने आपकी यशोगाथा सुनी है। पता चला है कि आपने विश्वजित यज्ञ किया है और दान कर रहे हैं, सो मैं आपके पास इसी आस में आया हूँ कि आप मुझे मेरी इच्छित वस्तु दान में देंगे।' राजा कुछ विचार में पड़ गए। कौत्स के वहाँ पहुँचने तक वे अपना सब-कुछ दान कर चुके थे। अब उनके पास कुछ न बचा था। उन्होंने कुछ निर्णय किया और कौत्स से कहा, 'तुम दो दिन मेरी यज्ञ शाला में ठहरो, मैं तुम्हारे लिए चौदह करोड़ सोनैयों का प्रबंध करता हूँ।' कौत्स रुक जाता है। राजा रघु कुबेर पर आक्रमण कर धन प्राप्ति का विचार करते हैं। कुबेर को इसका पता चलता है। वह सोचता है कि विश्वजित यज्ञ करने वाले को कोई हरा नहीं सकता। ऐसे में कुबेर स्वयं वहाँ पहुँचकर सोनैयों की बारिश कर देता है। रघु कहते हैं, कुबेर मुझे सिर्फ़ चौदह करोड़ सोनैयों की आवश्यकता है। शेष ज़रूरतमंदों को बाँट दो। कौत्स धन लेकर राजा को आशीर्वाद देता हुआ प्रस्थान करता है।

असल में ये कौत्स और राजा रघु, दोनों की परीक्षा थी। रघु के कुल में ही बाद में भगवान राम ने अवतार लिया। सो रघु के अपरिग्रह ने उन्हें अमर कर दिया। यह होता है अपरिग्रह का प्रभाव। जिसके भीतर अपरिग्रह की चेतना जगती है, वही मुक्त हस्त से दान दिया करता है। नचिकेता यमराज की ओर से दिए गए प्रलोभन से वशीभूत हो जाते, तो उनकी गाथा इस तरह नहीं लिखी जाती और संसार को कठोपनिषद् जैसा शास्त्र नहीं मिलता।

यमराज ने नचिकेता से कहा, 'तुम तो पक्के निकले। तेरे जैसा शिष्य पाकर मैं धन्य हो गया। अब मैं तुझे आत्म-ज्ञान का रहस्य, मृत्यु का रहस्य बताने वाला हूँ क्योंकि तुम प्रेय नहीं, श्रेय मार्ग के पथिक हो।' जैन आगमों में एक शास्त्र आता है, उत्तराध्ययन सूत्र। उसमें राजा श्रेणिक की कथा है। राजा श्रेणिक एक बार वन-विहार के लिए जा रहे थे। अचानक उन्होंने अशोक के एक वृक्ष के नीचे एक युवक को तपस्या करते देखा। गौर वर्ण, बलिष्ठ शरीर का मालिक वह युवक सुदर्शन व्यक्तित्व वाला था। राजा ने उससे कहा, 'युवक! तुम्हारी यह उम्र जंगल में तप करने की नहीं है। अभी साधना का समय नहीं आया। मेरे कोई संतान नहीं है। तुम मेरे महलों में चलो, वहाँ जीवन का आनन्द लो। बुढ़ापा आए, तब संन्यास ले लेना।' युवक मुस्कुरा कर कहने लगा,



‘महाराज आप खुद तो अनाथ हो, मुझे अनाथ समझते हो।’ राजा ने कहा, ‘हे युवक, तुम नहीं जानते, मैं इस नगर का राजा हूँ।’ युवक ने कहा, ‘राजन, मैं खुद एक नगर का राजकुमार था। एक बार मैं रोगों से घिर गया। वैद्यों ने जवाब दे दिया। रातभर चिंतन करता रहा। मैंने प्रभु से प्रार्थना की कि मेरी पीड़ा दूर हो जाए। यदि कल मेरे पास जीवन रहा, तो मैं सुबह ही संन्यासी हो जाऊँगा। जाने कब आँख लग गई। सुबह उठा तो देखा, एकदम स्वस्थ हो चुका था। बस, मैं निकल पड़ा। हे राजन्, तुम भी मेरी तरह भूल कर रहे हो। सबका नाथ एक ही है, ऊपरवाला। इसलिए अपरिग्रह की राह पर चल पड़ा; अब मुझे राजमहल की जरूरत नहीं है।’

दुनिया में सारे संबंध विरासत के हैं। बेटा जँवाई की विरासत है। बेटा बहू की विरासत है। हमारा शरीर श्मशान की विरासत है। सब यहाँ चार दिन का खेल है। व्यर्थ का मोह पालने की बजाय कमल के फूल की तरह जीओ। परिग्रह उतना ही करो, जितना आवश्यक है। जीवन का संचालन हो जाए, उतना ही बटोरो। हमारी आसक्तियाँ जितनी कम होती चली जाएँगी, हम आत्म-ज्ञान की राह के पथिक बनते चले जाएँगे। एक ऐसे पात्र बन जाएँगे, जिसमें आत्म-ज्ञान का अमृत उँडेला जा सकेगा। गुरु हमारी पात्रता को निखार सकते हैं, लेकिन पात्रता तो हमें ही पैदा करनी होगी। फिर इस खाली कलश को गुरु भर देंगे।

यमराज ने भी नचिकेता की पात्रता को परखते हुए उसे अंततः मृत्यु का रहस्य बताने की स्वीकृति दी। आखिर क्या है आत्मा? कहाँ से आती है, कहाँ रहती है और कहाँ चली जाती है। क्या है मृत्यु का रहस्य? यमराज हमें समझाने का प्रयास कर रहे हैं। यह हम अगले पृष्ठों में पढ़ेंगे।



# 12

## विवेक ही सच्चा गुरु

इंसान के जीवन में जिस पहलू की प्रत्येक क्रम, प्रत्येक गतिविधि के साथ आवश्यकता है, वह है विवेक। विवेक किसी भी इंसान का सच्चा शिक्षक होता है, जीवन का सबसे बेहतरीन शास्त्र होता है। विवेक में ही आत्मा का प्रकाश समाहित होता है और विवेक में ही हंसदृष्टि होती है। क्या प्रिय है और क्या श्रेय, क्या ग्रहण करने योग्य है और क्या त्याज्य, क्या उपयोग करने योग्य है और क्या अनुपयोगी, इन स्थितियों में हमें क्या करना चाहिए – इसकी प्रेरणा इंसान को विवेक द्वारा ही ग्रहण करनी चाहिए। इंसान का विवेक ही उसे उपभोग की प्रेरणा दे, तो उसे उपभोग की दहलीज़ पर आना चाहिए। वहीं यदि इंसान का विवेक त्याग की प्रेरणा दे, तो हमें त्याग को गले लगाना चाहिए। क्या उचित है और क्या अनुचित – इसका मूल्यांकन कैसे होगा? क्या किसी अन्य से इसका मूल्यांकन करवाना चाहिए? ऐसा करेंगे, तो वह व्यक्ति अपना नज़रिया उसमें समाविष्ट कर हमें अपनी सलाह देगा। तब सीधा सवाल पैदा होगा कि मूल्यांकन किसके ज़रिए करवाएँ! स्वयं के ज़रिए, स्वयं के विवेक के ज़रिए। विवेक से बढ़कर न कोई गुरु होता है और न ही कोई न्यायाधीश। विवेक ही मंदिर है, विवेक ही मंदिर का दीपक है, विवेक ही मंदिर की मूर्ति है और विवेक ही मंदिर का भगवान है। आपके पास यदि विवेक है, तो दुनिया भर का सारा ज्ञान आपके पास है। यदि विवेक नहीं है, तो ढेर सारी पंडिताई भी क्या काम की? ज्ञान वह नहीं होता, जो दूसरों को दिया जाए। ज्ञान वह होता है जिसके प्रकाश में जीवन जीया जाए। ज्ञान के प्रकाश में, विवेक की रोशनी में जो मूल्यांकन होगा, वह सबसे अनूठा और अनुपम होगा।

कोई अगर हम से पूछे कि हमें अंधकार में जीना चाहिए या प्रकाश में? तो मैं तो क्या एक मंद बुद्धि बालक भी यह जवाब दे देगा कि हमें प्रकाश में जीना चाहिए। प्रश्न है किसके प्रकाश में? सूर्य के प्रकाश में? चन्द्रमा के प्रकाश में? दीपक के प्रकाश में?

ये बाहरी प्रकाश तो उदय-अस्त होते रहते हैं। व्यक्ति के सामने एक ही प्रकाश सच्चा प्रकाश है और वह है - विवेक का प्रकाश। यह कोई ज़रूरी नहीं है कि हर व्यक्ति पढ़ा-लिखा हो, पर एक अनपढ़ व्यक्ति में भी विवेक की रोशनी तो हो सकती है। पढ़े-लिखे और अनपढ़ के विवेक में स्तर का फ़र्क़ हो सकता है, लेकिन विवेक की रोशनी तो रहेगी। ठीक है, अनपढ़ का विवेक दीपक की रोशनी जैसा होगा और एक पढ़े-लिखे व्यक्ति का विवेक सूर्य की रोशनी की तरह दूरगामी और प्रभावी होगा।

कोई अगर मुझसे पूछे कि आप किसके अनुयायी हैं ? तो मेरा सीधा सरल जवाब होगा - मैं विवेक का अनुयायी हूँ। मैं जीवन में वही करना पसंद करता हूँ जिसकी प्रेरणा मुझे मेरे विवेक से मिलती है। सचाई यह है कि विवेक ही धर्म है, विवेक ही व्रत है, विवेक ही चरित्र है, विवेक ही शील और संयम है। आपके पास विवेक है तो तीनों लोकों की संपदा आपके पास है। एक विवेक के अभाव में व्यक्ति विपन्न, दरिद्र और दुःखी है। विवेकशील व्यक्ति जो कुछ करता है, उसके द्वारा कर्मों की निर्जरा ही होती है। विवेकहीन व्यक्ति अच्छे कर्म करता हुआ भी पाप की छाया को अपने साथ लिये चलता है।

विवेक बताता है कि इंसान को वही कार्य करना चाहिए जो खुद के लिए तो हितकारी हो ही, दूसरों के लिए भी हानि का कारण न बने। जीओ और जीने दो का सिद्धांत इसी विवेक का परिणाम है। ऐसा कार्य मत करो, जिससे तुम्हारा या किसी का भी अहित हो। ऐसा कुछ मत करो कि दूसरों का अमंगल हो जाए। दूसरों को ऐसी सलाह भी मत दो कि जिससे दूसरों का तो भला हो जाए, लेकिन तुम्हारा खुद का अमंगल हो जाए। विवेक हमारे जीवन का शिक्षक है। विवेक की शिक्षाओं को कभी भी नज़रअंदाज़ मत करो, क्योंकि विवेक की बातें अंतरात्मा की बातें होती हैं। विवेक यानी भीतर के देवदूत से मिला सही, समुचित रास्ता।

यमराज प्रेय और श्रेय की चर्चा कर रहे हैं। एक पाप पथ है, दो दूसरा पुण्य पथ। हमें किस मार्ग पर जाना चाहिए और किस पर नहीं, कितने प्रतिशत प्रेय मार्ग पर और कितने प्रतिशत श्रेय मार्ग पर। आखिर हम अपने शारीरिक बल, मनोबल, मनोदशा, विवशता को समझकर ही तो तय कर पाएँगे कि कहाँ जाएँ ? प्रेय और श्रेय दोनों मार्ग पर जाएँ, लेकिन यह तय करना होगा कि किस मार्ग पर कितने क़दम बढ़ाएँ ? इसके लिए ही विवेक की ज़रूरत होती है। विवेक को अपना गुरु समझो। जिस समय इंसान की जैसी स्थिति होती है, उसका विवेक वैसा ही कार्य करता है। सबका आत्म-ज्ञान अलग-अलग होता है और सबकी समझ अलग-अलग। हर एक का ज्ञान का स्तर अलग-अलग होता है। एक पुत्र एक ही तरह की गलती दोहरा रहा है तो पिता को

आखिर सोचना ही पड़ेगा कि उस पर क्रोध करे या न करे। प्रकृति ने क्रोध का निर्माण किया है, तो कहीं तो इसकी जरूरत होगी ही। क्रोध एक शस्त्र है। इसका उपयोग करना चाहिए, लेकिन कहाँ और कब ? इस पर विचार करने के लिए विवेक का सहारा लेना पड़ेगा। बिना विचारे क्रोध किया, तो हो सकता है उसका नुकसान उठाना पड़ जाए। बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय। जो बिना विचार के, बिना विवेक के अपना कार्य करता है, उसे बाद में पछताना पड़ता है।

सामान्य-सी बात पर क्रोध कर लिया और गाली ठोक दी। यह तो मामूली बीमारी के लिए दवा का ज्यादा डोज हो गया। विवेक यही कहता है कि किसी ने पहली गलती की है, तो उसे माफ़ किया जाए। दूसरी बार माफ़ किया जाए, उसे समझाया जाए। फिर भी गलती करे, तो उचित कदम उठाएँ। याद रखें, विवेक से किया गया क्रोध भी मुक्ति की राह पर ले जाएगा, श्रेय की तरफ ले जाएगा, कल्याण की ओर ले जाएगा। जब कृष्ण शिशुपाल की 99 गलतियों को माफ़ कर सकते हैं, तो क्या हम किसी की 9 गलतियों को माफ़ नहीं कर सकते। जब हम मंगलवार को हनुमानजी का, शुक्रवार को संतोषी माता का और रविवार को सूर्य देव का व्रत कर सकते हैं, तो क्या हम इसी तरह क्रोध का व्रत नहीं कर सकते ? क्या हम ऐसा कोई संकल्प अपने भीतर नहीं ले सकते कि आज रविवार है। आज हम गुस्सा नहीं करेंगे। आज हमारे गुस्सा न करने का व्रत है। एक व्रत में व्यक्ति भोजन का त्याग करता है। मैं जिस व्रत की बात कर रहा हूँ, उसमें मन के विकारों को त्याग करने की बात है। आप अपने विवेक से खुद सोचिए कि सच्चा व्रत कौन-सा है ?

कोई भी चीज़ बुरी नहीं है। भोग, क्रोध, ये सब प्रकृति के प्राकृतिक धर्म हैं; लेकिन इनका उपयोग विवेकपूर्ण तरीके से होना चाहिए। अविवेकपूर्ण तरीके से किया गया कोई भी कार्य विपरीत परिणाम ही लाएगा। इसलिए हमारे जीवन में जिस तत्त्व की सबसे ज्यादा जरूरत है, उसका नाम है - विवेक।

आप और हम सभी साधना-पथ के, संबोधि-साधना के पथिक हैं। संबोधि-साधना बताती है कि हम विवेकपूर्वक जीएँ, विवेकपूर्वक खाएँ, विवेकपूर्वक सोएँ। प्रश्न है - विवेक का जन्म कहाँ से होगा ? बोध और होशपूर्वक जीने से। बोध यानी प्रज्ञा, सावधानी। कोई भी काम आँख मूँदकर मत करो। जाग्रत होकर, सचेतनापूर्वक, बोधपूर्वक काम करने का नाम ही है विवेक। हर पल बोध रखें। सड़क पर चल रहे हैं, दो बोध रखें कि कोई चींटी पाँव के नीचे न आ जाए। हमें ठोकर न लग जाए। खाना खाएँ, तो सावधानी बरतें ताकि जीभ दाँतों के बीच न आ जाए। बोधपूर्वक खाएँ। विवेक हमें समझाता है कि क्या खाना है और क्या छोड़ना। कहाँ जाना है और कहाँ रुकना ?

प्रेय का मार्ग कहता है, दोस्तों के पास जाओ, मटरगशती भी करो, टीवी देखो लेकिन श्रेय का मार्ग कहता है - ये सारे कार्य बोधपूर्वक करो। दोस्तों के साथ रहो लेकिन गुलछर्रे उड़ाने से बचो। व्यसनों से बचो। टीवी पर ऐसे धारावाहिक देखो जिससे मनोदशा ठीक रहे। दोस्तों के पास जाओ, तो ऐसे कि न तो उनका समय खराब हो और न ही आपका कोई नुकसान हो। बोध हमें प्रेय और श्रेय में अंतर करना बताता है। विवेक इस मार्ग पर रोशनी का काम करता है ताकि हम सही मार्ग पर जाएँ। अगर हम विवेकपूर्ण तरीके से जीते हैं, तो हम नचिकेता जैसी पात्रता अपने भीतर धीरे-धीरे विकसित कर लेंगे।

इंसान के सामने सभी तरह की परिस्थितियाँ आती हैं, लेकिन उन परिस्थितियों से निपटने का हर इंसान का अपना तरीका होता है।

एक व्यक्ति को कहीं जाना था। वह रेलगाड़ी में बैठा था। डिब्बा खचाखच भरा था। उसने देखा, एक बुजुर्ग भीड़ में फँसा हुआ है। युवक का विवेक उसे प्रेरित करता है कि या तो वह उस बुजुर्ग को थोड़ा-सा स्थान दे या खुद खड़ा होकर उसे अपने स्थान पर बिठाए। याद रखें कि आखिर हम भी इंसान हैं। जब भी चूक होने लगे, तो ये शब्द बोध बनाए रखेंगे। कभी मूर्च्छा का उदय हो, तो हम संयम से रहें। मैं मनुष्य हूँ, यह बोध रहना ही चाहिए। हम जितना बोध रखेंगे, हमारा स्वार्थ उतना ही कम होता जाएगा। आखिर मैं भी इंसान हूँ - यह बोध रखने से हमारे भीतर अपने आप प्रेय और श्रेय के बीच संतुलन बना रहेगा। मैं क्या हूँ, यह बोध रहे। मैं आत्मा हूँ, इस बात को भूल बैठेंगे, सांसारिक रंग में रंगने लगेंगे, तो समझ नहीं आएगी। मैं देह हूँ, यह समझने के बाद ही देह से उपरत होने की यात्रा प्रारंभ हो पाएगी। एक इंसान है जो ट्रेन में बैठकर भी सबके बारे में सोच रहा है, किसी को परेशान देखकर उसे दूर करने का प्रयत्न करता है। दूसरा यात्री ऐसा भी है, जो केवल अपने बारे में सोचता है। उसे जगह मिल गई, अब दूसरों से क्या लेना-देना।

मैंने सुना है, दो दोस्त चढ़े रेल के डिब्बे में। डिब्बा खचाखच भरा था। एक ने दूसरे के कान में धीरे से कहा, देख अभी दोनों के लिए जगह बनाता हूँ। अचानक वह जोर से चिल्लाया, साँप, साँप। डिब्बे में हड़कंप मच गया। कुछ ही देर में पूरा डिब्बा खाली हो गया। दोनों दोस्त दो बर्थ पर लंबी तान कर सो गए, अब चिंता नहीं, मंजिल पर आराम से पहुँच जाएँगे। सुबह दोनों की आँख खुली तो देखा गाड़ी उसी स्टेशन पर खड़ी थी। डिब्बे से बाहर निकलकर किसी से पूछा, यह गाड़ी चली नहीं क्या? उसने बताया, कल रात इस डिब्बे में एक साँप की सूचना मिली थी। खूब खोजने पर भी साँप न मिला, तो इस डिब्बे को ही काट दिया गया, शेष गाड़ी चली गई।

दूसरों का बुरा सोचने वालों को आखिर ऐसा ही फल मिलता है। होशियारी काम नहीं आई। दूसरों के कल्याण का ध्यान न रखेंगे, तो अपना खुद का कल्याण कैसे होगा? यही जगत की रीत है। यमराज ऐसे ही आते हैं। वे जिंदगी का डिब्बा काट देते हैं। इसलिए विवेक होना चाहिए कि कब, क्या करना है। किस समय क्या खाना है, क्या नहीं खाना। आजकल एक फैशन चल पड़ा है, लोग सर्दी में शादी-समारोह में आइसक्रीम खाते हैं। भला यह भी कोई बात हुई। ऐसे लोगों के लिए उनका शरीर एक मशीन के सिवा और कुछ नहीं है। इस मशीन में दिनभर कुछ-न-कुछ डालते ही रहते हैं। इसके दुष्परिणाम भी उन्हीं को भुगतने पड़ते हैं। आजकल की लड़कियाँ इतने टाइट कपड़े पहन कर चलती हैं, मानो ये कपड़े उनके शरीर पर ही सिले गए हों। टाइट जींस और टाइट टी शर्ट पहनकर वे किस आधुनिकता का प्रचार करना चाहती हैं। स्थिति यह हो जाती है कि इस तरह की जींस में उन्हें बैठना तक मुश्किल हो जाता है; लेकिन क्या करें, फैशन की मारी जो ठहरी। साड़ी संभालनी भारी पड़ रही हो, तो सलवार सूट पहनो। सबसे गरिमामय पोशाक है। लेकिन ये लड़कियाँ 'आ बैल मुझे मार' की तर्ज पर ऐसे कपड़े पहनती हैं कि किसी का भी ध्यान भटक सकता है। सलीके के कपड़े पहनो, सलीके का खाना खाओ। हर चीज में विवेक रखोगे, तो कहीं कोई समस्या नहीं आएगी। यही श्रेय का मार्ग है। प्रेय और श्रेय में संतुलन रखते ही सब ठीक हो जाता है।

यमराज ने भी प्रेय और श्रेय के बारे में नचिकेता की परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने उसे धन, स्त्री, राज्य का लालच दिया; लेकिन नचिकेता ने तो श्रेय का ही मार्ग चुनने का फैसला किया। वह देवांगनाओं के प्रलोभन में नहीं आया। वह तो यही कहता रहा, 'हे यमराज, मैं तो श्रेय के मार्ग का अनुयायी हूँ।' तब यमराज कठोपनिषद् में कहते हैं, 'हे नचिकेता! तुमने प्रिय लगने वाले, अत्यन्त सुन्दर रूप वाले समस्त भोगों को भली-भाँति सोच-समझकर छोड़ दिया। तुम इससे प्रभावित नहीं हुए, जिसमें बहुत से मनुष्य फँस जाते हैं।' नचिकेता कोई साधारण बालक नहीं था, इसलिए यमराज के बहकावे में नहीं आया।

कठोपनिषद् में यमराज नचिकेता को संबोधित करते हुए कहते हैं, 'जो विद्या और अविद्या नाम से विख्यात हैं, वे दोनों अत्यन्त विरुद्ध स्वभाव वाली और विपरीत फल देने वाली हैं। इसलिए मैं तुझे नचिकेता को विद्याभिलाषी मानता हूँ, क्योंकि तुझे बहुत से भोगों ने भी नहीं लुभाया। संपत्ति के मोह से मोहित निरन्तर प्रमाद करने वाले अज्ञानी को परलोक नहीं सूझता। यह प्रत्यक्ष दीखने वाला लोक ही सत्य है, इसके सिवा दूसरा कुछ भी नहीं है - इस प्रकार मानने वाला अभिमानी मनुष्य बार-बार मेरे वश में आता है।'।

यमराज कहते हैं, विद्या और अविद्या अत्यन्त विपरीत स्वभाव वाली हैं। एक ब्रह्म-विद्या, आत्म-विद्या है, तो दूसरी भौतिक विद्या। विद्या इंसान के कल्याण के लिए है, वहीं अविद्या इंसान को मूर्च्छा और मूढ़ता की ओर ले जाया करती है। महावीर ने इसी अविद्या को मिथ्यात्व का नाम दिया। आचार्य शंकर ने इसे माया का नाम दिया। यमराज नचिकेता से इतने प्रभावित थे कि उसे कहने लगे, 'हे नचिकेता! मैं तुम्हें सच्चा विद्याभिलाषी मानता हूँ। तुम किसी प्रलोभन में नहीं आए। विद्या का रास्ता, आत्म-ज्ञान का रास्ता आसानी से नहीं खुला करता।'

यमराज ने नचिकेता के सामने राग के अनेक निमित्त खड़े किए, लेकिन नचिकेता विरक्त बने रहे। दुनिया के परम सत्य को प्राप्त करने की उनकी मुमुक्षा गहन थी। नचिकेता जानते थे कि दो नावों में सवारी करने से वे कभी किनारे नहीं पहुँच पाएँगे। तुलसीदास ने कहा है - जहाँ काम, तहाँ राम नहीं। दोनों साथ नहीं रहते। ऐसा नहीं हो सकता कि थोड़ा राग रखो और थोड़ा वैराग्य भी चाहो। या तो पूरे संसारी बन जाओ या फिर वैराग्य की राह के राही। आजकल मिक्सचर का जमाना है, नमकीन भी खट्टा-मीठा दोनों मिलाकर बनाया जाने लगा है। ऐसी स्थिति में तो मनुष्य त्रिशंकु बन जाया करता है।

वैराग्य का मार्ग समझाता है कि यह जगत् मरणधर्मा है। सब यहीं छूट जाने वाला है। कोई संबंध शाश्वत नहीं रहेगा। प्यार से बोलते हो, तो सबको अच्छा लगता है, नजर फेरते ही संबंधों की असलियत सामने आ जाती है। परस्पर एक-दूसरे की तारीफ करते हैं, तो सब अच्छा लगता है। थोड़ा-सा टेढ़ा बोल दो, तो बीस साल के संबंधों पर एक मिनट में पानी फिर जाता है।

ऐसा हुआ, एक ऊँट की शादी में गधा मेहमान बनकर आया। ऊँट को खूब सजाया गया था। गधे ने कहा, अहो रूपम्, वाह! क्या रूप है? ऊँट महाशय आप तो जँच रहे हो। ऊँट ने भी गधे से कहा, अहो ध्वनि, वाह! क्या आवाज है आपकी। परस्पर प्रशंसति। यह दुनिया का रिवाज है।

हम जब तक किसी की प्रशंसा किया करते हैं, तब तक वह हमारे अनुकूल रहता है। इसलिए आत्म-विद्या की राह पर चलना है, आत्म-ज्ञान प्राप्ति की राह पर चलना है, तो राग के दलदल से बाहर निकलना होगा। अनासक्ति के फूल खिलाने होंगे। प्रकृति परिवर्तनशील है। सब यहीं छूट जाएगा। विद्यावान व्यक्ति जीवन के तत्त्व को समझने का प्रयास करता है। यही मार्ग है, जो हमारे भीतर वैराग्य को जन्म देता है। वैराग्य कहाँ से आता है? किसी को जन्म लेते देखा, किसी को मरते देखा, तो बोध होता है। परिणाम के बारे में चिंतन-मनन करेंगे, तो उसी की कोख से वैराग्य पैदा होगा।

इंसान की हर क्रिया राग का ही परिणाम हुआ करती है। काम को जीवन की किसी भी गतिविधि से जोड़ दो, तो राग ही निकलकर आएगा। पर जब कार्य के परिणाम के बारे में चिंतन-मनन करते हैं, तो अपने आप बोध होने लगता है; फिर चाहे वह कुछ भी क्यों न हो। आपने भोजन किया, स्वादिष्ट लगा। परिणाम से ही भोजन का अर्थ मालूम हुआ। परिणाम से ही राग-वैराग का फैसला हो जाएगा।

चिंतन-मनन करें। मनन करने वाला कौन, मैं खुद। मैं एक मनुष्य हूँ, इसलिए इंसानियत मेरा पहला धर्म है। यह सोचते ही हम पशुता से ऊपर उठने लगेंगे। बाप को क्रोध आया। उसने पुत्र की पिटाई कर दी। वह भी इंसान ही तो है। आपके पास कई कर्मचारी हैं। किसी को आप ज्यादा, तो किसी को कम वेतन दे रहे हैं। उनका काम ही ऐसा है तब तो ठीक है, अन्यथा किसी का हक मार कर उसे कम वेतन दिया जा रहा है, तो यह ठीक नहीं है। उसके बारे में विचार करने लगेंगे, तो दया-भाव जागेगा और आप उसकी माली हालत को सुधारने के लिए कुछ और रकम देने की सोचेंगे। सकारात्मक व्यवहार करने को तत्पर हो जाएँगे।

मैं एक साधक हूँ - यह सोचा तो कोई भी गलत काम करते हाथ काँपेंगे और हमारा विवेक हमें सही राह पर ले आएगा कि ऐसा न करो, यह गलत है। तब हम सचेत होते चले जाएँगे। गलत मार्ग से हट जाएँगे। वैराग्य आया चिंतन और मनन से। खास तौर से परिणाम पर चिंतन करने से। किसी के पास सौ साड़ी हैं, जरा विचार करेंगे, तो नई साड़ी खरीदने के मोह से बचेंगी। खरीद भी लेंगी, तो मन में आएगा कि कम पहनी जाने वाली दो-तीन साड़ियाँ किसी जरूरतमंद को दे दें। चिंतन-मनन परिणाम पैदा करता है। इससे मार्ग मिलता है। श्रीमद् राजचन्द्र का एक पद है - कर विचार तो पाम। प्रेम के मार्ग का चिंतन करते रहेंगे, तो राग का जन्म होगा और श्रेय के मार्ग का चिंतन-मनन करते रहेंगे, तो वह चिंतन-मनन हमें वैराग की तरफ ले जाएगा।

पुरानी किताबों में एक कहानी आती है। एक किशोर जम्बू भगवान महावीर और सुधर्म स्वामी के संपर्क में आता है। उनके उपदेश सुनकर उसके मन में वैराग भाव जागते हैं। वह अपने माता-पिता से कहता है, मैं संन्यास लूँगा। माँ-बाप समझाते हैं, लेकिन वह नहीं मानता। माँ-बाप उसे कहते हैं, बेटा, तुम हमारे इकलौते पुत्र हो। हमारे बुढ़ापे का सहारा बनोगे। तुम हमारे धन के मालिक हो। अभी तो तुम्हें विवाह करना है, हमारा वंश बढ़ाना है। यह क्या संन्यास लेने की बात करते हो? जम्बू नहीं मानता। वह माता-पिता को समझाने लगता है कि यह धन एक दिन आप छोड़कर चले जाएँगे। मैं भी इसे एक दिन छोड़कर चला जाऊँगा। इसलिए मेरे लिए यह धन व्यर्थ है। आप व्यर्थ का मोह कर रहे हैं। मुझे धन की चाह नहीं है। मैं तो उस मार्ग पर कदम बढ़ाना चाहता



हैं, जहाँ पुण्यों की प्राप्ति होती है, जहाँ संन्यास का पथ मिला करता है, आत्म-ज्ञान का उजाला मिला करता है।

इस बारे में लंबा संवाद होता है। थक-हार कर माता-पिता जम्बू से कहते हैं, 'चलो तुम संन्यास ले लेना, लेकिन हमारी एक इच्छा पूरी कर दो।' वे सोचते हैं कि एक बार संसार-सुख ले लिया, तो फिर बात बन जाएगी। इधर जम्बू सोचता है कि माँ-बाप की एक इच्छा पूरी करने में क्या हर्ज है, संन्यास तो विवाह के बाद भी लिया जा सकता है। जम्बू का विवाह एक या दो नहीं, आठ सुन्दर युवतियों से कर दिया जाता है। सुहागरात को जम्बू सभी आठों पत्नियों को सामने बिठाकर समझाता है। पत्नियाँ भी कमाल की निकलती हैं। वे कहती हैं, अब तो आपके साथ ही जीवन की डोर बँध गई है। संसार में नहीं तो वैराग की राह पर ही सही, लेकिन चलेंगी आपके साथ। बात आगे बढ़ती है। उन युवतियों के माता-पिता भी यह जानकर वैरागी हो जाते हैं और संन्यास लेने का फैसला करते हैं।

इधर जम्बू कुमार के विवाह में आए धन को लूटने की नीयत से एक डाकू अपने पाँच सौ साथियों के साथ जम्बू कुमार के महल की छत पर बैठा जम्बू और उनकी पत्नियों के संवाद को सुन लेता है। उसका भी मन बदल जाता है, उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है। वह सोचता है - कैसा पापी का जीवन जी रहे हैं। एक यह आदमी है, जो सुहागरात के दिन अपनी पत्नियों के साथ वैराग्य की राह पर चलने को तत्पर है और एक हम हैं कि यह बेशक्रीमती जीवन चोरी-चकारी में ही बिता रहे हैं। वह चोर अपने साथियों के साथ संन्यास लेने का फैसला करता है। वह भीतर प्रवेश करता है और जम्बू कुमार को कहता है, मैं अपने साथियों के साथ साधुत्व की राह पर चलने को तैयार हूँ। और तब ऐतिहासिक दीक्षा होती है; एक साथ 527 लोग संन्यास लेते हैं। एक पल में ही उनमें संन्यास का उदय हो जाता है। सब-कुछ अनुकूल था और ऐसे में यश-वैभव को टुकराने वाले ही सच्चे संन्यासी हो सकते हैं। तब वे सचमुच नचिकेता हो जाते हैं, जिसने तमाम सुखों का प्रलोभन टुकरा दिया।

नचिकेता के सामने यमराज ने प्रलोभन के सौ-सौ निमित्त खड़े किए, लेकिन वह अनासक्त और वैरागी बना रहा। नचिकेता की परीक्षा लेते समय यमराज को अहसास हो गया कि नचिकेता ज्ञान का अभिलाषी है। उसमें अभीप्सा है। ऐसे शिष्य को तृप्त करना मेरा दायित्व है क्योंकि अविद्या में रहने वाले ठोकरें खाते रहते हैं- अंधा अंधे नूँ ठेलिया, दोनों कूप पड़े। ऐसे विद्या के अभिलाषी कहाँ मिलते हैं? ईमानदार तभी तक रहता है, जब तक उसे बेईमान बनने का मौका न मिले। शांति में तो सभी शांत रह सकते हैं, लेकिन अशांति का वातावरण बनने पर भी जो शांत रह सकता है, वही असली वीर

है, महावीर है। अविद्या में रहने वाले चाहे गुरु भी क्यों न हों, वे खुद भी कुएँ में गिरते हैं और अपने शिष्य को भी गिरा देते हैं।

दो तरह के गुरु होते हैं – एक तो वे जो पुस्तक के ज्ञानी होते हैं और दूसरे वे जो जीवन के अनुभव से ज्ञानी बनते हैं। पंडित वही है, जिसकी प्रज्ञा जाग गई। आजकल तो हर कोई पंडित बना फिरता है, नेता बना फिरता है। नेता अच्छा शब्द है, लेकिन आजकल इस शब्द ने अपना अर्थ खो दिया है। जो और कोई काम करने योग्य नहीं रहा, वह नेता बन जाता है। स्कूल में कक्षा का मानीटर बना। कॉलेज में गया, तो छात्रसंघ को पकड़ लिया। मौका मिलते ही शहर में वार्ड का चुनाव लड़ लिया। सितारे बुलंद हुए, तो विधायक बन गया। आगे से आगे राह मिलती चली गई। ऐसा नहीं है कि सारे नेता खराब ही होते हैं। अच्छे नेता भी हुए हैं, पर आजकल के अधिकांश नेता जनता की सेवा कम और अपनी सेवा ज्यादा करते हैं। छिछली राजनीति में लिप्त हो जाते हैं। जहाँ न नीति है न नीयत, उसी का नाम नेतागिरी है। पहले नेता वही बनते थे जिनमें नीति, नीयत और नेतृत्व का गुण होता था। आजकल तो हर कोई नेता या गुरु बन जाता है। एक मजेदार बात और देखिए, आजकल गुरु भी कई तरह के होने लगे हैं – प्रबंधन गुरु, आध्यात्मिक गुरु, गुरु घंटाल। गुरु बनते ही चेला ढूँढ़ने निकल पड़ते हैं। ऐसे लोगों ने ही गुरु शब्द को इतना हल्का बना दिया है कि लोग शिष्य बनने से भी परहेज करने लगे हैं।

केवल किताबें रटने से कोई ज्ञानी नहीं बन जाता। ईश्वर जिनको चाहता है, वही गुरु बन पाते हैं क्योंकि गुरु बनना एक विरल घटना है। ईश्वर जिस पर अनुग्रह बरसाते हैं, वही गुरु बन पाता है। गुरु-गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाँय। कबीर ने कमाल कर दिया। गुरु को गोविन्द के समकक्ष खड़ा कर दिया। ऐसी स्थिति बना दी किसे बड़ा माना जाए। गुरु में भी वही गोविन्द, वही भगवत्ता साकार हो जाए। भगवान कहने से कुछ नहीं होता। कहने को तो आजकल कुछ लोग खुद को भगवान भी कहने लगे हैं। लेकिन नाम से ही कोई भगवान थोड़े ही हो जाता है, भगवान की भगवत्ता के गुण भी चाहिए। केवल पुस्तकों के ज्ञान से खुद को भगवान या गुरु स्थापित करने वाले दुनिया को बेवकूफ बना सकते हैं, लेकिन यमराज को बेवकूफ नहीं बना सकते। उन्हें तो यमराज के चंगुल में आना ही पड़ेगा। इसलिए गुरु का पथ पकड़ो क्योंकि यही कल्याण का मार्ग है।

नचिकेता यमराज के पास पहुँचा, तो इसलिए कि यमराज को अनुभव से हुआ ज्ञान है। उनके ज्ञान में से कुछ मोती वह भी चुन लेना चाहता है। एक झेन कहानी है। एक प्रोफेसर झेन गुरु के पास ज्ञान-प्राप्ति के लिए जाता है। गुरु उसके लिए चाय बनाकर लाते हैं। गुरु अपने सामने दो कप रखते हैं और केतली में से चाय एक कप में

उंडेलने लगते हैं। कप भर जाता है, चाय प्लेट में गिरने लगती है। यह देख प्रोफेसर बोल उठता है, 'गुरुदेव, यह क्या कर रहे हैं, चाय बाहर गिर रही है।' गुरु कहते हैं, 'मैं तुम्हें यही समझाना चाहता हूँ। पहले से भरे हुए पात्र में कुछ भी डालोगे, तो वह बाहर ही गिरेगा। तुम भी पहले से भरे हुए हो। जाओ, पहले अपने पात्र को खाली करके आओ। रीते पात्र में ही कुछ भर सकता है। भीतर का अहम् छोड़ कर आओ। यह भाव कि मैं जानता हूँ, उसे छोड़कर आओ, तब तुम्हें मैं कुछ दे पाऊँगा।'

सच तो यह है कि 'मैं' और 'मेरा' का भेद मिटे, तब सब-कुछ 'हमारा' हो जाएगा। सब एक-दूसरे के सहयोगी हैं, यह बात समझ में आ जाए, तो व्यक्ति आत्म-ज्ञान के पथ का राही बन जाता है। भरे हुए कप में कुछ भी डालने से लाभ नहीं होगा। गुरु के पास जाओ, तो पहले अपने आप को खाली कर लो। तर्क-वितर्क के आधार पर आत्म-ज्ञान का रहस्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसके लिए समर्पण चाहिए। गुरु के साथ एकात्म भाव होने का संकल्प चाहिए कि अब 'मैं' मैं नहीं रहा, 'वो' हो गया हूँ। गुरु जो कह दे, वही सच। किसी को गुरु मानने का अर्थ है, अब 'मैं' मिट गया। तेरा तुझको अर्पण, क्या लागे अब मेरा।

केवल किताबों के ज्ञान से बात नहीं बनेगी। स्वयं के भीतर मुमुक्षा चाहिए, ताकि उस मुमुक्षा के बल पर हम अविद्या के दलदल से बाहर निकल सकें। यह तो रोशनी का पथ है। बाहर निकलने का पथ। जागने का पथ। आस्पेसंकी ने एक पुस्तक लिखी है। यह पुस्तक उसने अपने गुरु को समर्पित की है, जिसने उसे सोते हुए से जगाया। वही तो गुरु है जो सोते को जगा दे, अंधकार में भटकते को राह दिखा दे।

नरेन्द्र के मन में अभिलाषा जगी कि वह जाने, आत्मा क्या है? उसने हिमालय की यात्रा की। अनेक ऋषि-मुनियों के संपर्क में आया। हरेक ने उसे यही कहा, शास्त्रों को पढ़ो, उनमें लिखा है कि आत्मा क्या है? नरेन्द्र ने सब से यही कहा, आत्मा के बारे में आपका खुद का अनुभव क्या है, यह बताइए। पर कोई उसकी जिज्ञासा को शांत न सका। आखिर वह रामकृष्ण परमहंस के पास पहुँचा। नरेन्द्र ने पूछा, 'आत्मा है, ब्रह्म है, ईश्वर है, इस बारे में बताइए।' परमहंस पहले तो मुस्कराए, फिर कहने लगे, 'तुम मेरी परीक्षा लेने आए हो या शिष्य बनने? पहले तुम बताओ कि वास्तव में तुम्हें जानना क्या है? जो भी तुम जानना चाहते हो, उसके लिए पूरी तरह तैयार हो या नहीं?' परमहंस ने उसे एकाएक धक्का दिया। नरेन्द्र बेहोश हो गया। तीन दिन बाद उसे होश आया, तो वह ज्ञान के प्रकाश से भरा था। परमहंस ने उससे पूछा, 'अब भी कुछ जानना शेष है?' नरेन्द्र उनके चरणों में गिर पड़ा, कहने लगा, 'आज के बाद यह जीवन आपको समर्पित है गुरुदेव। नरेन्द्र नामक वह युवक विवेकानन्द के नाम से जाना गया।'

रामकृष्ण परमहंस जैसे गुरु मिल जाते हैं तो इसे जन्म-जन्मान्तर की साधना का परिणाम कहा जाएगा। अनुभव का ज्ञान रखने वाले गुरु कोई बड़े पंडित हों, यह आवश्यक नहीं है। रामकृष्ण परमहंस बहुत सामान्य पुरुष थे। ज़्यादा पढ़े-लिखे भी नहीं थे। पंडितों में अहंकार अधिक होता है, पांडित्य कम। शिष्य अनुभव से ज्ञानी बने गुरु के पास ही टिक सकता है। यमराज ने नचिकेता से कहा, 'जो हकीकत में विद्या के अभिलाषी हैं, वे ही आगे बढ़ सकते हैं। संपत्ति के मोह से निरन्तर प्रमाद करने वाले अज्ञानी को परलोक नहीं सूझता। यह प्रत्यक्ष दीखने वाला लोक ही सत्य है, इसके सिवा दूसरा कुछ नहीं है, इस प्रकार मानने वाला अभिमानी मनुष्य बार-बार मेरे वश में आता है।'

आज संपत्ति-प्रधान जमाना है। दुनिया में आजकल ज्ञान और चरित्र की क्रीमत कम होती जा रही है। सब चीजों का मूल्यांकन पैसे से किया जा रहा है; लेकिन यह चालाकी यमराज के आगे नहीं चल सकती। दुकानदारी करने वाले गुरु बने बैठे हैं। यही लोग महागुरु तक कहलाने लगे हैं। कौन सही, कौन गलत, इसका फैसला यमराज ही करते हैं। यमराज के सामने न तो पैसा चलता है और न कोई और चालाकी। वहाँ तो ज्ञान और चरित्र से ही बात बन सकती है। इसलिए ऐसे लोग ही बार-बार मेरे वश में आते रहते हैं। जन्म लेते हैं, मरते हैं, फिर जन्म लेते हैं, इस तरह संसार-चक्र चलता रहता है। यह कल चक्की कभी नहीं रुकती। इसी चलती चक्की को देखकर कबीर ने कहा था, 'चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोय, दो पाटन के बीच में साबित बचान कोय।'

यमराज कहते हैं, इस चक्की में आकर दुनिया बार-बार मेरे अधीन आती रहती है। सब पैसे के पुजारी बने बैठे हैं। पर एक बात तय है कि हर पुजारी को मृत्यु की शरण में अवश्य जाना होता है। मृत्यु के समय में भगवान को वही याद कर पाता है, जिसने जीवन में भगवान का नाम लिया हो। किराने की दुकान पर रात-दिन हल्दी, नमक, मिर्ची करने वाला मरते वक्त क्या राम-कृष्ण-महावीर को याद कर पाएगा ?

ऐसा हुआ कि एक सेठ मरणशय्या पर था। साँसें टूटने ही वाली थीं। उसने पूछा, 'बड़ा बेटा कहाँ है ?' बताया, 'सिरहाने खड़ा है।' छोटा कहाँ है ? बताया गया, 'आपके दाएँ खड़ा है।' सेठ ने फिर पूछा - 'मँझला कहाँ है ?' पत्नी ने समझाया - 'आपके बाएँ खड़ा है।' सेठ नाराज हो गया, 'तीनों यहाँ हैं तो दूकान पर कौन है ?'

जो आदमी मरते समय भी यही सोचता रहेगा कि दूकान पर कौन है, तो वह बार-बार मृत्यु के वश में आता रहेगा। उसका उद्धार कभी नहीं होगा। मुक्ति वही पाते

हैं, जिनमें चेतना जग जाती है। तुम्हारी चिता जले, उससे पहले अपनी चेतना जगा लो। तुम्हारी अस्थियाँ गंगाजी में बहाई जाएँ, उससे पहले अपनी आस्थाएँ जगा लो। दशरथ के सिर पर एक बाल सफेद आ गया था, तो वे संसार से विरक्त हो उठे थे। विश्वामित्र ने दशरथ की चेतना के तार छेड़ते हुए कहा था कि राजन्! मैं भी कभी मोह में पड़ गया था। मेनका के क्षणिक मोह में मैं अपनी सारी तपस्या भंग कर बैठा। विश्वामित्र के शब्दों से दशरथ की चेतना जगी। उन्होंने राम को गद्दी सौंपना तय कर लिया और खुद संन्यस्त होकर प्रभुजी की प्रीत में निकलना तय कर लिया -

केश पके, तन प्राण थके,  
 अब राग-अनुराग को भार उतारो।  
 मोह महामद पान कियो,  
 अब आतम ज्ञान को अमृत ढारो॥  
 जीवन के अंतिम अध्याय में  
 त्याग करो और दीक्षा धारो।  
 पुत्र को सौंप के राज और पाट,  
 करो तप आपनो जनम सुधारो॥

ज्यादा मोह-माया में मत उलझो। अपनी मुक्ति की व्यवस्था में लगे। कहीं कोई कैकई आपकी दुर्गति न कर बैठे। कहीं ऐसा न हो कि नश्वर चीजों और संबंधों के मोह में हम जन्म-मरण के चौरासी के चक्कर में ही भटकते रहें।

कहते हैं - एक सेठ मरने वाला था। पड़ोसी दर्जी का लड़का वहाँ मौजूद था। उसने सेठ की जीवन के प्रति मूर्च्छा देखी तो उसने उसे सीख देने की सोची। उसने सेठ से कहा, 'मेरे पिताजी कुछ दिन पहले स्वर्ग सिंघार गए थे। उन्हें इन्द्रदेव ने सूट सिलने को कहा है। समस्या यह है कि पिताजी सूई तो यहीं भूल गए। आप वहाँ जाने वाले हैं, कृपया यह सूई उन्हें दे दीजिएगा।' सेठ ने सूई अपने कुर्ते में खोस ली। फिर उसे ख्याल आया, अरे, मरते ही कुर्ता तो यहीं रह जाएगा। उसने सूई अपनी बाँह में चुभो ली। दर्द तो हुआ, पर पड़ोस का मामला था इसलिए दर्द भी सहन कर लिया। थोड़ी देर में ख्याल आया - शरीर के साथ सूई स्वर्ग तक नहीं जा पाएगी क्योंकि शरीर तो यहीं खाक हो जाएगा। रात भर विचलित अवस्था रही। सेठ ने सुबह दर्जी के लड़के को बुलाया और सूई देते हुए कहा - 'भाई, माफ करना। मैं यह सूई अपने साथ नहीं ले जा सकता क्योंकि

मेरा कुर्ता और मेरा शरीर यहीं रह जाएगा।' दर्जी के बेटे ने कहा - 'अंकल, अगर आपको यह बोध हो ही गया है कि सब-कुछ यहीं छूट जाएगा तो फिर आप मोह-माया क्यों पाल रहे हैं? धन से अपना मोह हटाइए और धर्म से अपना नाता जोड़िए।'

सेठ को समझ आ गई। मोह टूट गया। उन्होंने जनता की भलाई के लिए एक चेरिटेबल ट्रस्ट बना दिया। अंतिम घड़ियों में भगवान का भजन करते हुए उन्होंने नश्वर देह का त्याग किया। लोगों ने देखा कि अंतिम घड़ी में सेठ की आँखों में प्रायश्चित्त के आँसू थे। सेठ के चारों ओर प्रकाश बरस रहा था। कहने के नाम पर उनकी मृत्यु भले ही हो गई हो, पर वास्तव में वे मृत नहीं, अमृत हो गए, मुक्त हो गए।

यह सच है कि कोई चीज साथ जाने वाली नहीं है। गीता कहती है, क्या साथ लेकर आए थे और क्या साथ लेकर जाओगे। तुम्हारा क्या है? जो कुछ लिया, यहीं से लिया, यहीं छोड़कर जाना है। क्यों न ऐसे कर्म करो कि प्रेय और श्रेय में भेद करना आ जाए। कहीं ऐसा न हो कि प्रेय के पथ पर श्रेय की हत्या हो जाए। हमारे कल्याण की हत्या नहीं होनी चाहिए। आँख खुल जाए, तो संसार में रहकर भी मुक्ति का कमल खिला सकते हैं; अन्यथा भोग में उलझे रहोगे और आत्म-ज्ञान की बजाय धन और रमणियों की चाह करते रहोगे। मुक्ति चाहिए, तो प्रयास करने होंगे। जो कर्म करते हैं, वे परिणाम के बारे में सोचते हैं। जो परिणाम के बारे में सोचते हैं, वे ही राजचन्द्र बन सकते हैं।



# 13

## जिज्ञासा: आत्मबोध का पहला कदम

हमारे मानवीय जीवन में आध्यात्मिक प्रगति के लिए जिस पहले सोपान की आवश्यकता होती है, वह है - इंसान के मन में जगने वाली आध्यात्मिक जिज्ञासा। जीवन में जिज्ञासा का वही मूल्य है जो किसी प्यासे के लिए पानी का होता है। प्यास और जिज्ञासा समानार्थक शब्द हैं। प्यास हो, तो पानी मूल्यवान हो जाता है और जिज्ञासा हो, तो समाधान बेशक्रीमती हो जाया करता है। जरा सोचिए, नचिकेता यमराज के सामने उपस्थित हुए, तो उनकी उपस्थिति सार्थक हो गई। हमारे सामने यमराज आ जाएँ, तो हम शायद उनसे मुँह छिपाते फिरेंगे क्योंकि हम मृत्यु को सामने देख भयभीत हो जाया करते हैं। नचिकेता एक आत्म-जिज्ञासु की भाँति यमराज के सामने उपस्थित होकर अपनी जिज्ञासाओं को शांत करना चाहता है।

न्यूटन ने एक पेड़ से टूट कर नीचे गिरे सेब को देखा, तो उसके मन में एक जिज्ञासा ने जन्म लिया। उसी समय एक बहुमंजिला इमारत से एक गेंद गिरी और वापस ऊपर उठ गई। इस घटना ने उनके भीतर पैदा हुई जिज्ञासा को और बढ़ा दिया। न्यूटन की इसी जिज्ञासा ने विश्व को गुरुत्वाकर्षण का महत्त्वपूर्ण सिद्धांत दिया। न्यूटन ही नहीं, दुनिया के प्रत्येक वैज्ञानिक अनुसंधान, आविष्कार और सिद्धांत के पीछे जिज्ञासा का ही हाथ रहा है।

नचिकेता एक जिज्ञासु बालक की भाँति यमराज के पास पहुँचे हैं। हर जिज्ञासु बालक निरन्तर सीखता रहता है। जो माता-पिता अपने बच्चों की जिज्ञासाओं को शांत नहीं करते, वे बच्चों का भला नहीं करते। आदमी को जीवन भर जिज्ञासु बने रहना चाहिए ताकि रोज नए सोपान की यात्रा हो सके, रोज नए आविष्कारों का रास्ता खुल सके। जिज्ञासा ने ही हमें नित्य नये आविष्कार दिए हैं जिनसे हमारा जीवन सुखमय हो सका है।

जिज्ञासा महत्त्वपूर्ण है। मनुष्य के मन और मस्तिष्क में प्रश्न उठते रहने चाहिए। जितने प्रश्न उठेंगे, दिमाग उनके उत्तर पाने के लिए उतना ही सक्रिय होगा। जिज्ञासा से नए-नए समाधान खोजे जा सकते हैं। यदि किसी व्यक्ति के मन में कोई जिज्ञासा जन्म नहीं लेती है तो समझिए, उस व्यक्ति का जीवन एक सीमित दायरे में आ गया है। वह प्रकाश की ओर नहीं बढ़ रहा। जीवन अंधेरो में ही सिमट रहा है।

महावीर ने संन्यास लिया, बुद्ध ने जंगल की राह पकड़ी तो आखिर क्यों? उनके मन में एक आध्यात्मिक जिज्ञासा ने जन्म ले लिया था कि आखिर 'मैं कौन हूँ?', 'कहाँ से आया हूँ?', 'कहाँ जाऊँगा?' जैन आगमों में एक पवित्र आगम है आचारांग सूत्र। इसमें महावीर के उपदेशों का सार है। इसमें बताया गया है कि व्यक्ति नहीं जानता कि 'वह कौन है?', 'कहाँ से आया है?' 'कहाँ जाएगा?' लेकिन वह जान लेता है गुरुओं से, शास्त्रों से। साधना की शुरुआत कहाँ से होती है, जिज्ञासा से। विद्यार्थी के विद्यार्जन की शुरुआत भी होती है जिज्ञासा से।

बहुत साल पहले मेरे हृदय में जिज्ञासा जगी कि 'आत्मा है या नहीं?' मैं दुनिया भर की किताबें पढ़कर उनमें से प्राप्त ज्ञान दुनिया को परोस रहा हूँ। पहले मैं सिर्फ मुनि था लेकिन इस जिज्ञासा ने मुझे साधक बना दिया। तब मैं कर्नाटक राज्य में स्थित हम्फ्री की गुफाओं में गया। वहाँ एक दिव्य आत्मा रहा करती थी, जिन्हें सब काकी माँ कहते थे। उन्होंने साधना में मेरी बहुत मदद की। वे इस राह पर मेरे लिए बहुत उपयोगी बनीं। जिज्ञासा यही थी कि आत्मा नाम की कोई चीज़ है भी या नहीं? कहीं ये सिर्फ किताबी बातें तो नहीं हैं। यह मेरा सौभाग्य है कि हम्फ्री की उन गुफाओं में मैंने जीवन का प्रकाश उपलब्ध किया। जीवन से सीधा साक्षात्कार किया। आज मैं श्रद्धापूर्वक, विनयपूर्वक, ज्ञानपूर्वक, बोधपूर्वक यह कह सकता हूँ कि प्राणी मात्र के भीतर एक चैतन्य-शक्ति, आत्म-शक्ति समाहित है। जो इसे समझ ले, वह उसके करीब हो जाता है; जो नहीं समझ पाता, वह दुनिया के मोह पाश में उलझा रह जाता है।

हर व्यक्ति आत्म-साक्षात्कार कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति जिज्ञासा बालक बनकर ज्ञान की प्राप्ति कर सकता है। एक व्यक्ति व्यापारी बनकर व्यापार की ऊँचाइयों को प्राप्त कर सकता है। इसी तरह एक व्यक्ति साधना के मार्ग पर क्रम बढाकर उस मंजिल को उपलब्ध कर सकता है जिसके बारे में वह सोचता है। धन व्यापार का परिणाम है तो आत्म-साक्षात्कार साधना का प्रतिफल है। जो चलेगा, वह आगे बढ़ेगा। केवल बातें करने वाला वहीं खड़ा रह जाएगा। हिमालय के बारे में केवल बातें ठोकते रहने से भला कोई हिमालय पर चढ़ पाया है? विद्यार्जन करना है तो विद्यार्थी तो बनना ही पड़ेगा, विद्यालय में दाखिला लेना ही होगा।



कोई व्यापारी बनना चाहता है, तो उसे दुकान खोलनी ही पड़ती है। ग्राहकों से मगजमारी करनी ही पड़ती है। इसी तरह किसी को आत्म-साक्षात्कार करना है, तो गृहस्थी के मोह-जाल से निकलना ही पड़ेगा। उस तत्त्व को प्रधानता देनी हो होगी, जो आत्म-तत्त्व कहलाता है।

साधना के मार्ग पर चलने वाले को अपने मन का कलश खाली करके साथ लेना ही होता है। ब्रह्म-चेतना, आत्म-चेतना सबके भीतर समाहित रहती है। ऐसा आदमी कुछ भी करे, उसके भीतर एक प्यास रहती है - आत्म-चेतना की तलाश की प्यास। यह जिज्ञासा ही साधक की प्रेरणा बनती है।

कोई आदमी साधना के मार्ग पर नहीं चल रहा है, तो इसका अर्थ है कि अभी तक उसके भीतर प्यास पैदा नहीं हो पाई है। कुछ पाने के लिए किया जाने वाला प्रयास इस बात पर निर्भर करता है कि उसके भीतर की प्यास कितनी है। किसी को प्यास लगी होगी, तो वह सारे काम छोड़कर पहले अपना गला तर करना चाहेगा। पानी माँग कर पीएगा। कहीं यँ ही पानी नहीं मिलेगा, तो पैसे खर्च करके भी पीएगा। आखिर प्यास तो बुझानी ही है। वह तब न तो पानी पिलाने वाले की जाति पूछेगा और न कोई और सवाल उसके दिमाग में आएगा। उस समय तो उसे सामने वाले के हाथ में पकड़ा पानी का कलश दिख रहा होगा।

एक ब्राह्मण किसी गाँव में पहुँचा। वह लंबा सफर तय करके आया था। उसने गाँव में प्रवेश करते ही जो पहला घर मिला, वहाँ जाकर पानी माँगा। घर की मालकिन ने उन्हें पानी पिलाया। पानी पीकर, कुछ देर साँस लेने के बाद उस ब्राह्मण ने उस महिला से उसकी जाति पूछी। महिला कहने लगी, 'पानी तो पी लिया, अब जाति पूछने से क्या फायदा? फिर भी बता देती हूँ, मैं अछूत हूँ।' प्यास कुछ भी पूछने का मौका ही नहीं देती।

प्यास है तो आदमी साधना के पथ पर कदम बढ़ा देगा, अन्यथा वह बैठा ही रहेगा और बैठे रहने वालों के पास कुछ भी चल कर नहीं आया करता। नचिकेता यमराज के सम्मुख एक जिज्ञासु बालक की भाँति उपस्थित हुआ है। स्वाभाविक है कि आध्यात्मिक जिज्ञासा होगी, तो कोई भी बिना किसी प्रलोभन में आए, अपनी जिज्ञासा को शांत करना चाहेगा। प्यास यदि पानी की है, तो लड्डू खाने से शांत नहीं होगी। पानी की प्यास, पानी पीने से ही शांत होगी। आध्यात्मिक जिज्ञासा का मामला भी ऐसा ही है।

यमराज ने नचिकेता के सामने प्रेय और श्रेय, दोनों मार्ग प्रस्तुत किए। उनके बारे में गुणावगुण भी बताए। उसे तीन लोकों का राज्य, स्वर्ग की अप्सराएँ तक देने का प्रलोभन दिया, लेकिन वह किसी भी प्रलोभन में न आया। तब यमराज को कहना पड़ा,

‘हे नचिकेता ! तुम धन्य हो। तुम्हारे जैसे जिज्ञासु शिष्य ही हमें उपलब्ध हुआ करें।’ ऐसे निलोभी, निर्मोही शिष्य ही आत्म-ज्ञान के बारे में जानने के अधिकारी हुआ करते हैं। नचिकेता जैसे अनासक्त ही मृत्यु का रहस्य जानने की जिज्ञासा रख सकते हैं और जो जिज्ञासा रखता है, उसे उसका समाधान भी मिलता है।

तब यमराज ने नचिकेता से जो कुछ कहा, कठोपनिषद् में उसे यूँ कहा गया: ‘जो बहुतों को तो सुनने को भी नहीं मिलता, जिसको बहुत से लोग सुनकर भी नहीं समझ सकते, ऐसे गूढ़ आत्म-तत्त्व का वर्णन करने वाला महापुरुष आश्चर्यमय है। उसे प्राप्त करने वाला भी बड़ा कुशल कोई एक ही होता है और जिसे तत्त्व की उपलब्धि हो गई है, ऐसे ज्ञानी महापुरुष के द्वारा शिक्षा प्राप्त किया हुआ आत्म-तत्त्व का ज्ञाता भी आश्चर्यमय है।’

आत्म-तत्त्व और इसका संदेश देने वाला, दोनों ही संसार में दुर्लभ हैं। मीठी-मीठी बातें करने वाले बहुत से मिल जाएँगे, लेकिन सच्ची बात कहने वाला दुर्लभ है। आत्म-ज्ञान को जीना तो दूर, उसके बारे में कहने वाले भी नहीं मिलते। जिस व्यक्ति को भोगों में रस आता है, उसे योग में रस कैसे आएगा? वह सुबह क्यों उठेगा? घूमने क्यों निकलेगा?

यमराज कहते हैं - ‘आत्म-ज्ञान का उपदेश देने वाला और सुनने वाला, दोनों ही सद् शिष्य कहाँ मिला करते हैं? इनका मिलना दुर्लभ होता है।’ याद रखें, उपदेश वह सार्थक नहीं होता जिसे सुनने के बाद कोई तारीफ़ करे, वाह, क्या बात है, मजा आ गया। असली उपदेश वह होता है जिसे आदमी सुनकर एकांत में जाए, कुछ देर अकेला बैठे और विचार करे कि यह बात क्यों कही गई। जो बात हमारी अंतर्आत्मा को हिला दे, वही उपदेश सार्थक होता है, अन्यथा पर ‘उपदेश बहुत कुशल तेरे।’

ज्ञान वह जो आदमी को गंभीर बनाए, उसमें प्रेरणा जगाए। जरा सोचो, कहाँ से आए हो, कहाँ जाओगे। यह संसार तो संयोग है। यहाँ पत्नी भी संयोग है और पति भी। सब यहीं छूट जाएँगे क्योंकि शरीर तो मरणधर्मा है। जब शरीर का ही ठिकाना नहीं रहेगा, तो फिर ये जमीन-जायदाद, धन-संपत्ति किस काम आएँगे। कोई ज्ञानी तो यह नहीं कहेगा कि यह जमीन मेरी, जायदाद मेरी है।

यह बड़ा अद्भुत युग है। यहाँ कहीं अच्छे श्रोता नहीं मिलते, तो कहीं अच्छे संदेश देने वाले उपलब्ध नहीं होते। भोग, धन, बाहर का लेन-देन इतना प्रभावी हो गया है कि आत्मा जैसी बात उठाना बेवकूफी-सा लगता है। लोग अमीर हो गए हैं लेकिन धर्म से उनका कोई लेना-देना नहीं रहा। मंदिर तभी जाते हैं, जब मुसीबत में फँसते हैं। विद्यार्थी परीक्षा के समय भगवान के प्रसाद चढ़ाता है, तो राजनेता चुनाव के समय मंदिर

बनवाने के लिए अपने कोष से पैसे जारी करता है। चोर को भगवान तब याद आते हैं, जब वह चोरी करते पकड़ा जाता है। गरीब को गरीबी में भगवान याद आते हैं।

नचिकेता जैसे लोग धन्यभागी होते हैं जिन्हें सौ-सौ प्रलोभन भी मिल जाएँ, तब भी वे आत्म-भाव में रहते हैं। प्रलोभन को पीठ दिखाने वाला ही असली संत होता है। कोरे एकादशी का व्रत करने से कोई ज़्यादा परिणाम आने वाला नहीं है। सब कुछ है, तब भी भीतर उपवास के भाव उठें, तो समझ लेना असली साधना की शुरुआत हो रही है। मजबूरी में तो आदमी कुछ भी कर लेगा। खाना नहीं मिला, तो इसे उपवास तो नहीं कहेंगे। साधना के भाव से आए हो, तो उठते-बैठते भी साधना हो जाएगी। इसलिए यमराज ने कहा - 'आत्म-ज्ञानी और आत्मा का उपदेश देने वाला, दोनों ही दुर्लभ हैं।'

एक संत हुए हैं श्रीमद् राजचन्द्र। वे ईडर के रहने वाले थे। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी उनके साहित्य में रुचि ली और उन्हें अपने गुरु की तरह माना। मैं भी उन्हें गुरु का सम्मान देता हूँ। वे गहरे आत्म-साधक हुए। हम्पी की कंदराओं में साधना करते हुए मैंने उनके साक्षात् दर्शन किए हैं। एक दफ़ा जब मैं अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा ब्रह्मांड की यात्रा के लिए निकला, तो मुझे पहुँचाने जो महापुरुष एक प्रकाश-पुंज के रूप में मेरे साथ आए, वह श्रीमद् राजचन्द्र ही थे। उनके जीवन से जुड़ी कई कहानियाँ कही जाती हैं। उनकी सादगी ऐसी थी कि इससे प्रभावित होकर जैन परंपरा के स्थानकवासी संत उनके पास पहुँचे। राजचन्द्र आत्म-संत बन गए थे। केवल कपड़े पहनने से या न पहनने से कोई संत नहीं बन जाता। मन बदल जाना चाहिए, भीतर का रूपांतरण हो जाना चाहिए। मन चंगा तो कठौती में गंगा।

श्रीमद् राजचन्द्र के पास एक संत लघुराज स्वामी पहुँचे। उन्होंने प्रणाम किया, तो राजचन्द्र ने कोई जवाब नहीं दिया। लघुराज वहीं बैठ गए। पूरी रात बीत गई। संत राजचन्द्र को निहारते रहे। सुबह राजचन्द्र ने आँख खोली तो संत ने कहा, गुरुदेव मुझे गुरु-मंत्र दीजिए। लघुराज स्वामी ने 108 बार पंचांग नमस्कार कर निवेदन किया, तब श्रीमद् राजचन्द्र ने जो कहा, वह समझने योग्य है। उन्होंने लघुराज स्वामी से कहा - सहजात्म स्वरूप परमगुरु। तुम्हारा सहज स्वरूप ही तुम्हारा दिव्य गुरु है। सहजात्म स्वरूप परमगुरु - एक दिव्य मंत्र बन गया। लघुराज स्वामी तो इसे ही जपते रहे। यही उनके लिए गुरु-मंत्र बन गया। इस मंत्र की धुन लगाते-लगाते, इस मंत्र का श्वोशवास में सुमिरन करते, इसके स्वरूप का ध्यान करते हुए लघुराज स्वामी ने आत्म-बोध और आत्म-प्रकाश को उपलब्ध किया।

लघुराज स्वामी ने सीखा कि साधक के लिए साहसी होना ज़रूरी है। साहस, निर्भयता के गुण वाला ही आगे बढ़ सकता है। नकारात्मक विचार वाला साधना के पथ

पर नहीं चल सकेगा। योगीराज सहजानन्द महाराज के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने वाहन का उपयोग किया। संपूर्ण जैन परंपरा में संतों के लिए वाहन का उपयोग वर्जित रहा है। लेकिन योगीराज सहजानन्द ने देखा कि उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने में छह-छह माह लग जाते हैं और यून समय पैदल चलने में ही व्यर्थ बीत जाता है। तब उन्होंने किसी की परवाह न करते हुए वाहन का सहारा लिया। उन्हें संघ से निष्कासित कर दिया गया, तो भी वे विचलित नहीं हुए। किसी भी गच्छ या समुदाय का सौभाग्य होता है कि उसे योगीराज सहजानन्द जैसे अच्छे संत मिलते हैं। यून किसी आध्यात्मिक संत को निष्कासित करते रहे, तो गच्छ या समुदाय का भट्टा ही बैठ जाएगा। यह धर्म-संघ का अनुशासन नहीं, राजतंत्र कहलाएगा।

संत को किसी दायरे में बाँधना ही गलत है। संत वह है जो सब चीजों से स्वतंत्र हो गया। कोई भी व्यक्ति अपने कल्याण के लिए संत बनता है। संत को समाज के बीच नहीं आना चाहिए। लोग नियमों के वशीभूत होकर उन्हें अनुशासन में बाँधना चाहते हैं। उन पर इतने अंकुश लगा देते हैं कि कल्याण का मार्ग तो कहीं पीछे छूट जाता है। कोई भी संत गच्छ-परम्परा के लिए संत नहीं बना करता। वह तो अपने, स्व के कल्याण के लिए संत बनता है। संत को समाज में आना भी नहीं चाहिए, अन्यथा समाज के लोग उनके लिए बंधन की बेड़ी बन जाया करते हैं। कुछ मर्यादाएँ गरिमापूर्ण हुआ करती हैं, लेकिन इन मर्यादाओं के चक्कर में संतों पर इतने अंकुश का बोझ डाल दिया जाता है कि योगीराज सहजानन्द जैसे संत तो यहाँ से निकल जाते हैं, लेकिन ज्यादातर संत तो इन्हीं नियमों, मर्यादाओं में ही फँस कर रह जाते हैं।

योगीराज सहजानन्द जी निर्भय और साहसी संत थे। उनकी गुफा में शेर भी आया करते थे। मैं स्वयं उस गुफा में रहा, साधना की। बड़ा तपोमय स्थान है। आत्म-ज्ञान का मार्ग बहुत कठिन है। यहाँ दाता भी कठिनता से मिलता है, तो पाने वाले भी मुश्किल से ढूँढ़ पाते हैं। लघुराज स्वामी ने 108 बार प्रणाम किया, तब कहीं जाकर उन्हें श्रीमद् राजचन्द्र से गुरु मंत्र मिला। उनके सामने दो ही विकल्प थे कि या तो वे अपने वेश और परंपरा को बरकरार रखें या फिर गुरु ने जो कह दिया उसी राह पर चल पड़ें। वे तो राजचन्द्र के शिष्य बन गए। यही आत्म-ज्ञानियों का पथ है। यह पथ हमारे लिए तभी लाभकारी हो सकता है, जब हम किसी भी तरह की कुर्बानी देने को तैयार हो जाएँ।

ऊपर उठना ज़रूरी है - संसार से, मत से, मज़हब से। सारी सरपच्चियों से ऊपर उठना ज़रूरी है। ऐसे में दुर्लभ आत्म-ज्ञान का रहस्य, मृत्यु का रहस्य पाना आसान हो जाया करता है। यमराज भी नचिकेता जैसे शिष्य को पाकर धन्य हो जाते हैं। गुरु से तो सतपात्र की ही झोली भर सकती है। यमराज जैसे गुरु भी तब नचिकेता जैसे शिष्य के

पात्र में अपना सारा ज्ञान उँडेलने को तत्पर हो उठते हैं। धरती पर यदि पानी की प्यास पूरी तरह जाग उठी है, तो बादल बरसेंगे जरूर; वे किसी को प्यासा नहीं रखेंगे। यमराज ने कहा - 'हे प्रियतम! जिसको तुमने पाया है, यह बुद्धि तर्क से नहीं मिल सकती। यह तो दूसरे के द्वारा कही हुई ही आत्म-ज्ञान में निमित्त होती है। सचमुच ही तुम उत्तम धैर्य वाले हो। हे नचिकेता, तुम्हारे जैसे पूछने वाले ही हमें मिला करें।'

यमराज नचिकेता जैसा ज्ञान का प्यासा शिष्य पाकर प्रसन्न थे। नचिकेता का त्याग, निर्मोह-दशा देख प्रफुल्लित हो गए। यमराज ने कहा - तुमने स्वर्ग का राज्य तक टुकरा दिया, यह तुम्हारी बुद्धि केवल शास्त्रों को पढ़ने से नहीं आने वाली। यह तो उन्हीं के भीतर पैदा होती है जिनके भीतर जिज्ञासा जाग जाती है। अतिमुक्त राजकुल में जन्मा था, लेकिन संन्यास ले लिया। निवृत्ति के लिए जंगल गया होगा। वहाँ छोटे-छोटे नाले बह रहे थे। उसने अपना काष्ठ पात्र पानी में छोड़ दिया - ओह, मेरी नैय्या तैर रही है। तब काष्ठ पात्र दिमाग से उतर गया। धन्य है प्रभु, मेरी नैय्या आपने पार लगा दी। आठ वर्ष में ही अतिमुक्त मुक्त हो गया।

अधिकांश लोगों में अस्सी साल की उम्र में भी तिरने के भाव पैदा नहीं होते। ऐसे लोग महाराज बन जाएँगे तब भी वही उपधान, प्रतिष्ठा और पदयात्रा में लगे रहेंगे। वही घाणी के बैल का सफर। घूमने का क्रम जारी रहेगा। दुनिया अद्भुत है, इसे समझने वाले ही समझ सकते हैं। बाकी तो पहले से ही डूबे थे और अब भी डूबे ही रहेंगे। इस भव से पार लगने के भाव सौभाग्य से ही आते हैं। पत्नी की सेवा खूब कर ली, पति के लिए भी काम खूब कर लिया, अब कुछ सेवा अपनी भी कर लो। खुद को भी पार लगा लो। औरों की सेवा खूब की, खुद की सेवा याद ही न आई। खुद को तारना खुद की सबसे बड़ी सेवा है।

यमराज कहते हैं - 'हे प्रियतम! तुमने जिस बुद्धि को उपलब्ध किया है, वह तर्क से नहीं मिल पाती। इसमें बड़ी माथाफोड़ी है। ज्ञान की चर्चा में उससे करता हूँ जो जिज्ञासु हो। प्यासा हो तो उसे पानी पिलाना धन्यता का आनन्द देता है। बिना प्यास किसी को पानी नहीं पिलाया जा सकता। उसे नदी के पास ले जाकर भी खड़ा कर दोगे, तब भी वह पानी नहीं पीएगा।'

आत्म-ज्ञान तर्क से नहीं मिल पाता। कबीर ने कहा था, ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय। यहाँ लिखा-लिखी से काम नहीं चलता, यहाँ तो कबीर की भाषा में चलना पड़ता है। ये कबीर हैं, यहाँ तर्क से आत्म-बुद्धि को प्राप्त नहीं किया जा सकता। एक गुरु ने शिष्यों से कहा, कल सब लोग तैयार होकर आना, मैं एक ही प्रश्न पूछकर तुम्हारी परीक्षा लूँगा। अगले दिन सारे शिष्य गुरु के सम्मुख मौजूद थे। गुरु ने पूछा, कोई

बता सकता है, उसके सिर पर कितने बाल हैं ? सारे शिष्य चुप थे। सिर्फ एक शिष्य ने हाथ ऊपर उठाया। गुरु प्रसन्न हुए, चलो कोई तो है जो जानता है। गुरु ने उसे उत्तर बताने को कहा। शिष्य ने जवाब दिया, मेरे सिर पर 11 लाख, 11 हजार 111 बाल हैं। गुरु हैरान; उन्होंने फिर पूछा, तुमने इतने बाल गिने कैसे ? शिष्य ने कहा, गुरुदेव आपने एक ही सवाल पूछने का वादा किया था, दूसरे का जवाब नहीं दिया जा सकता।

यह हुआ तर्क-वितर्क। इसमें पड़ोगे, तो ज्ञान की मिट्टी पलीत ही करोगे। शास्त्रों का अपमान करोगे। हमारे पवित्र शास्त्र जीने की कला सिखाते हैं। इनमें तर्क-वितर्क के लिए कोई स्थान नहीं है। महावीर ने अनेकांत का सिद्धांत दिया। मैं भी ठीक हूँ, तुम भी ठीक हो। दोनों की बात में सच्चाई हो सकती है। व्यक्ति गुणानुरागी बन जाए, तो उसे हर जगह अच्छी चीज मिल जाएगी।

एक आदमी संत के पास गया। पूछने लगा - महाराज, मैं अधम हूँ, नीच हूँ, आप मेरा उद्धार करें। संत ने कहा, पहले एक काम करो। अपने गाँव में जाकर देखो, तुम्हें तुमसे भी अधम, नीच कौन मिलता है ? वह गाँव गया। गाँव में प्रवेश करते ही उसे एक कुत्ता नजर आया। उसे लगा, यह उससे भी ज्यादा नीच है। लेकिन फिर विचार किया, तो लगा कि यह कुत्ता अपने मालिक के प्रति वफ़ादार है। सो कुत्ता मुझसे ज्यादा अधम नहीं है। वह आगे बढ़ा। उसे काँटों भरी झाड़ी दिखी। लगा, यह काँटे किसी काम के नहीं हैं, लोगों के बदन में चुभ जाँएँ तो खून निकल आता है। लेकिन थोड़ा आगे जाते ही उसे एक खेत के चारों तरफ काँटों की बाड़ दिखाई दी। उसे समझ आया, ये काँटे भी किसी के काम आ रहे हैं। लौटकर उसने गुरु से कहा - मुझसे नीच कोई नहीं मिला। गुरु ने उसे गले लगा लिया, और कहा - तुम मेरे शिष्य बनने योग्य हो, तुम्हारा तो उद्धार अपने आप हो गया। जो अपने आपको सबसे अधम, नीच समझे; वही शिष्य बन सकता है। जो अपने में अवगुण और दूसरों के गुण ही देखे, वही सच्चा शिष्य और साधक बन सकता है।

ज्ञान तर्क-वितर्क से नहीं आता, किताबों से नहीं आता। ज्ञान तो जीवन की किताब पढ़ने से आता है। अपने आपको पढ़ो, खुद का मूल्यांकन करो। भौतिक शिक्षा भौतिक जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करने के काम आ सकती हैं, लेकिन आध्यात्मिक शिक्षा जीवन की दिशा बदल सकती है। आध्यात्मिक उन्नति तभी हो सकती है, जब व्यक्ति खुद के अवगुणों को पहचाने। दुनिया में अनेक ऐसे ज्ञानी हुए जो कभी स्कूल नहीं गए, लेकिन उनके लिखे ग्रंथों पर आज लोग पीएचडी करते हैं। उन्होंने अपनी सधुक्कड़ी भाषा में जो कुछ कहा - उससे लाखों का भला हो रहा है। इसलिए अपनी आत्मा से संवाद करें।

यमराज नचिकेता से कहते हैं - यह बुद्धि इंसान को तर्क से उपलब्ध नहीं हुआ करती। हे नचिकेता, तुम प्रलोभन की बाढ़ में भी अविचल रहे, अडिग रहे; इसलिए तुम आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के सच्चे अधिकारी हो, तुम मेरे सच्चे शिष्य हो। विपरीत परिस्थितियों में भी जो अविचल रहे, वही साधु बन सकता है, ज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी हुआ करता है।

महर्षि याज्ञवल्क्य रोजाना दिव्य शास्त्रों पर प्रवचन किया करते थे। एक दिन वे प्रवचन के लिए बैठे, लेकिन उन्होंने बोलना प्रारंभ नहीं किया। वहाँ बैठे लोगों में फुसफुसाहट हुई कि अभी राजा जनक नहीं आए हैं; इसलिए प्रवचन प्रारंभ नहीं किया जा रहा है। एक-दो ने तो यहाँ तक कह दिया कि साधु भी राजा के मोह से ऊपर नहीं उठ पाते। ऋषि ने सुन लिया, लेकिन चुप रहे। थोड़ी देर बाद राजा जनक आ गए और याज्ञवल्क्य ने प्रवचन प्रारंभ कर दिया।

प्रवचन शुरू हुए कुछ ही पल बीते थे कि यकायक वहाँ शोर मच गया, अरे, भागो-दौड़ो, नगर में आग लग गई है। विशाल अट्टालिकाएँ धू-धू कर जल रही हैं। राजमहलों में भी आग लग गई है। इतना सुनना था कि प्रवचन सुन रहे लोग वहाँ से भागकर नगर की तरफ चले गए। केवल राजा जनक वहाँ बैठे रहे। याज्ञवल्क्य ने राजा से कहा, राजन्! आपका महल जल रहा है, आप नहीं जा रहे? राजा ने कहा, मिथिला जल रही है तो इसमें मेरा क्या जल रहा है। मैं किसे बचाने जाऊँ? जिन्हें बचाना है, वे खुद समर्थ हैं। प्रवचन चलता रहा। कोई आधे घंटे बाद सभी लोग पुनः प्रवचन-स्थल पर लौट कर आए। पता चला कि किसी ने आग की अफवाह फैला दी थी। लोगों ने देखा कि ऋषि अमृत वाणी से राजा को लाभान्वित कर रहे हैं। उनकी समझ में आ गया कि ऋषि प्रवचन शुरू करने से पहले राजा का इंतजार क्यों कर रहे थे।

कोई भी संत पात्र को ही शिक्षा दिया करता है। उपदेश देने के लिए उन्हें सही आदमी की जरूरत होती है। केवल भेड़ों को एकत्र करने से कुछ नहीं होता। एक भेड़ जाएगी, तो शेष भी उसके पीछे चली जाएँगी। भीड़ नहीं चाहिए। सत्पात्र एक ही पर्याप्त है। भीड़ तो मदारी का खेल देखने भी एकत्र हो जाती है लेकिन ज्यों ही खेल खत्म होता है, भीड़ छंट जाया करती है।

एक ज्योतिषाचार्य ने विद्वानों को हरा दिया। उसके घर पर लोगों की भारी भीड़ रहने लगी। एक दिन वह अपने गुरु के पास गया। कहने लगा - गुरुदेव आज मैं जो कुछ हूँ, आपकी वजह से हूँ। मेरे घर के बाहर दिनभर भीड़ रहती है, लेकिन आप कभी मेरे यहाँ नहीं आते। इसका कारण क्या है? गुरु ने कहा - वत्स, कारें तो वेश्या के घर के बाहर भी बहुत खड़ी रहती हैं। 'रंडी बेचे शील को, पंडित बेचे ज्ञान; सत्पुरुषों के सामने

दोनों एक समान। शिष्य यह सुनकर भौंचक्का रह गया। उस दिन से ज्योतिषाचार्य का जीवन बदल गया। पुस्तकों का ज्ञान पाकर खुद को बहुत बड़ा ज्ञानी समझने वाला शिष्य ज्ञान-प्राप्ति की राह पर पहला कदम बढ़ाने योग्य हो गया। मण भर के भाषण की बजाय कण भर का आचरण ज्यादा प्रभावी होता है।

ऐसे सत्पुरुष कम ही मिलते हैं। थोड़े से प्रलोभन से आदमी फिसल जाया करता है। निमित्त न बने, तो कोई भी शांति का अवतार बन सकता है, लेकिन मौका मिलते ही वह चंडकौशिक की तरह गुस्सा फुफकारने लगता है। आदमी तब तक ही ईमानदार है, जब तक उसे बेईमानी करने का मौका नहीं मिलता। बस, मौका मिलना चाहिए।

यमराज ने नचिकेता से कहा – ‘हे वत्स, तुम उत्तम धैर्य वाले हो, तुम्हारे जैसे शिष्य ही हमें मिला करें।’ एक आत्म-ज्ञानी अपात्र को ज्ञान देगा, तो ज्ञान व्यर्थ चला जाएगा। पात्रता होनी चाहिए। कभी-कभी एक घटना से भी आत्म-ज्ञान मिल जाता है। एक आदमी किसी संत के पास पहुँचा और कहने लगा, महाराज, मेरे पास कुछ भी नहीं है। मुझे आप आशीर्वाद दे दीजिए, शायद मेरा भला हो जाए। संत ने उसे कहा, जाओ, मेरी झोंपड़ी के पीछे एक पत्थर का टुकड़ा पड़ा है, ले जाओ। वह वास्तव में पारस का टुकड़ा था। उस आदमी ने घर जाकर जिस चीज से भी उसे छुआया, वह चीज सोना बन गई। सोना ही सोना देखकर उसे आत्म-ज्ञान हो गया। अरे, उस संत ने पारस को झोंपड़ी के पीछे फेंक दिया था और मैं हूँ कि सोना ही सोना पाकर भी अतृप्त हूँ। आत्म-ज्ञान की राह पर यही उसका पहला कदम था। उसकी चेतना में वैराग्य के भाव जग गए। वह वापस संत के पास लौट आया। उसने पारस वापस लौटा दिया और संत से कहा – ‘गुरुदेव अब मुझे पारस नहीं, बल्कि वह दीजिए जिसे पाने के लिए आपने पारस तक का त्याग कर दिया था।’

अर्थ, काम, मोह के चक्कर में आने की बजाय ज्ञान की राह पर चलने का प्रयास करो। अन्यथा सिर्फ किताबें ही पढ़ते रहोगे, तो पंडित तो जरूर बन जाओगे, लेकिन प्रज्ञा को कहाँ से लाओगे! पंडितों की इस जहान में कोई कमी नहीं है; कमी है तो आत्म-ज्ञानियों और आत्म-योगियों की कमी है। इसलिए अपने आपको उस दैवीय प्रकाश के पास ले जाने की कोशिश करो। यमराज ने नचिकेता को जो आत्म-ज्ञान दिया, वह हमारे जीवन में भी बदलाव लाने वाला साबित हो; हमें प्रकाश की राह पर ले जाए।





# 14

## अपने आप से पूछिए मैं कौन हूँ ?

प्रत्येक उत्तर की शुरुआत किसी-न-किसी प्रश्न से हुआ करती है। प्रत्येक समाधान का शुभारंभ किसी-न-किसी समस्या की गोद से ही होता है। दुनिया में ऐसे समाधानों की कीमत नहीं हुआ करती, जिन्हें किसी समस्या का सामना न करना पड़ा हो। हर सफल व्यक्ति अपनी सफलता की सही क्रीमत तभी आँक पाता है, जब उसने असफलता का स्वाद भी चखा हो।

नचिकेता ने यमराज के सम्मुख एक प्रश्न उपस्थित किया था कि कुछ लोग कहते हैं - प्राणी मरने के बाद रहता है और कुछ कहते हैं नहीं रहता। यह क्या है, इस मृत्यु का रहस्य क्या है ? मेरे मन में इसका उत्तर जानने की जिज्ञासा है। जब तक किसी के भीतर जिज्ञासा जन्म नहीं लेगी, प्रश्न पैदा नहीं होगा, तो ऐसा व्यक्ति कोई उत्तर पाकर भी क्या कर लेगा। उत्तर की आवश्यकता बाद में है, पहले प्रश्न का परिपक्व हो जाना आवश्यक है।

कृष्ण चाहते तो अर्जुन को बंद कमरे में भी गीता का संदेश दे सकते थे, लेकिन वे जानते थे कि जब किसी के सामने महाभारत का पूरा परिदृश्य उपस्थित न होगा, कुरुक्षेत्र नहीं होगा, तब तक कोई भी अर्जुन नहीं बन पाएगा। तब गीता का संदेश भी सार्थक नहीं हो पाएगा।

इसलिए हर किसी के भीतर यह प्रश्न जन्म ले ही लेना चाहिए कि आखिर वह कौन है ? अहम् को अस्मि, मैं कौन हूँ ? प्रश्न ही नहीं होगा तो उसके उत्तर की तलाश कैसे हो पाएगी ? किसी भी उत्तर के लिए सबसे आवश्यक चीज है - प्रश्न। एक ग्वाला गायों को लेकर तालाब के पास तो जा सकता है, लेकिन वह गायों को पानी नहीं पिला सकता। पानी तो गायें तब ही पीएँगी, जब उन्हें पानी की प्यास होगी। गुरु आत्म-ज्ञान का रास्ता बता सकते हैं, लेकिन उस पर चलना तो शिष्य की अपनी मौज है। गायों को प्यास होगी तो वे पानी पी लेंगी, अन्यथा मुँह घुमा लेंगी।

दुनिया में ऐसे ही लोग होते हैं। संत प्रवचन दे रहे हैं। जिनमें जिज्ञासा है, वे तो प्रवचन सुन लेंगे; जिनमें जिज्ञासा न होगी, वे वहाँ बैठकर भी उबासी खाते दिखेंगे। अनेक लोग तो 'ऊँघो' किस्म के होते हैं। प्रवचन में भी ऊँघते रहते हैं, सोते रहते हैं। दूसरी किस्म के लोग 'सूँघो' होते हैं। वे सूँघते रहते हैं कि अगल-बगल में कौन बैठा है, कौन क्या कर रहा है। सही फायदा तो उन्हें होता है जो 'चूँघो' किस्म के होते हैं। ऐसे लोग हंसों की तरह प्रवचन में से मोती बीनते हैं। जो अच्छी चीजें चुनते हैं, वे 'चूँघो' कहलाते हैं। ऐसे लोग आत्मपिपासा से भरे रहते हैं। उनके अध्यात्म भाव, आध्यात्मिक जिज्ञासा अभिनंदन के काबिल होती है। कुल मिलाकर जिज्ञासा पैदा हो जानी चाहिए, प्यास पक जानी चाहिए। बिना प्यास के पानी का भी कोई मोल नहीं होता। प्यासे को पानी चाहिए और आत्म-जिज्ञासु को ज्ञान। आत्म-जिज्ञासु को इधर-उधर के निमित्त अच्छे नहीं लगते।

भगवान महावीर ने साढ़े बारह साल की तपस्या में सिर्फ 365 दिन आहार लिया। उनके भीतर एक ही जिज्ञासा, एक ही तमन्ना थी कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाऊँगा - इस तथ्य को जानूँ। अपने आत्म-सत्य से रूबरू होऊँ। इस स्थिति में साधक को खाना-पीना याद नहीं आता। आत्म-जिज्ञासु को प्रलोभन नहीं सुहाते। व्यक्ति उस तरफ आकर्षित नहीं हो पाता। उसके लिए तो आत्म-ज्ञान ही सबसे बड़ा धन होता है।

सबके भीतर आत्म-जिज्ञासा पैदा हो जाना चाहिए कि वह कौन है, कहाँ आया है, अंत में कहाँ जाएगा? हम लोग दूसरों के बारे में बहुत-सी जानकारी रखते हैं, लेकिन खुद के लिए समाधान नहीं खोज पाते। इसकी वजह यह है कि अभी तक भीतर वास्तव में प्रश्न पैदा नहीं हुए। कोई पूछे कि आप कौन हैं, तो यही उत्तर मिलेगा, मैं अमुक का पुत्र हूँ। अमुक मेरे पिता हैं। मैं अमुक स्थान का रहने वाला हूँ। लेकिन आत्म-जिज्ञासा उसे ही कहते हैं, जब हम जन्म-मरण के पार के तत्त्व को जानने की उत्कंठा रखें।

पहली ज़रूरत है, हम एकांत में बैठें, ध्यान करें। चित्त को शांत करें। अपने आपसे पूछें, मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ? माँ-बाप के अलावा भी मेरा कोई अस्तित्व है या मेरा कोई स्रोत है? खुद को जानने की जिज्ञासा रखने वाला पहले यह जानेगा कि वह क्या नहीं है। यानी शुरुआत हो गई, मैं शरीर नहीं हूँ क्योंकि शरीर तो एक दिन मिट जाने वाला है। क्या मैं मिटने वाला तत्त्व हूँ? तो फिर ये ताम-झाम क्यों? आत्म-जिज्ञासु गहन चिंतन करता है कि मैं शरीर नहीं हूँ, फिर भी मैं नहीं मिटूँगा। चिंता पर कौन जलता है? हमारा शरीर। बूढ़ा कौन होता है? हमारा शरीर। जब हम शरीर हैं ही नहीं, तो इससे मोह कैसा? तब धैर्यपूर्वक हमें सवाल पूछना होगा, मैं कौन हूँ? मैं मन नहीं हूँ, मन तो

बदलता रहता है। मैं पदार्थ भी नहीं हूँ, पदार्थ परिवर्तनशील है। मैं वस्तु नहीं हूँ तो मैं आखिर क्या हूँ? तब भीतर एक किरण उतरेगी जिसके प्रकाश में हम भीतर की तह तक पहुँचते हुए अपने को जानने में सफल होंगे कि मैं वास्तव में यह हूँ। तब भीतर प्रकाश फूटेगा, अंतर की आवाज़ आएगी - मैं एक आत्मा हूँ।

साधक इस आत्मा को जानने के लिए ही गुरुजनों के पास जाया करते हैं। स्वाध्याय, ध्यान, ज्ञान-चर्चा अथवा अन्य विविध आयामों से एक ही तत्त्व जानना चाहेंगे कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ। तब इसका मूल उत्तर, समाधान हमें मिल जाएगा। आत्मा को जानना कठिन है। अपने आपको जानना कठिन है। कहना बहुत आसान है कि शरीर अलग है और आत्मा अलग है, पर खुद के मन में खोटे आते ही सारे भेद मिट जाते हैं। हम ताक-झाँक करने लगते हैं। ज्ञान धरा रह जाता है। क्रोध बुरा है, ज्ञानी यह जानता है; फिर भी क्रोध के धरातल के नीचे आ जाता है। कहना आसान है, दूसरों को समाधान देना भी आसान है, लेकिन अपना समाधान खोजना मुश्किल होता है। यह बड़ी कठिन समस्या है।

आदमी मैं और मेरा के इर्द-गिर्द ही घूमता रहता है। संसार भी इसी के चारों तरफ चक्कर लगाता है। मेरा शब्द कहाँ से आया? मैं से ही मेरा का जन्म हुआ है। मैं हूँ तो मेरा है। यह मेरा, वह मेरा। आपने घड़ी खरीदी, कहने लगे, मेरी है। संबंध जुड़ गया। मैं और मेरे का आरोपण हो गया। मेरे से मुक्ति पानी है तो मैं से हटना होगा, मात्र अपने आपसे जुड़ना होगा। आत्म-ज्ञान के रास्ते पर चलना हो तो मैं और मेरा नहीं, सब-कुछ ऊपर वाले का है - यह सोच पैदा करनी होगी।

अपना है भी क्या? शरीर ही अपना नहीं है, तो फिर क्या अपना है? यह शरीर तो दगा देने वाला है। ज्ञानी व्यक्ति इस जंजाल में नहीं पड़ता। वह तो यही जानना चाहता है कि वह कौन है? आओ अपने आपको जानें। ध्यान करें, पलकों को झुकाएँ, मौन साधें, फिर अपने भीतर उतरें। प्रश्न प्रगाढ़ नहीं होगा, तो उत्तर भी प्रगाढ़ नहीं आएगा। खोजो मत कि मैं आत्मा हूँ; यही खोजो, मैं कौन हूँ? आत्मा का शब्द भी क्यों ढोएँ? व्यर्थ के प्रश्न हटाओ, सार्थक प्रश्नों को जन्म दो। हरेक का किसी न किसी से संबंध है। मैं कौन हूँ इस पर महज विचार मत करो, बल्कि इस सत्य का भीतर में अनुभव करो, एहसास करो।

मुल्ला नसरुद्दीन बीमार पड़ गया। उसके पेट में दर्द उठा। वह एक वैद्य के पास गया। वैद्य ने उसे तीन दिन की पुड़िया दी। वह रवाना होने लगा तो उसने वैद्य से पूछा - दवा कैसे लूँ, पानी से या दूध से? वैद्य ने बताया - दूध से लेना। नसरुद्दीन फिर पूछने लगा - गाय का या भैंस का? इस तरह सवाल पर सवाल खड़े करने लगा। व्यर्थ के

सवाल पूछते रहोगे, तो व्यर्थ के ही उत्तर मिलेंगे। कोई सार्थक उत्तर या समाधान नहीं मिलेगा। आत्म-जिज्ञासा के मार्ग पर प्यास होना आवश्यक है। प्रश्न मन में लेकर शास्त्रों का अध्ययन करोगे, तब ही आत्म-ज्ञान के मार्ग पर बढ़ पाओगे। इसे हम यँ ही नहीं समझ सकते, हमें अपने आपसे रू-ब-रू होना पड़ेगा धैर्यपूर्वक, शांतिपूर्वक, मनोयोगपूर्वक। ध्यान अपने आप से मुलाकात करने का ही मार्ग है। ध्यान यानी बाहर की आँखें बंद करके भीतर में डूबना, अपने आप में डूबना। ध्यान स्वयं में लीन होने का मार्ग है। मैंने कहा - मार्ग है पर हकीकत में ध्यान कोई मार्ग नहीं है बल्कि लीन होना ही है अपने में, अपनी अंतरात्मा में।

नचिकेता यमराज के सम्मुख हैं और उनके जिज्ञासा भरे प्रश्न सुनकर यमराज भी प्रसन्न हैं। नचिकेता कह रहे हैं, हे योगीराज, हे मृत्यु के रहस्य के ज्ञाता, बताएँ, आत्मा क्या है ? इसका स्वरूप क्या है ?

तब यमराज नचिकेता को समझाते हैं, उस कठिनता से दीख पड़ने वाले, गूढ़ स्थान में अनुप्रविष्ट, हृदय में स्थित, गहन स्थान में रहने वाले, पुरातन देव को अध्यात्म योग की प्रगति द्वारा जानकर बुद्धिमान पुरुष हर्ष-शोक को त्याग देता है। मनुष्य इस आत्म-तत्त्व को भली प्रकार ग्रहण करके, उस पर विवेकपूर्ण विचार करके इस सूक्ष्म आत्म-तत्त्व को जानकर, इस मोदनीय की उपलब्धि कर अति आनन्दित हो जाता है। मैं तुझ नचिकेता के लिए परमात्मा का द्वार खुला हुआ मानता हूँ।

यमराज बता रहे हैं कि यह कठिनता से दिखाई देने वाली वस्तु है। असंभव तो नहीं है, लेकिन दुर्लभ तत्त्व है। यह विरले लोगों को अनुभव हो पाता है। इसे समझना आसान नहीं है। एक गुरुकुल में गुरु अपने दो शिष्यों के साथ गुरुकुल के आँगन में सोए हुए थे। उन्हें महसूस हुआ कि महर्षि नारद आकाशीय मार्ग से गुजर रहे हैं। नारद सामने से आ रहे किसी देव से चर्चा कर रहे हैं कि यह गुरुकुल में जो गुरु के साथ एक शिष्य सोया है, वह एक दिन महापुरुष बनने वाला है, उसे देखकर मुझे सुख मिल रहा है। नारद और उस देव ने उन्हें प्रणाम किया और आगे निकल गए।

अब गुरु की नौद उड़ गई। शिष्य तो दो सो रहे थे, नारद किस शिष्य के बारे में कह रहे थे, यह कैसे पता लगाया जाए ? उन्होंने अगले दिन दोनों शिष्यों की परीक्षा लेने की ठानी। उन्होंने दोनों को एक-एक कबूतर दिया और कहा कि जाओ, कबूतर की गर्दन ऐसे स्थान पर जाकर मरोड़ आओ, जहाँ कोई देख नहीं रहा हो।

एक शिष्य गया और कुछ ही देर में मरा कबूतर लेकर गुरु के पास आ गया। दूसरा शिष्य जंगल में गया और कबूतर की गर्दन मरोड़ने ही वाला था कि उसे ख़याल आया, यहाँ पेड़-पौधे देख रहे हैं। वह आगे निकला, एक पहाड़ी पर पहुँचा। तब तक रात हो

चुकी थी। वह ज्यों ही कबूतर की गर्दन मरोड़ने लगा, उसे अहसास हुआ कि यहाँ तो चाँद-सितारे देख रहे हैं। वह उस पहाड़ की सुरंग में चला गया। अब कबूतर की मौत आने ही वाली थी कि शिष्य को लगा कि यहाँ तो वह खुद देख रहा है। आखिर वह लौट आया। उसने गुरु से कहा, मुझे तो ऐसी कोई जगह नहीं मिली, जहाँ कोई देखता न हो। सर्व व्यापक सत्ता हर जगह देख रही होती है। गुरु ने उसकी पीठ थपथपाई, वत्स! मैं जान गया कि वह भविष्य के महापुरुष तुम ही हो, मुझे तुम्हारा गुरु होने का सौभाग्य मिला, यही मेरे लिए बहुत बड़ी बात है।

दुनिया में कुछ भी गुप्त नहीं है। पर्दा डालने से क्या होगा? दूसरों की आँखें नहीं देख रही तो क्या हुआ, खुद तुम्हारी आँखें तो देख ही रही हैं। आदमी कपड़े खुद के लिए थोड़े ही पहनता है। दूसरे उसे नंगा देखकर शर्म से नज़रें न झुकाएँ, इसलिए पहनता है। आदमी नहाते समय अपने बाथरूम में नग्न होता है, वह अपने आपको काँच में देखना पसंद करता है। धनाढ्य लोगों के बाथरूम भी कमरों जैसे होते हैं। उनमें बड़े-बड़े काँच लगे होते हैं। उनमें खुद को नग्न-नहाते देख सकते हैं। खुद को शर्म नहीं आती, लेकिन जैसे ही बाथरूम से बाहर आते हैं, तो कपड़ों की ज़रूरत पड़ती है।

इससे यही सार समझने को मिलता है कि आदमी कपड़े दूसरों के लिए पहनता है। विदेशों में तो लोग रात्रि में निर्वस्त्र होकर सोते हैं। वहाँ तो निर्वस्त्र होने की प्रतियोगिता तक होने लगी है। समाचार-पत्रों में कई बार ऐसे चित्र आते हैं कि हज़ारों-हज़ार जोड़े निर्वस्त्र होकर लेटे हैं। समुद्र तटों पर भी अनेक लोग निर्वस्त्र लेटे, धूप सेकते नज़र आते हैं।

इस तरह दुनिया में छिपाने योग्य कुछ भी नहीं है। बस, खुद को अच्छा दिखाने का प्रयास करो, ताकि लोग तुम्हें देखकर आँखें बन्द न करें। अपने आपको देखते रहें। इससे अहसास होता रहेगा कि हमारे भीतर कितनी खोट है। उस खोट को मिटाने के लिए हम निरन्तर प्रयत्नशील रहेंगे। यमराज कहते हैं - 'यह जो कठिनता से दिखाई देने वाला तत्त्व है, वास्तव में चिंतन करने योग्य है कि आखिर यह क्या है? हमारे भीतर यह तत्त्व होने से हम जीवित रहते हैं और यह तत्त्व निकलते ही शव हो जाते हैं। आखिर यह तत्त्व कहाँ से आता है, कहाँ जाता है?'

जीवन में संन्यास की शुरुआत करने के लिए कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य अपनी आँखें खुली रखे, तो उसे अपने आस-पास इतने निमित्त दिखाई दे जाएँगे कि उसके भीतर पल-पल संन्यास के भाव पैदा होने लगेंगे। दादाजी गुज़र गए, पोता आ गया। माँ सुन्दर है, दादी के चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी हैं, ओह, तो ये होता है बुढ़ापा। हर खूबसूरत मनुष्य को एक दिन ऐसा हो जाना है। तब जीवन क्या है, यह समझ में आने

लगेगा कि इतना-सा जीवन है। यह शरीर मिट्टी है जिसे मिट्टी में मिल जाना है। और लोगों की तरह एक दिन मैं भी मर जाऊँगा। पिताजी ने खूब कमाया, सब यहीं छोड़ गए। मैं भी धन-जायदाद यहीं छोड़कर जाने वाला हूँ, तो इससे मोह कैसा? व्यर्थ ही क्यों प्रपंच किया जाए। सहज रूप से जीवन जीया जाए।

मनुष्य अपने जीवन में, अपने आस-पास घटने वाली घटनाओं को इस तरह नहीं देखेगा, उन पर चिंतन-मनन नहीं करेगा तो दुनिया का कोई इंसान कभी बदल ही नहीं सकेगा। किसी में इतनी ताकत नहीं है कि ऐसे आदमी को कोई जगा सके। आदमी अपनी वजह से ही सुधरता है। आदमी गिरता है अपनी ही वजह से और सुधरता है खुद अपनी इच्छा-शक्ति से। विश्वामित्र को किसी मेनका ने नहीं गिराया। उनके भीतर खोट थी, सो मेनका निमित्त बन गई।

सबके भीतर खोट है। स्वीकार करेंगे, तो अपनी खोट को सुधार लेंगे। भीतर खोट है, फिर भी खुद को अच्छा बताते हो, तो यह अपने साथ ही अन्याय कर रहे हो। फोटो खिंचवाने जाते हैं, फोटोग्राफर से पूछते हैं, फोटो कैसी आएगी, अच्छी आनी चाहिए, रंगीन। यह तो ज्ञानी की बात नहीं है। बाहर की फोटोग्राफी भले ही रंगीन करवा लो, जिस दिन भीतर से फोटो खींची जाएगी, उस दिन सारे रंग उड़ जाएँगे। इन्द्रधनुष कितनी देर आकाश में रहता है, पल में आकार लेता है और पल में गायब हो जाता है। इसी तरह हम सबके भीतर कालापन है। बस, हम उसे ईमानदारी से स्वीकार नहीं करते और इसीलिए उस कालापन से अलग नहीं हो पाते।

आदमी जैसा हो, उसे वैसा ही दिखाना चाहिए। भीतर जैसे हो, बाहर वैसे ही रहो। इसमें संकोच कैसा? इसलिए यमराज बता रहे हैं कि आत्म-तत्त्व कहाँ निवास करता है? आत्म तत्त्व के बारे में यमराज से ज्यादा कौन जानता है? इसलिए यमराज की ओर से दी जाने वाली जानकारी महत्त्वपूर्ण है। इस आत्म-तत्त्व को जानने में शायद देवेन्द्र को भी पसीना आ सकता है, लेकिन यमराज तो जानते ही हैं कि आत्म-तत्त्व कहाँ निवास करता है?

आत्म-तत्त्व कहाँ से आता है, शरीर में निवास करने के बाद कब यहाँ से चला जाता है और कैसे चला जाता है, इस बारे में किसी को पता नहीं चलता। मृत्युदेव आते हैं, गेम खेलते हैं और आत्मा को लेकर चले जाते हैं। ऐसा वे कब और कैसे करते हैं, कोई नहीं समझ पाता। मृत्यु से एक क्षण पहले तक इस बारे में या तो स्वयं मृत्युदेव जानते हैं, या फिर व्यक्ति खुद।

यमराज नचिकेता के सामने यह रहस्य उद्घाटित कर रहे हैं। वे बता रहे हैं कि यह वह गूढ़ तत्त्व है जो मनुष्य के हृदय में निवास करता है। आत्मा के साथ जीना है, तो

हृदय के साथ जीना होगा। जीवन में सफलता प्राप्त करनी है, तो बुद्धि रूपी गुफा में प्रवेश करना ही होगा। बुद्धि ज्ञान से और हृदय आत्मा से जुड़ा है। इसी तरह तीसरा चरण है - नाभि। यह सृजन का क्षेत्र है। नीचे के तत्त्व नाभि से जुड़े रहते हैं, यद्यपि यह सृजन का क्षेत्र है, लेकिन सृजन यहीं से होता है तो विसर्जन भी यहीं से होता है। ये दूषित तत्त्व हैं। इसलिए इन तत्त्वों पर कम ध्यान दें। नाभि से ऊपर हृदय तक नज़र रखें। ये व्यक्ति के आत्म-प्रदेश हैं, ब्रह्म केन्द्र हैं। हृदय हमारा धाम है। असली मंदिर हृदय ही है। वहाँ न तो कोई हिन्दू है और न ही कोई मुसलमान; न कोई सिक्ख है और न ही कोई ईसाई। ये सब बाहर की व्यवस्थाएँ हैं, सामाजिक व्यवस्थाएँ हैं। आत्म-साधक समाज का नहीं होता, समाज उसके लिए होता है। दीया सूरज को रोशनी दिखाने जाएगा तो क्या होगा? आत्म-ज्ञानी पर समाज अंकुश लगाना चाहेगा तो गलती करेगा।

सिकंदर ने भी ऐसी गलती की। किसी देश में उसका पड़ाव था। उसके कुछ सिपहसालार भारत जा रहे थे। सिकंदर ने उनसे कहा, लौटते समय भारत से किसी औलिया-फ़क़ीर को ले आना। सिपहसालार बहुत प्रयास करते हैं, लेकिन कोई औलिया-फ़क़ीर उनके साथ चलने को तैयार नहीं होता। सिकंदर खुद जब भारत आता है, तो यहाँ के एक औलिया फ़क़ीर से कहता है, हमारे साथ चलो, मैं तुम्हें लेने आया हूँ। फ़क़ीर कहता है - हमें ले जाने वाला तो यमराज है। बाकी हमें कोई नहीं ले जा सकता। सिकंदर ने कहा - मैं महान सम्राट सिकंदर हूँ। मैंने दुनिया को जीता है। तेरी तो औकात ही क्या है? फ़क़ीर हँसा। वह उससे पूछता है - दुनिया को जीतने वाले ऐ सिकंदर, क्या तुमने खुद को भी जीता है?

यह सुनते ही सिकंदर क्रोध से तमतमा उठा। सिकंदर ने अब तक तलवारों से जीतने की कला जानी थी। तलवारों से तो औरों को ही जीता जा सकता है। तलवार से खुद पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती। खुद पर विजय पाने के लिए तो व्यक्ति को अपने भीतर महावीरत्व का फूल और बुद्धत्व का कमल खिलाना होता है। अपने गुस्से को अपने काबू में रखना होता है, अपनी वासनाओं पर विजय पानी होती है, अपने राग-द्वेष के दलदल से बाहर निकलना होता है।

कोई सिकंदर फ़क़ीर पर लाल-पीला हो, इससे फ़क़ीरों को क्या फ़र्क पड़ता है! वे तो अपनी फ़क़ीरी में ही मस्त रहते हैं। सिकंदर ने क्रोध में भरकर कहा, ऐ फ़क़ीर! मेरी मज़ाक उड़ाने के जुर्म में मैं तुम्हें मार भी सकता हूँ। फ़क़ीर ने कहा - तुम क्या मारोगे? जिसे तुम मारोगे, वह तो अभी भी मरा हुआ ही है। हम तो अमर हैं, हम मारे भी नहीं मरेंगे। वह फ़क़ीर तो सिकंदर के सामने नाचने लग गया। मानो उसके भीतर कोई इंद्रधनुष की छटा बिखर पड़ी हो। फ़क़ीर मस्त था। मौत को करीब आया देख दुगुना

मस्त हो गया। कहने लगा - ऐ जिंदगी! अब तक तेरा स्वाद तो चखा। आज मौत का स्वाद भी चख लेंगे। सिकंदर फ़कीर की अलमस्ती को देखकर गैला हो गया। तब उसने माना कि भारत को जीतना फिर भी आसान हो सकता है, लेकिन यहाँ के संतों को जीतना कठिन है। आत्म-ज्ञानी ऐसे ही होते हैं।

पंडित होना आसान है, लेकिन आत्म-योगी बनना कठिन है। व्यापारी बनना आसान है, लेकिन अपने भीतर के सत्य को उजागर कर योगी बनना उतना ही कठिन है। सब-कुछ तुम्हारे भीतर ही है। मंदिर-मस्जिद, काशी-कर्बला। बाहर के मंदिरों में जाकर पूजा बाद में करना। पहले दिल में बसे दिलवर की पूजा कर लो। अंततः हर किसी को वहाँ जाना है, जहाँ से आए हैं, जहाँ से जीवन की शुरुआत होती है, जिसके रहते हम जीवित हैं और जिसके निकल जाने से शव हो जाएँगे। लोग इस शरीर को श्मशान में ले जाकर जला आएँगे। इसलिए कुछ करें, सार्थक करें। सबकी अपनी उपयोगिता है लेकिन परिणाम तभी आएँगे, जब हमारे भीतर प्यास पैदा होगी कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाऊँगा? क्या हमारी शुरुआत माँ-बाप से है और समापन श्मशान में? या इसके अलावा भी हमारा कोई अस्तित्व है?

याद रखो, सचेतनता से जीने वाले आत्म-योगी हो जाते हैं। यह तो मस्ती का मार्ग है। जंगल में जोगी रहता है, न हँसता है न रोता है, दिल उसका कहीं न फँसता है, तन-मन में चैन बरसता है। कुछ बातें स्वयं से मुलाकात करके ही समझी जा सकती हैं। मैं कोई ज्ञान नहीं दे रहा, मैं तो मात्र आपके भीतर प्यास की लौ जगा रहा हूँ। एक बार भीतर की बाती जल उठेगी तो तुम खुद जाग जाओगे, ज्योतिर्मय हो जाओगे। ग्वाला गायों को तालाब के पास ले जा सकता है, उन्हें पानी नहीं पिला सकता, पानी तो वे तभी पीएँगी जब उन्हें प्यास होगी। जिनके भीतर प्यास नहीं, वे अमृत को भी टुकरा कर चले जाएँगे। हमारा काम ज्ञान बाँटना नहीं है, हमारा काम आपके भीतर रोशनी पैदा करना है। रोशनी की प्यास से तुम भर उठो, तो आपका जीवन धन्य हो जाएगा।





# 15

## आत्म-ज्ञान के पाँच चरण

एक बहुत प्यारे संत हुए हैं नान-इन। संत के जीवन की जिस घटना का जिक्र कर रहा हूँ, उस घटना से नान-इन के ज्ञान-प्राप्ति का संबंध जुड़ा हुआ है। संत नान-इन अपने गुरु के साथ मठ में रहा करते थे। एक दिन गुरु ने उनसे कहा - वत्स! मेरे पास तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा पूरी हो गई है। अब तुम्हें जाना चाहिए। नान-इन रवाना होने ही वाले थे, रुकने का कोई औचित्य ही नहीं था। नान ने देखा, अंधेरा घिरने लगा था। वे सोच रहे थे कि सुबह चले जाएँगे, उन्होंने गुरुदेव से इतना ही कहा - गुरुदेव, अंधेरा होता जा रहा है, अगर...! तभी उनके गुरु भीतर से एक जलता दीया लाए और उन्हें कहा, मैं तुम्हें रोशनी थमाता हूँ, तुम निकल पड़ो। अब तो नान को रवाना होना ही था। नान हाथ में दीया संभाले वहाँ से रवाना हो गए। वे कुछ ही कदम चले थे कि उनके गुरु पीछे से आए और उनका जलता हुआ दीया फूँक मारकर बुझा दिया। नान हतप्रभ रह गए, गुरुदेव! ये आपने क्या किया? इतना घना अंधेरा और आपने दीया बुझा दिया? यह तो आपकी ही रोशनी थी। गुरु बोले - वत्स! मैंने यह दीया इसलिए बुझाया है ताकि तुम अपनी रोशनी में आगे बढ़ सको।

कहानी बहुत ही सरल-सा संदेश देती है कि आदमी को अपनी ही रोशनी में आगे बढ़ना पड़ता है। दूसरों की रोशनी से तो अपना अंधेरा भी बेहतर होता है। रात के इस अंधेरे में तुम्हें रवाना करने का अर्थ इतना ही है कि तुम अपनी रोशनी उपलब्ध कर सको। हर किसी इंसान को अपने जीवन में अपनी रोशनी उपलब्ध कर लेनी चाहिए, अपना जीवन ज्योतिर्मय कर लेना चाहिए, ज्योति-पथ का राही बन जाना चाहिए।

कोई व्यक्ति अपने हाथों में रोशनी थाम कर अंधेरे में चलेगा, तो वह ज्योति-पथ का अनुयायी कहलाएगा। हाथों में रोशनी न हो और इंसान अंधेरे में चलेगा, तो वह राह भटक सकता है, लेकिन अगर व्यक्ति स्वयं ज्योतिर्मय बन

चुका है तो वह शहर में रहे या जंगल में, अंधेरे में जाए या रोशनी में, वह अपनी राह ढूँढ़ ही लेगा। गुलाब का फूल तो जहाँ भी जाएगा, अपनी महक फैलाएगा ही।

एक बार जब मैं भगवान सूर्यदेव की अर्चना कर रहा था कि तभी एक सज्जन ने मुझसे पूछा, इंसान को किसकी रोशनी में जीना चाहिए? मेरी नजर सूर्य पर थी सो मैंने उसे कहा, सूर्य की रोशनी में जीना चाहिए। उसने अगला सवाल पूछा - सूर्य की रोशनी न हो तो? मेरा जवाब था, चाँद की रोशनी में। सज्जन तो मेरी परीक्षा लेने पर तुले थे। उन्होंने फिर पूछा, चाँद की रोशनी न हो तब? मेरा जवाब था, तब इंसान को सितारों की रोशनी में जीना चाहिए। वे सज्जन अगला सवाल लेकर तैयार थे, सितारों की रोशनी न मिल पाए तो? मैंने उन्हें समझाया, तब आदमी को दीये की रोशनी लाभकारी है। उन्होंने फिर पूछा - दीया भी न हो तो? मैंने उस सज्जन की मंशा समझते हुए उन्हें समझाया - प्रिय वत्स! तुम हर तरफ नकारात्मक संभावनाएँ तलाश रहे हो, तो मैं बता देना चाहता हूँ कि इंसान के हाथ में कोई भी रोशनी न बची हो, तो उसे अपने खुद के भीतर की रोशनी को उजागर करना चाहिए। इंसान के लिए सबसे बड़ी और सार्थक रोशनी उसकी खुद की होती है।

ज्ञानी कहते हैं - अप्प दीपो भव। इंसान को अपना दीपक खुद बनना चाहिए। कोई दूसरा तुम्हारे लिए रोशनी देने में मददगार बने, तो अच्छी बात है; लेकिन ऐसा न हो पाए, तो हमें अपना आत्म-दीप जलाना चाहिए, अपनी रोशनी खुद बन जाना चाहिए, अपने जीवन में नई बुलंदियों, नई ऊँचाइयों को उपलब्ध करना चाहिए। यमराज नचिकेता को उसी आत्म-ज्योति के बारे में बता रहे हैं जो इंसान के जीवन का आधार है, प्राणी मात्र के जीवन का आधार।

यमराज कहते हैं - आत्मा वह है जो हमारे जीवन को थामे हुए है। आत्मा वह है, जिसके रहते हम जीवित कहलाते हैं और जिसके निकल जाते ही हम मृत हो जाया करते हैं। कुल मिलाकर, व्यक्ति की अंतश्चेतना, अंतरात्मा ही व्यक्ति के जीवन का आधार है। बिना नाँव का मकान नहीं बनता; वैसे ही बगैर चेतना, बगैर प्राणों के शरीर का कोई आधार नहीं होता। शरीर ने आत्मा को धारण कर रखा है और आत्मा ने शरीर को। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

आत्मा को साकार करना है, तो शरीर को आधार बनाना होगा और शरीर को टिकाए रखना है, तो उसमें आत्मा का, प्राणों का संचार करना होगा। यमराज ने नचिकेता को उस आत्म-ज्योति का रहस्य बताने की कोशिश की क्योंकि नचिकेता ने यमराज को स्पष्ट कर दिया था कि वह तो मृत्यु का रहस्य जानने ही उनके सम्मुख उपस्थित हुआ है। तब यमराज ने नचिकेता की कई प्रकार से परीक्षा ली,

उन्हें अनेक प्रलोभन दिए और पाया कि यह तो वास्तव में मृत्यु का रहस्य जानने का अभिलाषी है। तब यमराज ने उसे आत्मा का रहस्य बताना शुरू किया।

यमराज नचिकेता को बताते हैं, किसी की भी आत्मा उसके अंतर-हृदय में ही समाहित रहती है। यह जो हमारा अंतर-हृदय है, प्रगाढ़ सघन केन्द्र है, इस केन्द्र में ही हमारी आत्मा व्याप्त रहा करती है। ध्यान का पवित्र मार्ग इस ज्योति को, भीतर की ज्योति को उजागर करने के लिए ही है। यह खुद के करीब आने का मार्ग है।

ध्यान अर्थात् परमात्म-प्राप्ति का रास्ता। ध्यान के रास्ते पर चलने वाला व्यक्ति अपने करीब हुआ करता है। ध्यान का अर्थ होता है धैर्यपूर्वक अपने-आप को देखना, अपने में स्थिर होकर अपने को देखना। हम आईना देखते हैं, उसमें हमें अपना प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। अगर आईना हिलता रहेगा, तो हम उसमें अपने-आप को साफ-साफ नहीं देख पाएँगे। चेहरा आईने में देखना है तो खुद को स्थिर रखना होगा। ठीक उसी तरह हमें अपनी इंद्रियों को शांत करके स्वयं से मुलाकात करनी होगी।

महत्त्व इस बात का नहीं है कि हम बाहर कुछ देख रहे हैं। ध्यान हमें बाहरी तौर पर कुछ भी नहीं दिखाता, ध्यान हमें भीतर उतरकर अपने-आप से मिलता है। हमारे भीतर जो मौलिक संभावनाएँ हैं, ध्यान हमें उन संभावनाओं से जोड़ता है। ध्यान हमें हमारे अंतर्जगत से मुलाकात करवाता है। संभावनाएँ कितनी हैं, इसी का महत्त्व है।

एक सवाल पूछूँ। हमारे सामने दो वस्तुएँ हैं - लोहा और चाँदी। इनमें से कौनसी चीज ज्यादा क्रीमती है? किसी का भी पहला उत्तर यही होगा कि चाँदी ज्यादा मूल्यवान होती है; लेकिन यह पूरा सच नहीं है। एक गुरु ने मृत्यु-पूर्व अपने सारे शिष्यों को एकत्र कर उनकी परीक्षा ली। वे अपना उत्तराधिकारी चुनना चाह रहे थे। ऐसा होता है, संत बनने के बाद भी बहुत से लोगों में चाह बनी रहती है। बहुत सारे शिष्य हों, तो उनका अधिपति कौन नहीं बनना चाहेगा?

गुरु ने शिष्यों से कहा, मैं किसी एक का चयन अधिपति के लिए करूँ, उससे पहले मैं सबसे एक सवाल पूछना चाहूँगा। जो सही उत्तर देगा, वही मेरा उत्तराधिकारी बनेगा। गुरु ने एक सवाल पूछा, चाँदी ज्यादा मूल्यवान है या लोहा? अधिकांश का जवाब आया, चाँदी ही ज्यादा मूल्यवान होती है। केवल एक शिष्य चुप रहा। गुरु ने उससे पूछा, वत्स, तुम चुप क्यों हो? क्या तुम्हें इस प्रश्न का उत्तर नहीं आता? शिष्य ने कहा - गुरुदेव मुझे लगता है, लोहा ज्यादा मूल्यवान हो सकता है। अन्य शिष्य यह उत्तर सुनकर हँस पड़े।

गुरु ने उस शिष्य से कहा - अपने उत्तर का खुलासा करो वत्स। शिष्य ने कहा - मुझे लगता है मूल्य किसी वस्तु का नहीं होता, बल्कि उसमें रहने वाली संभावनाओं का हुआ करता है। चाँदी तो हमेशा चाँदी ही बनी रहेगी, लेकिन लोहा यदि किसी पारस का स्पर्श पा गया, तो वही सोना बन सकता है। गुरु ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा, तुम्हें धन्य है वत्स, मैं यही उत्तर चाहता था।

सही है कि किसी वस्तु या प्राणी का मूल्य नहीं होता, उसमें रहने वाली संभावनाओं का मूल्य होता है। मित्रो! याद रखो, हम अपने भीतर रहने वाली विशिष्ट संभावनाओं को पहचानते हैं, उन्हें तराशते हैं तो जिंदगी में हर किसी मंजिल को, ऊँचाइयों को पा सकते हैं, कुछ-न-कुछ नया आविष्कार कर सकते हैं। लोहे में खास संभावनाएँ छिपी होती हैं। लोहा एक साधारण तत्व है और हम सब भी साधारण तत्व हैं, लेकिन इस साधारण तत्व में रहने वाली असाधारण संभावनाओं को तलाश लिया जाए, तो यह साधारण-सा शरीर असाधारण योग्यताओं का मालिक बन सकता है।

ध्यान का मार्ग हमें साधारण से असाधारण की यात्रा पर ले जाता है, हमें असाधारण से जोड़ता है। साधारण तत्वों का ज्ञान चाहिए, तो दुनियाभर के स्कूल खुले हुए हैं, लेकिन यदि हमें किसी असाधारण तत्व का ज्ञान प्राप्त करना है, तो यमराज जैसे आत्म-योगी के पास जाना होगा। महावीर और बुद्ध जैसे किसी सत्पुरुष की शरण लेनी होगी। किसी सद्गुरु के पास जाना होगा, वहाँ पहुँचकर ही हम उनके दिव्य-ज्ञान और दिव्य उपदेश को ग्रहण कर असाधारण ज्ञान, असाधारण ऊर्जा, असाधारण चैतन्य विकास को उपलब्ध कर सकते हैं।

हर साधारण में कुछ-न-कुछ असाधारण छिपा रहता है। सामान्य शरीर में असाधारण ज्योति की संभावनाएँ होती हैं। ज़रा सोचो, यह जो मिट्टी है, उसका सही इस्तेमाल करना आ जाए तो कोई मिट्टी तब मिट्टी नहीं रह जाती, तब उस मिट्टी से दीया बन जाया करता है। कोई भी बीज साधारण दिखाई देता है, लेकिन इन्हें विकसित करने का ज्ञान आ जाए, तो फिर यह बीज, बीज नहीं रहता, अपितु किसी आम्र वृक्ष को विकसित करने का आधार बन जाता है। जिसे लोक दुर्गन्ध कहते हैं, उसके उपयोग का तरीका आ जाए, तो वही गंदगी किसी फूल की खुशबू का आधार बन जाया करती है।

इस दुनिया में जो भी महापुरुष हुए, वे भले ही साधारण रूप में जन्मे हों लेकिन उन्होंने अपने भीतर छिपी संभावनाओं को समझ लिया। यही कारण रहा कि वे साधारण से असाधारण हो गए। हम लोग भी अपने भीतर छिपी प्रतिभा को उजागर कर लें, तो साधारण से असाधारण होते देर न लगेगी। तब परिश्रम और

प्रतिभा मिलकर चमत्कार कर सकते हैं और आने वाला कल हम पर गौरव कर सकता है, हम समय के स्वर्णिम हस्ताक्षर बन सकते हैं, समय के शिलालेख बन सकते हैं। जिस तरह लोग चिराग की रोशनी में अपने जीवन के रास्ते तलाश लिया करते हैं, उसी तरह आने वाले कल में लोग हमारे जीवन से भी प्रेरणा ले सकते हैं।

हर व्यक्ति आध्यात्मिक ऊँचाइयाँ प्राप्त करे, हर व्यक्ति दिल से जीए, यही कठोपनिषद् की बुनियादी प्रेरणा है। मन जीवन की सारी बीमारियों की जड़ है, जीवन की सारी उत्तेजना, आवेश का कारण है। राग-द्वेष का सारा दलदल इसी में समाया रहता है। दिल देवालय है, हमारा दिल परमात्मा का मंदिर है। दिल एक मंदिर है, प्यार की जिसमें होती है पूजा, यह प्रीतम का घर है। हमारा दिल आत्मा का घर है और दुनिया में जीना है तो मन से नहीं, आत्मा से जीएँ। मन से जीने वाला व्यक्ति स्वार्थ और प्रपंच का जीवन जी सकता है, लेकिन दिल से, आत्मा से जीने वाला हर किसी को पात्र बना सकता है। वह लेने में विश्वास नहीं रखता, वह देना जानता है। मन के भाव स्वार्थ से जुड़े रहते हैं, इसलिए मन हमेशा लेना जानता है और दिल हमेशा देना जानता है। इसीलिए तो दिल हमारा देवता है। दिल हमेशा कुछ-न-कुछ देना ही चाहता है। दिल प्रेम का घर है और प्रेम लेना नहीं जानता। प्रेम तो हमेशा देना ही चाहता है। प्रेम कुर्बानी का दूसरा नाम है। वह अपने आपको भी दे देता है। प्रेम समर्पण का नाम है, इसलिए दिल समर्पण का सेतु है।

दिल शांति का तीर्थ है। यह हमारे भीतर छिपा अद्भुत कमल है। दिल आत्मा को, आत्मा की अनन्त ऊर्जा को धारण करने वाला केन्द्र है। दिल चलता रहता है तब तक हम खुद को जीवित कहते हैं और जब दिल धड़कना बंद कर देता है तो सब कुछ बंद हो जाता है। सब कुछ बंद होने पर दिल धड़कता रहता है तब तक आदमी को जीवित माना जाता है, भले ही वह कोमा में ही क्यों न चला जाए। लेकिन यह दिल यदि बंद हो जाए, तो इंसान खुद ही बंद हो जाता है। सारी ताकत दिल की ही है और दिल को ताकत मिलती है व्यक्ति की अपनी अंतश्चेतना से, अंतरात्मा से।

यमराज नचिकेता को आत्मा का रहस्य समझाते हुए कहते हैं, वत्स! याद रखो, यह जो कठिनता से दिखाई देने वाली आत्मा है, यह मनुष्य के अंतर्हृदय में निवास करती है। यह गहन अंधेरे में रहने वाला देव है। आत्मा स्वयं देव है। लोग ब्रह्मा की पूजा करते हैं, महावीर की पूजा करते हैं, बुद्ध-कृष्ण को पूजते हैं। दुनिया में ऐसा कोई मंदिर नहीं है जहाँ तुम्हें सारे देवी-देवता उपलब्ध हो जाएँ,

लेकिन जिंदगी में ऐसा देवालय जरूर है जिसमें सारे देवता समाहित हैं, वह है आत्मा। ब्रह्मा हमें जन्म देते हैं, विष्णु हमारा पालन करते हैं, शिव हमारा उद्धार करते हैं। सच्चाई तो यह है कि मनुष्य की अपनी आत्मा ही उसका ब्रह्म है जो उसे जन्म देती है, उसका विष्णु है जो उसका पालन करती है, आत्मा ही उसका शिव है जो उसका उद्धार करती है। हमारा आत्मदेव ही हमारा महादेव है।

अच्छे रास्तों पर ले जाने वाली आत्मा हमारा मित्र है और गलत रास्तों पर ले जाने वाली आत्मा हमारी शत्रु है। आत्मा अर्थात् हम स्वयं, आत्मा अर्थात् मैं, आत्मा अर्थात् जीवन। लोग दूसरों पर विजय प्राप्त किया करते हैं, पर ज्ञानी लोग कहते हैं कि दूसरों को जीतना सरल है, लेकिन खुद पर विजय प्राप्त करना मुश्किल है। जो अपने आपको जान लेता है, वह सबको जान लिया करता है। जो अपने आप पर विजय प्राप्त कर लेता है, वह दूसरों पर भी विजय पाने का अधिकारी हो जाता है। किसी के लिए विश्व-विजय आसान होती होगी, लेकिन अपने-आप पर विजय पाना तो सिकंदर तक के लिए भी संभव नहीं हो पाया था।

सिकंदर गंभीर रूप से बीमार हो गया। खूब इलाज कराया गया, लेकिन उसके स्वास्थ्य में सुधार नहीं हो सका। उसने वैद्यों से कहा कि अगर वे उसे चौबीस घंटे का जीवन दिला सकें, तो वह खुद के वजन के बराबर सोना देगा। लेकिन कोई ऐसा न कर सका। उसने कहा कि मुझे सिर्फ बारह घंटे कहीं से ला दो, चाहे मेरा आधा राज्य ले लो, लेकिन जीवन कहीं बाजार में थोड़े ही मिलता है जो लाकर दे दिया जाए। सिकंदर ने फिर कहा - मैं अब तक जीता गया दुनिया का सारा राज्य उस व्यक्ति को देने को तैयार हूँ जो मुझे एक घंटे का जीवन जीने के लायक बना दे, लेकिन कोई ऐसा न कर पाया। सिकंदर मर गया। तब से दुनिया में यह मशहूर हो गया कि आदमी बँधी मुट्ठी आता है, पर हाथ पसारे जाता है। सिकंदर हार गया, महावीर जीत गये। नेपोलियन हार गया, बुद्ध जीत गए। आत्म-विजय का मार्ग ही ऐसा है, जो हर विश्व विजय से बड़ा मार्ग है। इसीलिए बड़े-से-बड़ा राजा और बड़े-से बड़ा राष्ट्रपति भी संत जनों के आगे नतमस्तक हो जाता है। यह मानते हुए कि वैभव कितना भी बड़ा क्यों न हो, त्याग के आगे तो बौना ही है। इसीलिए कहा गया है - स्वयं पर विजय पाना, अपनी मृत्यु पर विजय पाना किसी के वश में नहीं है।

यमराज ने नचिकेता को आत्म-ज्ञान के रहस्य बताने शुरू किए कि व्यक्ति के अंतर्हृदय में ही व्यक्ति की आत्मा का निवास है। ऐसा करते हुए वे नचिकेता को मानो संदेश दे रहे हैं कि तुमने आत्मा का निवास जान लिया है, तुमने आत्म स्वरूप को पहचान लिया है। इसलिए हे नचिकेता! परमात्मा और स्वर्ग-प्राप्ति के

सारे रास्ते तुम्हारे लिए खुल चुके हैं। तुमने यह समझ लिया है कि आत्मा के द्वारा ही परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए हमें अपने अंतर्हृदय में उतरना ही होगा।

व्यक्ति की सारी संपदा स्वयं व्यक्ति से ही जुड़ी है। लोग संपदा, सुख-शांति औरों में तलाशना चाहते हैं, लेकिन सच्चाई यह है कि व्यक्ति की सारी संपदा, सुख-शांति अपने-आप से जुड़ी है। तभी तो किसी ने कहा है - 'कस्तूरी कुण्डली बसै, या ढूँढ़े जग मांही।' एक आदमी घर की अलमारी में कुछ ढूँढ़ रहा था। पत्नी ने उससे पूछा - 'सौ का नोट रखा तो इसी अलमारी में था या कहीं और?' पति ने कहा - 'यह तो याद नहीं, लेकिन यह सोचकर ढूँढ़ रहा हूँ कि मेरा नहीं तो किसी और का नोट मिल जाएगा।'

यहाँ हम औरों में तलाशते हैं। खोया है खुद का, ढूँढ़ रहे हैं औरों में। यमराज कहते हैं - व्यक्ति की सारी दौलत, सारी ताकत उसी में समाहित है। वह इन्हें लोगों में ढूँढ़ता है। तेरा तेरे पास है, अपने मांही टटोला, राई घटे ना तिल बदे, हरि बोलो हरि बोल। यानी तुम्हारी संपदा तुम्हारे भीतर ही समाहित है। टटोलोगे तो मिल ही जाएगी।

आइए, ज़रा समझें कि यमराज किस तरह हमें आत्म-तत्त्व के बारे में बता रहे हैं। यमराज कहते हैं - 'मनुष्य इस आत्म-तत्त्व को सुनकर तथा उसे भली प्रकार ग्रहण करके, उस पर विवेकपूर्ण विचार करके इस सूक्ष्म आत्म-तत्त्व को जानकर इस मोदनीय की उपलब्धि कर अति आनन्दित हो जाता है। मैं तुझ नचिकेता के लिए परमात्मा का द्वार खुला हुआ मानता हूँ।'

कितनी अद्भुत बात है। यमराज कह रहे हैं - हे नचिकेता! मैं तुम्हारे लिए परमात्मा का द्वार खुला देख रहा हूँ। परमात्म-तत्त्व देखना है, तो अंतर्हृदय में उतरना होगा। देखिए, आखिर मृत्यु ने अपना रहस्य बता ही दिया कि मैं व्यक्ति के अंतर्हृदय में प्रवेश करके वहाँ विद्यमान प्राण-तत्त्व को हरण कर लेता हूँ। यह जो गूढ़ तत्त्व हैं - आत्म-तत्त्व, मनुष्य के हृदय में ही विराजमान हैं। यमराज कहते हैं कि हे नचिकेता! अब जबकि मैंने तुझे आत्मा का रहस्य समझा दिया है, इसलिए अब तुम्हारे लिए परमात्मा के द्वार अपने-आप खुल गए हैं। यह जो ऋचा कठोपनिषद् में है, वह दिखने में साधारण लग सकती है लेकिन इसमें आत्म-ज्ञान के सारे चरण छिपे हैं।

आत्म-ज्ञान के पाँच चरण कहे जा सकते हैं। मनुष्य इस आत्म-तत्त्व को सुनकर, ग्रहण कर, उस पर विवेकपूर्वक चिंतन कर, उपलब्धि कर और प्रमुदित होकर प्राप्त कर सकता है। तो पहला चरण हुआ, ज्ञानीजनों से ध्यानपूर्वक सुनना।

जिन महापुरुषों ने ज्ञान उपलब्ध किया है, उनसे सुनना। यमराज जैसे किसी आत्म-योगी से आत्म-तत्त्व के बारे में सुनना। सुनना महत्त्वपूर्ण है। सुनने से ही जिज्ञासा का जन्म होगा। जिज्ञासा से ही हम उस आत्म-तत्त्व तक पहुँच पाएँगे।

पहला चरण हुआ - सुनना। केवल कानों से नहीं सुनना, मनोयोग से सुनना। दिल से सुनोगे, अंतर मनोयोग से किसी तत्त्व का श्रवण करोगे तभी श्रवण सार्थक होगा। ऊपर-ऊपर सुनोगे तो क्या होगा? मन कहीं और हो सकता है। मन व्यापार में चला जा सकता है। मन फैक्ट्री में उलझा हुआ रह सकता है। मन बैंक-बेलेंस की गिनती में लगा हुआ रह सकता है। मन दुकान में कर्मचारी आया या नहीं आया, इस उधेड़बुन में उलझा हुआ रह सकता है। भाई यह मन है। कब कहाँ चला जाएगा, कहाँ भटक जाएगा - इसका कोई अता-पता नहीं है। यह बिना घर का मकान-मालिक है। मालिक है पर किस घर का, कितनी देर का मालिक है, यह कोई नहीं जानता। कैमरे से फोटो खींचो, तो यह उस फोटो में नहीं आता, एक्स-रे करो तो यह एक्स-रे में भी नहीं आता। सी.टी.-स्केन या एम.आर.आई. करो, तब भी मन पकड़ में नहीं आता। जो आता है वह स्थूल है जबकि मन आत्यन्तिक सूक्ष्म है।

ऐसा हुआ, एक व्यक्ति घर में बैठा पूजा कर रहा था। एक आदमी उनके घर पहुँचा। उस व्यक्ति की पुत्रवधु बाहर बैठी थी। उसने पूछा, ससुर जी घर पर हैं? बहू ने कहा, वे तो जूते की दूकान पर गए हैं। जूते की दूकान पर गया, तो उसे सेठजी नहीं मिले। वह वापस लौटा। कहने लगा, वहाँ तो नहीं है। बहू ने कहा, अब वे कपड़े की दूकान पर गए हैं। वह आदमी कपड़े की दूकान पर भी गया, लेकिन सेठजी उसे नहीं मिले। वह वापस लौटा तो देखा, सेठजी घर के भीतरी कमरे से निकल रहे हैं। वह चौंका। नाराज होकर कहने लगा, आप घर में ही थे, लेकिन आपकी बहू ने कभी कहा कि आप जूते की दूकान पर गए हैं और कभी कहा कि कपड़े की दूकान पर गए हैं। यह सब क्या है? ससुर भी चौंका। अरे, बहू ने ऐसा क्यों कहा। पता चला कि माला फेरते समय सेठजी के मन में एक बार तो आया था कि आज जूते खरीदने हैं। थोड़ी देर बाद कपड़ों की दुकान का खयाल आया था। व्यापार के विकल्प मन में उठे थे।

आप माला फेर रहे थे लेकिन मन कहीं और था। इसलिए कहा है, आत्म-तत्त्व प्राप्ति के लिए पहला चरण है - मनोयोगपूर्वक सुनना। शहर में सत्संग खूब हो रहे हैं। हालात यह है कि हर संत के पास भीड़ उमड़ रही है, लेकिन इंसान बदल नहीं रहा। कथाएँ मनोरंजन की तरह सुनी जा रही हैं, इसीलिए तो हृदय परिवर्तन नहीं हो रहा है। इंसान कथाओं में जाता ज़रूर है लेकिन ध्यान से सुनता



नहीं। कोई ध्यान से सुन भी लेते हैं, तो ग्रहण नहीं करते। इसलिए यमराज ने कहा, जो सुनो, उसे ग्रहण भी करो। भागवत कथाओं, सत्संग के आयोजनों में जाने वाले सभी लोग ध्यान से सुनकर ग्रहण करने लगें, तो हिन्दुस्तान का कायाकल्प हो जाए, देश का स्वरूप ही बदल जाए। मन से सुनें, मन से ग्रहण करें, तब ही बात बनेगी। अन्यथा, वही पुरानी कहावत कि 'सुणता-सुणता फूट्या कान, नहीं आयो हिवड़े में ज्ञान।' लोग सुनते खूब हैं, पर एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल देते हैं। ग्रहण नहीं करते। सुनना व्यक्ति के लिए सौभाग्य की बात है लेकिन सुने हुए को ग्रहण कर लेना ही लाख रुपए की बात है।

एक पुरानी कहानी कही-सुनी जाती है। राजा भोज के दरबार में तीन मूर्तियाँ लाई गईं। तीनों एक जैसी थीं, वजन, आकार सबका समान था लेकिन तीनों की कीमत अलग-अलग बताई गई। जौहरी चौंके। भला ऐसा क्यों? एक आत्म-ज्ञानी वहाँ मौजूद था। उसने इसका भेद बताने का फैसला किया। उसने एक सूई और धागा मँगवाया। लोगों ने आपस में कानाफूसी की, सूई और धागे से भला क्या पता चल पाएगा कि किस मूर्ति में क्या विशेषता है?

आत्म-ज्ञानी ने सूई में धागा पिरोया और एक मूर्ति के कान में डाला। सूई अंदर न जा पाई। उसने बताया, इसकी कीमत है, सवा कौड़ी। दूसरी मूर्ति के कान में सूई डाली, तो दूसरे कान से बाहर निकल आई। उसने बताया, इसकी कीमत है, सवा रुपया। अब बारी आई तीसरी मूर्ति की। इस बार आत्म-ज्ञानी ने सूई को कान में डाला तो सूई भीतर चली गई। सूई को आखिर धागे से पकड़ कर बाहर निकालना पड़ा। आत्म-ज्ञानी ने बताया, यह मूर्ति सवा लाख रुपए की है।

इसकी व्याख्या यूँ की गई, पहली मूर्ति इस बात का संकेत कर रही थी कि उसकी तरह के इंसान कुछ सुनना ही पसंद नहीं करते, इसलिए उन लोगों की कीमत सवा कौड़ी से ज्यादा नहीं हो सकती। दूसरी मूर्ति ने सुना लेकिन जो कुछ भी सुना, उसे दूसरे कान से निकाल दिया। ज़िन्दगी में ज्यादा लोग ऐसे ही हैं जो सुनते तो हैं, लेकिन उसे दूसरे कान से निकाल देते हैं, भीतर कुछ नहीं रखते। लेकिन तीसरी तरह की मूर्ति के समान लोग बहुत कम होते हैं जो सुनते हैं और उसे ग्रहण कर आत्मसात् कर लेते हैं।

जो सुनता है और ग्रहण कर लेता है, वही सार्थक होता है। केवल सुना-पढ़ा ज्ञान किताबी ज्ञान बनकर रह जाता है। ज्ञान वह है जो ग्रहण किया जाए। पढ़ने के नाम पर तो हर कोई पढ़ा-लिखा मिल जाएगा, लेकिन ग्रहण करने के नाम पर काला अक्षर भैंस बराबर ही मिलेगा। सब तोता-रटंत विद्या वाले हैं। जीवन में जिन्होंने ज्ञान को उपलब्ध किया, वैसे लोग किस्मत से मिल पाते हैं।

शिक्षा सिर्फ आजीविका के लिए प्राप्त नहीं की जाती। शिक्षा का उद्देश्य इंसान में बेहतरीन संस्कारों का निर्माण करना है। इंसान का विकास होना ही चाहिए, न केवल सांसारिक विकास अपितु आध्यात्मिक विकास भी होना चाहिए। आध्यात्मिक विकास करने के लिए ही यमराज कहते हैं, हे नचिकेता, आत्म-तत्त्व के बारे में ध्यानपूर्वक सुनो। तुम मृत्युदेव के पास आकर मृत्यु के बारे में, आत्म-तत्त्व के बारे में जानना चाहते हो, तो तुम इस बारे में ध्यानपूर्वक सुनो। सुनकर उसे ग्रहण करो, उस पर विवेकपूर्वक विचार करो कि क्या लेकर आए थे, क्या छोड़कर जाओगे? शरीर क्या है? आप खुद क्या हैं? इस पर विचार करोगे, तो भीतर से जवाब भी मिलने लगेगा।

साथ कुछ नहीं जाएगा, सब यहीं रह जाएगा। संसार में जो कुछ है, उससे इंसान राग पाल लेता है। अमुक से मुझे प्रेम है, अमुक से नफरत है, इस तरह के निमित्त हम अकारण ही खड़े कर लेते हैं। अनुराग, ईर्ष्या, किसी को देखकर खुशी, किसी को देखकर नाराजगी, मन में जलन, ये सब क्या हैं? इस संसार के झूठे निमित्त। असलियत तो यह है कि तुम अकेले आए थे, अकेले ही जाओगे। गीता कहती है, सोच-सोचकर सोचो, तुम आए थे तब क्या लाए थे? जाते समय साथ क्या ले जाओगे? इसलिए धन है, तो उसका उपयोग करो, सार्थक उपयोग। आसक्ति मत पालो। माता-पिता के साथ हो, पत्नी के साथ हो, तो जीवन की अनिवार्यताओं का पालन करो, उनके प्रति ममत्व मत पालो। ऐसा नहीं हो कि उनके बिना जी ही न सको। जीव अकेला आता है और अकेला चला जाता है।

भोजन है तो खा लो, न मिले तो उपवास सही। उसका भी आनन्द लो। फकीरी का आनन्द तो यही है कि सब-कुछ है तब भी ठीक और कुछ नहीं है तब भी ठीक। साधु की परिभाषा क्या होती है? जो मिल गया, खा लिया; नहीं मिला तो संतोष कर लिया। मैं इसमें एक बात जोड़ देता हूँ, मिल गया तो प्रभु का प्रसाद और न मिला तो समझो, आज प्रभु की कृपा हो गई कि उपवास का अवसर मिल गया। कुछ भी मिले तो बाँटकर खाओ। तब वह प्रसाद बन जाएगा। साधु का यही काम है, जो मिला, उसे मिल-बाँटकर खाना। यही सकारात्मक जीवन जीने की कला है।

यमराज कह रहे हैं, विवेकपूर्वक विचार करो, उसी से पता चलेगा कि क्या नित्य, क्या अनित्य है? क्या संयोग और क्या वियोग है? अच्छा-बुरा क्या है? सुबह के बाद रात आती है और रात के बाद सुबह। प्रकृति परिवर्तनशील है। शरीर भी परिवर्तनशील है। विवेकपूर्वक किसी बिन्दु पर विचार करेंगे, तो अपने आप अनासक्त होते चले जाएँगे, निर्मोही बनने की शुरुआत हो जाएगी। तब किसी एक

चीज के प्रति आसक्ति नहीं रहेगी। नहाने के लिए तब लक्स या डब के बारे में सोचना नहीं पड़ेगा। स्वच्छता ही चाहिए तो किसी भी साबुन से काम चल जाएगा। किसी साबुन विशेष के प्रति आसक्ति नहीं होगी। महिलाएँ नहाने में बहुत समय लगा देती हैं। शरीर को साफ करना है, तो इसमें इतना समय क्यों खर्च करें। नहाने के बाद साड़ी के चयन में समय लगेगा, यह रंग पहनूं या वह रंग। नहीं, इस रंग की साड़ी तो कल ही पहनी थी, आज दूसरा रंग होना चाहिए। रंग के प्रति इतनी आसक्ति ?

विवेकपूर्वक विचार करेंगे तो रंगों के प्रति मोह समाप्त हो जाएगा। परिग्रह-बुद्धि और एषणाओं पर नियंत्रण रखने से ही हम अनासक्ति की ओर कदम बढ़ा पाएँगे। किसी भी चीज का परिणाम देखने का प्रयास करोगे तो उस चीज के प्रति आसक्ति अपने आप कम होती चली जाएगी। हमें चिंतन-मनन करना होगा। आत्मा के बारे में भी चिंतन-मनन करना होगा। यमराज कहते हैं, 'आत्मा के बारे में पहले ध्यानपूर्वक श्रवण करो, फिर ग्रहण करो, धैर्यपूर्वक उसे जानने का प्रयास करो। जब जान जाओ तो उसे उपलब्ध कर लो। किसी भी मंजिल को पाना है, तो धैर्यपूर्वक सुनना ही होगा, ग्रहण करना होगा। तभी उसे पा सकेंगे। सुनकर, ग्रहण कर अपने भीतर आत्मसात् करना होगा।'

कठोपनिषद् के माध्यम से हमने आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के पाँच चरण बना लिए हैं। इन चरणों से ही रोशनी का नया रास्ता खुलेगा। हम इसकी रोशनी में जिएँगे। चाँद का प्रकाश, सूर्य का प्रकाश, सितारों का प्रकाश, दीपक का प्रकाश, हर प्रकाश का अपना आनन्द है। सच्चा प्रकाश तब होगा, जब अंतरात्मा प्रकाशित होगी। तब अंधकार नहीं रहेगा। भीतर की रोशनी फूट पड़ेगी। बाहर की दीपावलियाँ सजाकर क्या कर लोगे, यदि भीतर के दीप बुझे हुए हैं। पहले भीतर से स्वयं को रोशन करो। फिर तो बाहर रोशनी अपने आप हो जाएगी। कुल मिलाकर बात का सार इतना ही है कि सत्य का श्रवण करो, ग्रहण करो, चिंतन-मनन करो, उसमें लयलीन बनो। जो प्राप्त हुआ है, उसके आनन्द में थिरक उठो। जब तक आत्म-सत्य न मिले, तब तक महावीर की तरह मौन को महत्त्व दो। जब मिल जाए, तो मीरा की तरह झूम उठो। पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे। मीरा नाच उठी थी, तुम्हें मिल जाए, तो तुम भी मीरा बन जाना। नचिकेता भी आत्मसत्य का ज्ञान पाकर नाच उठा होगा। अस्तित्व ने उस पर ढेर सारे पुरस्कार लुटा दिए होंगे। आओ, हम भी अपना आनन्द लें।



# 16

## कैसे पाएँ तत्व-ज्ञान

**बा**त की शुरुआत एक छोटे से प्रसंग से करते हैं। किसी समय एक राजा ने अपने लिए एक खूबसूरत महल का निर्माण करवाया। महल इतना सुन्दर था कि दूर-दराज के लोग उसे देखने आते और महल की शिल्प-कला की तारीफ़ किया करते। एक दिन राजा ने एक संत को अपने महल में आमंत्रित किया। राजा ने संत को अपना महल दिखाया। राजा संत को महल का एक-एक हिस्सा दिखाते हुए उसकी तारीफ़ करने लगा, 'मैंने अमुक पत्थर वहाँ से मँगाया है, स्तंभ अमुक स्थान से मँगाए, संगमरमर से बनाए गए हैं। महल की इस छत पर सोने की स्याही से चित्र बनाए गए हैं।' राजा अपने महल की जितनी तारीफ़ कर सकता था, उसने उतनी तारीफ़ की। संत ने सारा राजमहल देख लिया, लेकिन कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। राजा को आश्चर्य हुआ। उन्होंने संत से पूछा, 'क्या बात है महाराज, आप कुछ बोल नहीं रहे; कहीं कुछ कमी तो नहीं रह गई? आप मुझे बताएँ, मैं उसमें सुधार की कोशिश करूँगा।' संत ने आखिर अपना मौन तोड़ते हुए कहा, 'हे राजन्! मुझे लग रहा है कि आपने राजमहल बहुत ही सुन्दर, कलात्मक, मजबूत बनवाया है लेकिन मैं चुप इसलिए रहा कि आपने राजमहल तो चिरस्थायी बना लिया, लेकिन इसमें रहने वाला चिरस्थायी नहीं है।' यह सुनते ही राजा चौंक पड़ा। वह कहने लगा, 'महाराज, यह आप क्या कह रहे हैं?' संत चुप रहे, तो कुछ ही देर में राजा उनका संकेत समझ गया।

राजमहल तो सब चिरस्थायी बनवाना चाहते हैं, लेकिन उसमें रहने वाले स्थायी कहाँ हुआ करते हैं! प्रकृति का नियम है, सब कुछ परिवर्तनशील है; फिर महलों में रहने वाले हमेशा कैसे रह सकते हैं। एक दिन तो सबको जाना ही पड़ेगा। सत्ता के लिहाज से हो सकता है कि हर चीज अपरिवर्तनशील हो, लेकिन यह तो बाहरी रूप हुए। भीतर तो जो कुछ है, वह बदलने वाला है। हर चीज को बदलना ही पड़ता है। धातु के रूप में सोने का उदाहरण लिया जा सकता है। चाहे नैकलेस बनाएँ या हाथों की चूड़ियाँ, सोने का

रूप बदलता रहेगा, लेकिन उसका मूल तत्त्व तो वही रहेगा। मूल चेतना सौ-सौ परिवर्तनों के बाद भी अपरिवर्तनशील रहेगी।

एक लड़की है, वह किसी की बेटी है और किसी की बहन है। उसकी शादी हो गई; अब वह किसी की पत्नी है और किसी सास की बहू। उसके संतान हुई, तो वह किसी की माँ बन गई। एक दिन वह सास बन जाती है; फिर उसे दादी बनने का सुख भी मिल जाता है। इतने सारे रूप बदलने के बावजूद वह एक महिला तो रहेगी ही। यह उसका मूल स्वभाव है। नारी तो वह तब भी थी, जब वह किसी की लड़की थी और नारी वह तब भी रहेगी, जब किसी की माँ बन जाएगी। हम पैदा होते हैं, बचपन बीतता है, जवानी आती है, बुढ़ापा आता है, एक दिन मर जाते हैं, मिट्टी बन जाते हैं। मिट्टी, मिट्टी में मिल जाती है। मूल तत्त्व है आत्मा, जो अपरिवर्तनशील रहता है। बाहर के रूप बदलते रहते हैं। मूल सत्ता वही रहती है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता।

दुनिया में तत्त्व-ज्ञानी कौन है? वह जिसने परिवर्तन के रहस्य को समझ लिया। जो निर्मोही, अनासक्त हो गया, वही इन परिवर्तनों को समझ सकता है। दूसरा वह व्यक्ति भी तत्त्व-ज्ञानी है, जिसने इस रहस्य को समझ लिया कि सब कुछ परिवर्तनशील होने के बावजूद कुछ है जो अपरिवर्तनशील रहता है। जिसने परिवर्तन के मर्म को समझा, उसने तत्त्व-ज्ञान प्राप्ति का आधा रास्ता पार कर लिया। जिसने परिवर्तनशीलता के बीच रहने वाली अपरिवर्तनशीलता को समझ लिया, वह संपूर्ण आत्म-ज्ञानी हो गया। उसने तत्त्व-ज्ञान प्राप्ति के लिए शत-प्रतिशत अंक प्राप्त कर लिये।

किसी वस्तु, उसमें रहने वाले तत्त्व, उसमें होने वाले परिवर्तन के मर्म को समझने वाला ही तत्त्व-ज्ञानी होता है। भौतिक परिस्थितियों में मर्म को समझने वाला व्यक्ति तत्त्व-ज्ञानी हो गया, लेकिन इस भौतिक में जो मूल तत्त्व है, उसे समझने वाला आत्म-ज्ञानी कहलाएगा। प्रश्न उठ सकता है कि आत्म-ज्ञान ज़्यादा श्रेष्ठ है या तत्त्व-ज्ञान? आत्म-ज्ञान तो तत्त्व-ज्ञान का ही एक हिस्सा है। प्रत्येक वस्तु में दो हिस्से होते हैं, एक वह जो परिवर्तनशील है और दूसरा वह जो अपरिवर्तनशील है। परिवर्तनशील है हमारा शरीर, अपरिवर्तनशील है हमारी आत्मा। शरीर रूपी वस्तु को इसी आत्मा ने धारण कर रखा है। अलग-अलग पुद्गल-परमाणुओं को जिसने जोड़ रखा है, वह हुई उसकी चेतना, उसकी शक्ति। जैसे आटे का प्रत्येक कण अलग-अलग होता है, लेकिन उसमें पानी डालते ही वह सँध जाता है और सारे कण एक हो जाते हैं। आटे का कण परिवर्तनशील है, लेकिन आटे को बाँधने वाला है पानी।

सबका शरीर परिवर्तनशील है, लेकिन इस शरीर के भीतर जो अपरिवर्तनशील रहता है, वह चेतना, जिसे तत्त्व ज्ञानियों ने आत्मा नाम दिया है, वह आत्मा हमारा जीवन है, मूल तत्त्व है, जिसके रहते हम जीते हैं और जिसके चले जाने से यह शरीर निष्प्राण

हो जाता है। आत्मा इस शरीर को धारण करने वाला तत्त्व है। इसके निकल जाने पर शिव भी शव बन जाता है। हमारी शान क्या है, यही आत्मा। यही तो हमारा मूल प्राण है, हमारी मूल चेतना है। तत्त्व-ज्ञानी वह है जो दोनों के मर्म को समझ लेता है। जो चिता जलने से पहले अपनी चेतना को जगा लेता है, वही आत्मज्ञान का मालिक बन पाता है।

आप प्रकृति की गोद में बैठें, उसमें होने वाले परिवर्तनों को देखें और समझें। हर व्यक्ति को प्रकृति की गोद में बैठना चाहिए ताकि वह परिवर्तनों से रू-ब-रू हो सके। इस समय पतझड़ का मौसम है। पत्ते गिर रहे हैं। कुछ समय बाद उन पत्तों के स्थान पर हरे पत्ते आने लगेंगे। आप किसी शांत उपवन में जाकर बैठें। वहाँ पेड़ से अपने सिर पर गिरते हुए पत्तों को देखें। जीवन की नश्वरता को समझें। एक पेड़ की ओर झाँकेंगे, तो आपको नश्वरता का बोध होगा और दूसरे पेड़ को देखेंगे, तो नये उगते पत्तों को देखकर जीवन का अहसास होगा। मैं चाहता हूँ कि हर व्यक्ति गहराई से इस तत्त्व को समझ जाए कि यहाँ कोई भी शाश्वत नहीं है। सब-कुछ यहाँ बदल जाता है। कहीं व्यापार हो रहा है, तो उसमें लाभ मिल रहा है और किसी को व्यापार में नुकसान हो रहा है। कहीं मौसम ठण्डा है, तो कहीं गर्म। कोई व्यक्ति कभी क्रोध में है, तो कभी शांत। इन सारी चीजों को देखकर हमें बोध हो जाना चाहिए कि परिवर्तन ही प्रकृति का नियम है।

कोई भी तत्त्व सदा एक-सा नहीं रहता। न शरीर, न वाणी, न परिस्थितियाँ। कुछ भी सदा समान नहीं रहता। फूल का खिलना, फिर उसका मुरझाना - दोनों ही स्थितियों से फूल को गुजरना पड़ता है। जन्म हुआ, ठीक है, कोई मर गया, चलो यह भी प्रकृति की व्यवस्था है। एक-न-एक दिन सभी को बिछुड़ना है। इसलिए चिंता मत करो। दादा मरता है, तो पोता पैदा हो जाता है। एक जाएगा, दूसरा आएगा - यही प्रकृति है। कोई आएगा, तब भी दुनिया चलती है और कोई चला जाएगा, तब भी दुनिया चलती ही रहेगी। इंदिरा गांधी थीं, तब भी देश था और चली गई, तब भी देश चल रहा है। माता-पिता हैं, तो बच्चे के पालन में सहूलियत है। ऊपर चले जाएँ, तो बच्चा पीछे बेमौत तो मरने वाला है नहीं। सब यहाँ चला-चली का खेल है। लोग आते हैं और चले जाते हैं। यही प्रकृति का धर्म है, जीवन का मर्म है। इसे समझ लिया, तो जीवन का आधा तत्त्व-ज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान तो हासिल कर लिया। केवल शास्त्रों को मत पढ़ते रहो। यह सारा जगत् ही एक शास्त्र है। रोजमर्रा की ज़िंदगी में घटने वाली घटनाओं को पढ़ो। हर घटना जगत् के शास्त्र का एक अध्याय है। घटनाओं को जितनी सचेतनता से लोगे, हमारी चेतना में उतनी ही गहराई बनेगी। हम जीवन की सच्ची समझ के मालिक बनेंगे। हमारे राग-द्वेष के अनुबंध शिथिल होंगे।

परिवर्तन की पहचान हमें तत्त्व-ज्ञान की तरफ ले जाती है। आज एक बच्चा जन्मा, कल वह मर भी सकता है। इस बात को जिसने समझ लिया, वह न तो किसी के आने पर आनन्दित होगा और न ही किसी के चले जाने पर परेशान होगा। नदिया में पानी आता है, चला जाता है, इसलिए कभी-कभी सरोवर के किनारे भी बैठना चाहिए। सरोवर में उठती-गिरती लहरें देखकर हमें अहसास होगा कि एक लहर आ रही है, दूसरी जा रही है। यह प्रकृति का परिवर्तन वाला धर्म समझने की कोशिश करें, बाकी महज साँसों पर ध्यान रखने का कोई औचित्य नहीं है। केवल इस मर्म को समझने के लिए कि प्रकृति परिवर्तनशील है, हम साँसों पर ध्यान करते हैं।

आज चेहरा जवान है, कल उसमें झुर्रियाँ पड़ जाएँगी। इसलिए कुछ है, तो ठीक है और नहीं है, तो ठीक है। कल भी वही कर रहे थे, आज भी वही कर रहे हो, आने वाले कल भी वही सब-कुछ करना है। फिर ज़्यादा जीने का मोह क्यों? अमर तो कोई है नहीं। इसलिए मौत के लिए न तो कोई शिकायत होनी चाहिए और न ही उसे बुलावा देना चाहिए; मौत को जब आना होगा, आ जाएगी। प्रभु की इच्छा है कि मैं रहूँ, तो रह जाँँ। प्रभु की इच्छा है कि चले जाँँ, तो सहज ही चले जाँँ।

बात की शुरुआत हम ने उस राजा की कहानी से की थी जिसने महल तो बहुत खूबसूरत बनवाया था लेकिन उसमें रहने वाला कोई भी चिरस्थायी नहीं है। इस कहानी का मर्म यही है कि हम अपने-आप को समझ सकें, संबंधों को समझ सकें, मित्रों और दुश्मनों को समझ सकें। जिसने प्रकृति के इस मर्म को समझ लिया, वह वीतरागी बन गया। प्रकृति चार जनों को जोड़ती है, तो चार जनों को तोड़ती भी है। संतों के लिए कहावत है कि बापजी रे सिधला पट्टे, कोई घाले कोई नटे, सिधला घाले तो मावे कटे, नहीं घाले तो जावे कटे। यह व्यवस्था समझ लो कि हम साधना के मार्ग पर चलते हैं तो हमें खाना भी पड़ता है। आने वालों की खातिर भी करनी पड़ती है। कभी सम्मान मिलता है, तो कभी अपमान भी झेलना पड़ सकता है। किसी भी परिस्थिति में किसी के लिए मन में कोई शिकवा या शिकायत नहीं होनी चाहिए। सहज रूप में लें सारे सम्बन्धों को। जब तक मेरे आपके संयोग थे, तो ठीक था; अब नहीं हैं, तो कोई बात नहीं। एक पुराना गीत है- मन रे तू काहे न धीर धरे। वो निर्मोही, मोह न जाने, किसका मोह करे। उतना ही उपकार समझ, कोई जितना साथ निभा ले, जन्म-मरण तो एक है सपना, ये सपना बिसरा दे। कोई न संग मरे... मन रे तू काहे न धीर धरे...। तुम किसी के काम आए, तो ठीक और कोई तुम्हारे काम आया, तो ठीक। कोई काम न आए तब भी आनन्द हो। जो है उसमें आनन्द और नहीं है, तो भी आनन्द।

कहते हैं आनन्दघन के पास एक रानी साहिबा आई। कहने लगी, महाराज, मेरे पति मुझसे रुष्ट रहते हैं, आप कोई तावीज़ बनाकर दें। आनन्दघन मुस्कराए, उन्होंने

पास पड़ा एक कागज उठाया, उस पर जल्दबाजी में कुछ लिखा और पुड़िया में बाँध कर दे दिया। रानी खुश हो गई। घर जाकर उसका तावीज बनाया और पति के सिरहाने रख दिया। संयोग हुआ या उस तावीज का असर, राजा का मन बदल गया। वह रानी से अच्छे तरीके से पेश आने लगा। रानी के प्रति उसके मन में अनुराग भी जाग उठा। एक दिन राजा को पता चला कि उसके सिरहाने कोई तावीज पड़ा है। उन्होंने मनोविनोद करते हुए रानी से इसके बारे में पूछ ही लिया। रानी पहले तो घबराई, लेकिन राजा ने उसे अभयदान दे दिया, तब उसने सारी कहानी बताई। राजा जोर से हँसे और कहने लगे, जरा देखो तो सही इस तावीज में लिखा क्या है ? तावीज को खोला गया। उसमें लिखा था, 'राजा-रानी दोऊ मिले, उसमें आनन्दघन को क्या ?' मिल जाओ तो ठीक है और न मिल सको, तो भी ठीक, आनन्दघन को इससे कोई सरोकार नहीं। यह तो संयोग है कि राजा का मन बदल गया। तावीज से कुछ नहीं हुआ करता। बस, राजा का मन बदला तो इसका श्रेय आनन्दघन को मिल गया।

जीवन का तत्त्व-ज्ञान यही है कि आपने परिवर्तनशील और अपरिवर्तनशील को जान लिया। रोज नहाते हैं, फिर गंदे हो जाते हैं। रोज खाते हैं, वह मिट्टी हो जाता है। इसका मर्म समझ में आना चाहिए। सहज रूप में इंसान जिनदगी जीए। यमराज ने इसी परिवर्तनशील और अपरिवर्तनशील तत्त्व के बारे में नचिकेता से चर्चा की। नचिकेता यमराज के सम्मुख उपस्थित हुए। वे आत्मा का रहस्य जानने के अभिलाषी हैं। यमराज नचिकेता को आत्म-तत्त्व के बारे में विस्तार से समझा रहे हैं।

यमराज कहते हैं, 'हे नचिकेता! हम सबके हृदय में वह आत्मदेव और आत्म-तत्त्व रहा करता है। हमारा हृदय उस आत्म-तत्त्व का केन्द्र है। हमारे हृदय के गहरे गह्वर में वह आत्म-तत्त्व व्याप्त है। सूर्य की किरणों में प्रकाश है, लेकिन मूल स्रोत तो सूर्य ही है। किरणें उस स्रोत से निकलने वाला प्रभाव है। इसी प्रकार हमारे शरीर से भी रोशनी फैल रही है, लेकिन उसका मूल केन्द्र हमारा हृदय-स्थल ही है। भौतिक रूप में शरीर एक मशीन है, लेकिन चेतनागत तौर पर उसमें जो प्राण-तत्त्व है, वह आत्मा ही है। उस आत्म-तत्त्व के बारे में ही कठोपनिषद् में रहस्योद्घाटन हुआ है।

नचिकेता ने अगला प्रश्न किया। अब संवाद प्रारंभ हो रहा है मृत्युदेव और नचिकेता के बीच। बातचीत हो रही है, अब वे दोनों वरदान से ऊपर उठ चुके हैं। अब गुरु-शिष्य के बीच संवाद हो रहा है। दोनों एक तरह से मित्र हो गए हैं। दोनों के बीच प्रगाढ़ता बढ़ती जाती है। हर तरह का भेद समाप्त हो गया है। अद्वैत स्थापित हो गया है। गुरु कौन, जो शिष्य को कुछ बना दे। कुम्हार जब घड़ा बनाता है, तो वह कुम्हार नहीं रह जाता। तब वह खुद मिट्टी बन जाया करता है। वह चाक पर रखी मिट्टी में अपने प्राण उंडेल देता है। मिट्टी तब मंगल कलश, दीपक, गुलदस्ता बन जाती है। हम सब मिट्टी



ही तो हैं। गुरुजन इस मिट्टी में छिपे तत्त्व को उजागर कर देते हैं। चाँदी और लोहे में ज़्यादा मूल्यवान कौन है, कहने को तो चाँदी लेकिन लोहे के भीतर सोना बनने की जो संभावनाएँ छिपी हैं, वे उसे ज़्यादा मूल्यवान बना देती हैं। आप अपने भीतर रहने वाली सम्भावनाओं को प्रकट कर लें। एक विद्यार्थी अपनी संभावनाओं को पहचान ले, अपनी प्रतिभा को उजागर कर ले, तो साधारण में भी असाधारण का जन्म हो सकता है।

नचिकेता ने तब यमराज से अगला प्रश्न पूछा, 'हे मृत्युदेव, जो धर्म से पृथक, अधर्म से पृथक तथा इस कारण रूप प्रपंच से भी पृथक है, और जो भूत और भविष्यत् से भी अन्य है, ऐसा आप किसे देखते हैं, वही मुझसे कहिये।' नचिकेता के इस प्रश्न में कितनी ही बातें छिपी हैं। नचिकेता की जिज्ञासा है कि 'हे भगवन्, संसार में ऐसा कौनसा तत्त्व है जो धर्म से अलग है और अधर्म से भी अलग है। कार्य से भी अलग है और कारण से भी अलग है। भूतकाल से भी अलग है और वर्तमान, भविष्य से भी परे है। आप मुझे यह रहस्य समझाने की कृपा करें।'।

प्रत्येक सिक्के के दो पहलू होते हैं - चित और पुट। इसी तरह धर्म और अधर्म भी दो पहलू हैं। मुक्त होना है तो अधर्म से ही नहीं, धर्म से भी ऊपर उठना होगा। अनीति से परे होना है तो नीति को भी अलग करना होगा। अशुभ-शुभ दोनों से मुक्त होना होगा। तब ही हम शुद्ध हो पाएँगे। बेड़ी चाहे सोने की हो या लोहे की, दोनों बाँधती ही हैं। बंधन लोहे की सलाखों का हो या सोने की सलाखों का, बंधन तो बंधन ही माना जाएगा।

राजा उदयन ने चन्द्र प्रद्योत पर हमला किया। चन्द्र प्रद्योत पराजित हो गया। उन्हें बंदी बनाकर लाया गया। राजा ने सैनिकों से कहा कि चन्द्र प्रद्योत को सोने के पिंजरे में रखा जाए। उन्हें पिंजरे सहित राजा के सामने लाया गया। पर्युषण की समाप्ति पर राजा उदयन ने चन्द्र प्रद्योत से क्षमापना की। तब चन्द्र प्रद्योत ने उनसे कहा, 'आपकी क्षमापना का क्या अर्थ है, जब आपने मुझे बेड़ियों में जकड़ रखा है।' राजा ने कहा, 'आपको इस बात के लिए मुझे धन्यवाद देना चाहिए कि मैंने आपको सोने के पिंजरे में रखा है। आपके चारों ओर सोना ही सोना है।' चन्द्र प्रद्योत ने कहा, 'पिंजरा लोहे का हो या सोने का, बंधन ही कहलाता है। सोने की होने से बेड़ियाँ हाथ की शोभा नहीं बन जाया करती।' राजा उदयन का हृदय-परिवर्तन हुआ और उसने चन्द्र प्रद्योत को मुक्त कर दिया।

गुस्सा तो गुस्सा ही है, चाहे वह प्रेम से भी क्यों न किया जाए। चाँटा तो चाँटा ही है, चाहे वह प्यार से ही क्यों न मारा गया हो। शकुनि ने अपने अंगरक्षक को ज़हर पिला कर मार दिया। अंगरक्षक ने मरते-मरते पूछा, मैं तो आपका प्रिय पात्र था, फिर आपने मुझे मृत्यु क्यों दी? शकुनि ने कहा, तुम मुझे प्रिय हो, इसलिए जहर दिया है ताकि तुम

तड़पे बिना मर जाओ, अन्यथा तुम्हें चील-कौओं के आगे फिंकवा देता। दास ने कहा, मृत्यु तो मृत्यु ही है, चाहे वह एक क्षण की हो या तड़प-तड़प कर मरना पड़े।

इसलिए अशुभ और शुभ, दोनों से ही मुक्त होना होगा। पाप ही नहीं, पुण्य से भी उपरत होना होगा। नचिकेता जानना चाह रहे हैं कि वह क्या है जो धर्म से भी अलग है और अधर्म से भी। कार्य से भी मुक्त है और कारण से भी। कुछ हो रहा है तो कारण अवश्य ही रहा होगा। बिना कारण कोई बात नहीं हो सकती। चिड़िया उड़ सकती है तो इसकी कोई-न-कोई वजह अवश्य होगी। उड़ती चिड़िया को देखकर ही प्रश्न उठा था और राइट बंधुओं ने हवाई जहाज के आविष्कार की नींव रख दी। आज हम आकाश में चिड़िया की तरह उड़ सकते हैं, तो उन्हीं की बदौलत। इसलिए नचिकेता जानना चाहते हैं कि वह क्या है जो कल भी था, आज भी है और कल भी रहेगा। ऐसा शाश्वत वर्तमान कौन है? ऐसा अपरिवर्तशील तत्त्व जो अतीत में था और आज भी है, जो कल भी रहेगा और जो इन तीनों समय से उपरत भी है। जो जन्म से पहले भी था, जन्म के साथ तो है ही, मरने के बाद भी रहेगा। शरीर जला दिया जाएगा तब भी रहने वाला है।

जीसस चले गए, महावीर चले गए। उनके शरीर कहाँ हैं? दादाजी चले गए, फिर दादाजी किसे कह रहे हो? किसकी बरसी मनाते हो? शरीर शांत हो जाता है, चैतन्य तत्त्व फिर भी रहता है। यह तत्त्व तो सर्वातीत है, सर्वकालिक है, सार्वभौम है। नचिकेता कह रहे हैं, 'हे यमराज, आप हर रहस्य के मर्मज्ञ हैं, इसलिए मुझे समझाइए कि वह कौन-सा तत्त्व है जो था, है और रहेगा।' संसार का हर तत्त्व किसी-न-किसी आलंबन से जुड़ा है। कुछ भी अलग नहीं है। कहीं मेरी, तो कहीं आपकी उपयोगिता है। कहीं शरीर महत्त्वपूर्ण हो जाया करता है, तो कहीं आत्मा। शरीर तो अन्नधर्मा है, मरणधर्मा है, रोगधर्मा है। भोजन करना शरीर की ज़रूरत है। आत्मा भोजन नहीं करती। शरीर टिकाने के लिए भोजन करना पड़ता है। जीजीविषा न हो, तो भोजन करने की आवश्यकता ही न पड़े।

जीने की तमन्ना है, तृष्णा है, तभी तो शरीर का पोषण कर रहे हैं। शरीर के मर्म को समझ लें। शरीर को ढककर रखना, यह शरीर की अनिवार्यता है। लोक-लाज वश कपड़े पहनने पड़ते हैं। यह संसार की व्यवस्था है। शरीर के मर्म की तरह ही आत्मा के मर्म को भी समझ लें, तो बात बन जाए। जन्म लिया है, तो विवाह भी करना पड़ता है। पहले जमाने में तो ऋषि-मुनि भी विवाह करते थे, उनके संतानें होती थीं। शरीर की ज़रूरतों को पूरी करने के बावजूद ऋषि-मुनि शरीर और आत्मा के मर्म को समझते थे। वे तत्त्व-ज्ञान रखते थे कि शरीर के अपने गुण-धर्म होते हैं, आत्मा के अपने गुण-धर्म। वाणी बोल रही है लेकिन ऐसा भी संभव है कि कुछ बोला ही न गया हो और बहुत-कुछ सुन लिया गया हो। मन में विचार चल रहे हैं, इंद्रियाँ अपना कार्य कर रही

हैं, लेकिन आत्म-ज्ञानी, तत्त्व-ज्ञानी समझता है। मर्म समझते ही परतें खुलती चली जाती हैं, अन्यथा यह जीवन अनन्त ज्ञान से भरा है। केवल किताबी ज्ञान से काम नहीं चल सकता। हमें जीवन की हर घटना को, प्रकृति की हर व्यवस्था को समझने की आवश्यकता है।

निष्कर्षतः यही ज्ञान है, यही तत्त्व-बोध है। इंसान परिवर्तन के साथ स्थिर नहीं रह पाता। यही तो उसका अज्ञान और अविद्या है। मर्म समझ लेंगे, तो किसी भी चीज या परिस्थिति से प्रभावित होना कम होता जाएगा। कुछ लोगों को उपेक्षा बर्दाश्त नहीं होती। कुछ को क्रोध ही नहीं आता, चाहे कुछ भी हो जाए, वे क्रोध से अप्रभावित रहते हैं। क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो। उसको क्या जो दंतहीन, विषरहित, विनीत सरल हो।

एक बार ऋषियों के बीच चर्चा चल पड़ी कि कौन है जो भगवान को गुस्सा दिला सकता है। किस भगवान का गुस्सा कैसा है? इसकी पहचान का काम भृगु ऋषि को सौंपा गया। भृगु सबसे पहले ब्रह्माजी के पास गए। वे ब्रह्माजी की बगल में बैठ गए। ब्रह्माजी को आश्चर्य हुआ। बिना अनुमति के यह कौन है जो मेरे कमल पर आकर बैठ गया है, लेकिन वे कुछ बोले नहीं। गुस्सा तो उन्हें आया, लेकिन उन्होंने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। भृगु वहाँ से निकले, शिव के पास कैलाश पर्वत गए और जाकर सीधे उनकी गोद में बैठ गए। शंकर को गुस्सा आया, वे भृगु को मारने दौड़े। पार्वती ने बड़ी मुश्किल से उन्हें बचाया। महादेव शांत हुए। शंकर को गुस्सा आया और उन्होंने प्रतिक्रिया भी व्यक्त कर दी। यहाँ से भृगु विष्णु के यहाँ पहुँचे, आव देखा न ताव, उन्होंने सीधे ही विष्णु की छाती में लात मार दी। भृगु उनकी प्रतिक्रिया का इंतजार करने लगे, लेकिन यह क्या, भगवान विष्णु तो ब्रह्मा और शिव से भी आगे निकले। उन्होंने तत्काल भृगु के पाँव पकड़े और उन्हें दबाने लगे। उन्होंने पूछा, ऋषिप्रवर! आपके नाजुक से पाँवों को चोट तो नहीं आई। तभी तो कहा गया, क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात, का विष्णु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात। किसी भी घटना की प्रतिक्रिया तो हरेक के मन में होती है लेकिन उसे व्यक्त हर कोई अपने-अपने तरीके से करता है। कषाय, क्रोध, भोग, काम, अहंकार हम पर इतने हावी हैं कि हर किसी के मन में इन्हें लेकर प्रतिक्रिया तो होती ही है। कोई कम प्रतिक्रिया करता है, तो कोई ज़्यादा। एक व्यक्ति सब्जी में नमक कम हो तो पत्नी पर गर्म हो जाता है, गाली-गलौच करता है; दूसरा व्यक्ति चुपचाप नमक माँग लेता है। तीसरा इससे भी आगे बढ़कर जैसी है, वैसी ही सब्जी से चला लेता है। जिसका जितना ज्ञान, वह वैसा ही व्यवहार करेगा। दोषी कोई और नहीं, हमारा अज्ञान दोषी है, हमारा मिथ्यात्व दोषी है। तत्त्व-ज्ञान का अभाव होना इसका मूल कारण है।

नचिकेता पूछते हैं, हे मृत्युदेव ! ऐसा कौन-सा तत्त्व है जो भूत, वर्तमान और भविष्य से परे है। धर्म-अधर्म से परे है। कठोपनिषद् की भाषा में यमराज कहते हैं, सारे वेद जिस पद का वर्णन करते हैं, समस्त तपों को जिसकी प्राप्ति के साधन कहते हैं, जिसकी इच्छा करने वाले ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उस पद को मैं तुम्हें संक्षेप में कहता हूँ।

यमराज ने तब एक रहस्य उद्घाटित किया कि एक ॐकार सतनाम, नानक कहते हैं, उस सत्य, पराशक्ति का नाम है ओम्। पतंजलि ने कहा, तस्य वाचकः प्रणवः, ईश्वर ही परमशक्ति है, ईश्वर का वाचक है ॐ। मैंने जितना भारतीय संस्कृति को समझा है, संसार में ध्वनि, पराध्वनि या कोई मंत्र है तो वह ॐ ही है। यह ऐसा शब्द है जिसमें सारे अक्षर समाए हैं।

गीता में जब भी भगवान से पूछा जाता है कि अपना स्वरूप समझाइए, तो वह कहते हैं, मैं एक हूँ, मैं ही ॐ हूँ। यह ऐसा अक्षर है, जिसका कभी क्षय नहीं होता। भारतीय अध्यात्म संस्कृति का एक ही प्रतीक है और वह है ॐ। चार मुँह वाला हमारे देश का प्रतीक चिह्न, अशोक स्तम्भ को याद करें। इसमें चार शेर हैं, बीच में चक्र है। उसमें ॐ लिखा है। ॐ अध्यात्म का प्रतीक है और चक्र संसार में जीने के लिए गति का प्रतीक। अशोक का चक्र हो या भगवान कृष्ण का सुदर्शन चक्र, ये सब गति के परिचायक हैं। जिस प्रकार दो स्थानों को जोड़ने वाला रामसेतु है, उसी तरह ओम् आत्मा-परमात्मा को जोड़ने वाला सेतु है।

परमात्मा से कैसे जुड़ें, ॐ का चिंतन करें, ॐ की साधना करें। ॐकार की साधना चैतन्य-ध्यान के लिए आवश्यक है। सामान्य व्यक्ति ध्यान करने बैठेगा, तो मन नहीं लगेगा। ऐसे में श्वासोश्वास के साथ ॐ का उच्चारण करें, स्मरण करें। ॐकारेश्वर यानी ओम् में रहने वाला ईश्वर। ध्यान में मन नहीं लगे तो सात दिन पन्द्रह मिनट ॐ का घोष करें, नाद करें, महानाद करें। यह उद्घोष, नाद, हमारी चेतना के आभामंडल को जगा देगा। ॐ के नाद से छोटे या बड़े, सभी तरह के पापियों के अंतर्मन की दशा भी सुधरने लग जाती है। कोई आंतकवादी-पापी भी सुबह-शाम ॐ का नाद करता चला जाए, तो उसके जीवन में इसके सकारात्मक परिणाम आने लगेंगे। उसकी अंतश्चेतना पर, उसकी आत्मा पर इसका प्रभाव पड़ेगा। प्रभु के प्रति लौ जलने लगेगी। ॐ सारे वेदों का वेद है, सारे शास्त्रों का शास्त्र है। एक ॐ में सारे संसार के यम, नियम, तप समाहित हैं। सारे संसार का ज्ञान, दैवीय शक्ति को आह्वान करने की शक्ति ॐ में है। अपने गले में ॐ का लाकेट पहन लें, मकान के बाहर एक ही शब्द लिखें, ॐ। इसके बाद ऊपर वाला अपने आप सम्भाल लेगा। आप पर किसी तरह का ग्रहदोष या वास्तुदोष प्रभावी नहीं होगा।

ॐ से हर तरह के वास्तु-दोष का निवारण हो जाता है। ॐ की शक्ति अपने आप काम करती है। सारे वेद, आगम-उपनिषद, शास्त्र ॐकार की साधना की प्रेरणा देते हैं। अ उ म...मिलकर ॐ बन जाता है। जैन धर्म में आदिनाथ का अ और महावीर का म मिलकर ॐ बन जाता है। इस्लाम में अल्लाह का अ और अंतिम पैगम्बर मोहम्मद साहब का म मिलकर ॐ बन जाता है। कुल मिलाकर ॐ पराशक्ति का प्रतीक शब्द है। यह दूरगामी परिणाम देने में सक्षम है। ॐ की साधना करनी है, तो सिर्फ ॐ का उच्चारण ही तो करना है। सत्ताईस दिन तक लगातार 24 मिनट सुबह-शाम ॐ का उच्चारण करेंगे, तो वह स्थान साधारण कक्ष नहीं, प्रभु की आत्म-वंदना का मंदिर बन जाएगा।

ॐ के उच्चारण के साथ भीतर की कोशिकाओं को जागृत करना है, तो रोजाना ॐ की पराध्वनि पैदा करें। ॐ की ध्वनि से शरीर के सारे तंतु जाग जाते हैं। हमारे सोए ज्ञान-तंतु भी ॐ के उच्चारण से सक्रिय हो जाते हैं। परिणाम लाना है, तो निरन्तर प्रयास करने की रूरत है। अपने मस्तिष्क को जागृत करने के लिए तरंगें पैदा करें, इसमें ॐकार के वाइब्रेशन कर शरीर को झनझनाइए। मस्तिष्क की परतें खुलने लगेंगी। इससे भी गहरी साधना करनी हो, तो हमें आती-जाती साँसों के साथ ॐकार का स्मरण करना होगा। सहज साँसों के साथ स्मरण करना होगा। इसके बाद भी मन न लगे, तो फिर गहरी साँस लो। लकड़ी काटने के लिए उस पर आरी लगातार चलानी पड़ती है। हमें भी निरंतर साँस के साथ ॐकार को चलाना पड़ेगा। मन भटके, तो वापस उसे अपने स्थान पर ले आओ। लगातार गहरी साँस लो। ॐकार के स्मरण का एक धाराप्रवाह भीतर शुरू कर दो, तब ऊर्जा जागृत होगी। शरीर, मन, वाणी सबको विश्राम दें। तब ही हम उस ॐकार स्वरूप को प्राप्त कर पाएँगे, भौतिक शरीर में छिपे तार भगवान से जोड़ पाएँगे।



# 17

## शांति, समृद्धि के लिए ॐ ही क्यों ?

**बाल** ऋषि नचिकेता के द्वारा मृत्युदेव यमराज के समक्ष यह जिज्ञासा उपस्थित की जाती है कि अखिल ब्रह्माण्ड में वह कौन-सा तत्त्व है जो समस्त वेदों का सार है, जिसमें यह सारा चराचर तत्त्व समाया हुआ है ? आखिर वह प्रकाशमय तत्त्व कौन है ? मृत्युदेव यमराज ने नचिकेता की जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहा, 'वह तत्त्व है ॐ ।' एक ॐकार सतनाम । गुरु नानक ने इसी ॐ की महिमा का वर्णन करते हुए समस्त धर्म के लिए एक ही संदेश दिया कि परम सत्य का नाम ॐ ही है । आज हम उसी ॐकार के बारे में चर्चा करेंगे कि कैसे व्यक्ति अपनी साधना के लिए ॐकार का आलंबन निर्धारित कर सकता है । मृत्युदेव ने कठोपनिषद् के जरिए हमारा मार्गदर्शन किया है कि सारे वेद जिसका वर्णन करते हैं, हर तपस्या में जिसे महत्त्वपूर्ण साधन माना गया है, वह रहस्यमय तत्त्व ॐ ही है । यमराज ने नचिकेता को सम्बोधित करते हुए कहा, 'वह ॐ अक्षर ही ब्रह्म है, वह अक्षर ही परम श्रेष्ठ है । इस अक्षर को ही जानकर जो जिसकी इच्छा करता है, उसको वही मिल जाता है ।'

संसार में दो खास शब्द हैं जिनमें सब कुछ समाया है । एक में सारे संसार का सार समाया है, तो दूसरे में सारे संसार की ममता । पहला है ॐ और दूसरा है माँ । सारे संसार की ममता, मोह, वात्सल्य, श्रद्धा, जीवन के सृजन से लेकर उद्धार तक जिस शब्द का विस्तार है, उसे माँ कहते हैं । माँ की पूजा से ही परमात्मा की पूजा हो जाती है । माँ अपने आप में ममता का महाकाव्य है, प्रेम का महासागर है, वात्सल्य का आसमाँ है । संसार में जिसका अंत नहीं, उसे आसमाँ कहते हैं और जहाँ में जिसका अंत नहीं उसे माँ कहते हैं । माँ के चरणों में ही दुनिया का स्वर्ग है । माँ के आँचल में ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं । माँ की पूजा कर ली, तो समझ लो कि आपने ईश्वर की पूजा कर ली । माँ सबसे छोटा शब्द है । मानवीय संस्कृति में देखें, तो माँ से ज्यादा सीधा और सरल, मीठा और प्यारा, रसभीना कोई और शब्द नहीं है ।

इसी तरह अध्यात्म की बात करें, तो शास्त्र तो खूब हैं, लेकिन उन सबका सार एकमात्र ॐ शब्द में आ जाता है।

दुनिया के एक-एक धर्म ने हजारों शास्त्रों का निर्माण किया है। इन शास्त्रों को पढ़ते-पढ़ते आदमी का अंत हो जाता है, लेकिन शास्त्रों का अंत नहीं होता। इंसान का अंतर्मन भी वेद समान ही है। स्वयं का जीवन भी एक जीवंत शास्त्र है, इसे जरूर पढ़ें। दुनिया में वेद चार हैं, पर खुद का जीवन स्वयं एक वेद है। यह पाँचवाँ वेद नहीं, पहला वेद है। जो भी हो, सारे शास्त्रों और किताबों का सार एक ही शब्द में समाया है, और वह है ॐ। ॐ अक्षय है, इसका क्षय नहीं हो सकता। यह हर शास्त्र का पहला अक्षर है, हर धर्म का प्रथम बीजमंत्र है, हर धर्म का आदि स्रोत है। सारे धर्म-कर्म, पंथ-परम्परा ॐकार से ही पैदा हुई हैं। यह सबका आराध्य है, यह सबका प्रजापिता है। ॐ है, तो दुनिया है। ॐ नहीं, तो कुछ भी नहीं। ॐ ही नहीं होगा, तो ब्रह्मा कहाँ से आएँगे? बिना ॐ के विष्णु की वसीयत क्या? स्वयं भगवान विष्णु ॐ की ही वसीयत हैं। महादेव भी ॐकार की ज्योति से ही प्रकट हुए हैं। जिसका जाप, जिसका स्मरण महादेव तक करते हैं, अपनी जटा में जिसको प्रतिष्ठित रखते हैं, वह महिमामयी अनन्तता का वाचक ॐ ही है। ॐ यानी ॐकारेश्वर। ॐ यानी पहला शब्द, पहला ब्रह्म, संसार की पहली कृति, पहली रचना।

हर रचनाकार किसी-न-किसी रचना का सृजन करता है। जगत् का निर्माण भी इसी तरह हुआ है। जगत् की शुरुआत में जो पहला शब्द आया, जो पराध्वनि हुई, वह ॐ ही थी। कोई भी बरगद बीज में ही छिपा होता है। बरगद पैदा नहीं होता, वह तो प्रकट हुआ करता है। ईश्वर भी प्रकट हुआ। सबसे पहले ब्रह्माण्ड में एक ज्योतिपिंड था। इसी पिंड ने अपने आपको ॐ के रूप में प्रकट किया। ॐ में से ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश-तीन देवता प्रकट हुए। तीनों का उत्पत्ति केन्द्र ॐ ही है। तीनों ॐ से प्रकट हुए। ब्रह्मा ने सृजन का दायित्व सम्भाला, विष्णु ने पालन का जिम्मा लिया और शिव ने उद्धार किया। इस प्रकार विस्तार होता चला गया।

जब कोई ॐकार की साधना कर रहा हो, तो वह अपने मूल स्रोत की उपासना कर रहा होता है। हिन्दी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और इसमें जो शब्द हैं, वे ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत होते हैं। अ, आ, ऊ का उच्चारण पूरे भराव के साथ होता है और ॐ में यही भराव है। भारतीय दर्शन में जितने भी धर्म हैं, उनके ग्रंथ हैं, उनमें एक ही अक्षर पर जोर दिया गया है और वह शब्द है ॐ। यह एक ऐसी शक्ति है जो किसी बीज मंत्र में होती है। इस शब्द ने अपने आपको समस्त मंत्रों से जोड़ रखा है। देवी-देवताओं के आह्वान के लिए ॐ शब्द सबसे उपयुक्त माना गया है। किसी भी देवता के आह्वान के समय ॐ को जोड़ लें, तो उस मंत्र की ताकत बढ़ जाती है। ॐ

अखण्ड है। ॐ अनन्त ऊर्जा का केन्द्र है। इसमें अरिहंतों का अ है, उपाध्यायों का उ और मुनियों का म समाहित है। अरिहंत, उपाध्याय, मुनि-इन सबकी वंदना नवकार मंत्र में हो जाती है। नवकार मंत्र का पहला पद ॐ से ही जुड़ा है। नवकार मंत्र में पाँच पद हैं। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवच्छायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं। ॐ नमः कहते ही पाँचों पदों की वंदना अपने-आप हो जाती है; ब्रह्मा, विष्णु, महेश की उपासना हो जाती है।

यमराज कठोपनिषद् में कह रहे हैं कि जो ॐ का उच्चारण जिस भाव से करेगा, यह शब्द उसे वैसा ही परिणाम देगा। अगर आप नवकार मंत्र के साधक हैं, तो ॐ नमः कहें; आपको पंच परमेष्ठि की साधना का फल मिल जाएगा। बौद्ध धर्म जहाँ तक फैला, ॐ वहाँ भी पहुँच गया। तिब्बती मंत्र में कहा गया है - ॐ मणिपद्मे हुम्। विज्ञान में तत्त्व तीन होते हैं - इलेक्ट्रान, प्रोटोन व न्यूट्रान। महावीर ने तीन दर्शन दिए - सम्यक् ज्ञान, सम्यक्दर्शन व सम्यक्चरित्र। गीता ने तीन संदेश दिए - ब्रह्मा, ज्ञान और भक्ति। बुद्ध ने तीन बातें बताईं - शील, प्रज्ञा और समाधि। ॐ तीन शब्दों को मिलाकर बना है, अ ऊ म। किसी मटके को रखना है, तो तीन पांव वाली तिपाही चाहिए। ॐकार भी ऐसी ही तिपाही पर टिका है।

धर्म सरल होना चाहिए और ठीक उसी तरह मंत्र भी सरल होना चाहिए। इसलिए ॐ में तीन अक्षर जुड़े हैं। ॐ आचरण पर भी जोर देता है। ऐसा आचरण जो ज्ञानमूलक हो, धर्ममूलक हो। जिस आचरण के पीछे ज्ञान की प्रेरणा होती है, उसे निदिध्यासन कहते हैं। ॐ के आकार का लॉकेट गले में डाल लो, तो यह आपके लिए रक्षा-कवच बन जाएगा। ॐकार ताबीज़ पहन लो, तो दुश्मन की ताकत आपसे आधी हो जाएगी और आपकी उस पर विजय निश्चित है। आपने तो ॐकार का ताबीज़ पहन लिया यानी आपने अपने आपको प्रभु को सौंप दिया, अब प्रभु जाने। प्रभु को सौंपना तो पड़ेगा।

गुरु-शिष्य जंगल से जा रहे थे। रास्ते में शेर मिल गया। शिष्य तो बलवान था, तत्काल पेड़ पर चढ़ गया और गुरु से भी कहा कि वे किसी पेड़ पर चढ़ जाएँ। गुरु वृद्ध थे; पेड़ पर नहीं चढ़ पाए। गुरु उसी पेड़ के नीचे बैठ गए और आँखें बंद कर समाधि लगा ली। शेर उनके समीप आया। कुछ देर उन्हें सूंघता रहा। फिर जिधर से आया था, उधर ही लौट गया। चेला नीचे आया और गुरु के चरणों में गिर पड़ा। आखिर गुरु ने उसे चमत्कार दिखा दिया था। दोनों आगे बढ़े। कुछ देर बाद रात हो गई। दोनों एक साफ स्थान देखकर सो गए। रात्रि में दोनों को मच्छर काटने लगे। गुरु परेशान होने लगे। चेले ने उनकी परेशानी देखी तो कहने लगा, 'आपने तो शेर को भी भगा दिया, ये मच्छर क्या चीज हैं?' गुरु ने कहा, 'बेटे, तब मैं प्रभु की शरण में था; अभी तेरे पास हूँ। मच्छरों को



हटाने के लिए तू ही कुछ कर'। भगवान को छोटी-छोटी चीजों के लिए परेशान थोड़े ही किया जाता है।

अपने आपको ॐ की शरण में छोड़ दो, तो शेर भी चुपचाप चला जाता है क्योंकि तब हमारी रक्षा का जिम्मा प्रभु का हो जाता है। पिता-पुत्र साथ जा रहे हों और पुत्र पर कोई विपदा आ जाए, तो इज्जत तो पिता की ही जाएगी। इसी तरह भक्त परेशान होगा, तो उलाहना तो भगवान को ही मिलने वाला है। ईसाई गले में क्रॉस पहनते हैं। कोई विपदा आती है, तो क्रॉस को आँखों से लगाते हैं, उसे चूमते हैं। प्रभु तब रक्षा करने आते हैं। क्रॉस को चूम लिया यानी प्रभु का हाथ थाम लिया, अब सारी जिम्मेदारी उनकी। क्रॉस को छूने मात्र से आत्म-विश्वास आ गया कि संकट में यह मददगार बनेगा। इसीलिए मैं ओम् के लॉकेट का संकेत कर रहा हूँ। कोई-न-कोई मंगलप्रतीक गले में जरूर रखें। प्रतीक वही हो, जिसे आप श्रद्धा से स्वीकारें। ओम् तो स्वयं पंच परमेष्ठि का वाचक है। इसे गले में धारण करें, इससे आपकी शक्ति बढ़ेगी। आपको बुरी नजर नहीं लगेगी। ओम् रक्षा कवच है। बच्चे को बुरी नजर न लगे, इसलिए उसकी माँ उसके गले में काली डोरी बाँध दिया करती है, उसके माथे पर काली टीकी लगा देती है। इसी तरह ओम् का लॉकेट आपका रक्षा-कवच बन जाएगा।

साधना के मार्ग पर ओम् की उपासना करें। जिस अक्षर को आप सत्य मानते हैं, उसकी साधना करें। ओम् ब्रह्म का परिचायक है। एक हिन्दू भले ही परम्परा की दृष्टि से महावीर को न माने, एक जैन भले ही महादेव को न माने, लेकिन ओम् को सभी स्वीकार करते हैं। ओम् में खुदा है। ओम् से नहीं कोई जुदा है। ओम् अकेला ऐसा अक्षर है, जिसे आप जिस भाव से स्वीकार करेंगे, यह वैसा ही फल देगा। इन्द्र की आराधना करनी है, तो ओम् इन्द्राय नमः कहते हैं। सूर्य की उपासना करनी है, तो ओम् सूर्याय नमः कहते हैं। किसी भी उपासना के लिए ओम् को जोड़ लेंगे, तो आपकी शक्ति और आराधना दुगुनी हो जाएगी। इससे मंत्र की शक्ति अपने-आप बढ़ जाती है। ओंकार की साधना कैसे करें? इस एक शब्द में तो सारे वेद, चराचर जगत् समाहित हैं। ओंकार की साधना चार प्रकार से हो सकती है- उच्चारण, स्मरण, दर्शन और परा। पहले ओंकार का उच्चारण करें। शंखध्वनि की तरह ओंकार का उद्घोष करें तब तक, जब तक कि आपके अंतर्मन और ओंकार में एकलयता न आ जाए। स्मरण मन-ही-मन करें। मन भटकने लगे, तो माला हाथ में ले लें। एक आधार हो जाएगा। ओम् की साधना का सीधा-सा तरीका है। मन में उच्चारण करो, मन न लगे तो किसी एकांत में चले जाओ। किसी मंदिर के गुम्बद के नीचे बैठ जाओ, वहाँ तुम जो कुछ बोलोगे, उसकी प्रतिध्वनि तुम तक लौट आएगी। बार-बार ऐसा होगा, तो आपके ऊपर ओम् का एक

आभामंडल-सा बन जाएगा, रक्षा-कवच बन जाएगा। भीतर-ही-भीतर हमारी चेतना जागृत हो जाएगी। लोग मंदिर जाते हैं, वहाँ घंटे बजाते हैं। क्या आपने कभी इस पर विचार किया है कि ऐसा क्यों किया जाता है ? ऐसा तो है नहीं कि भगवान सोए हुए हैं और आप उन्हें जगाने जा रहे हैं। भगवान को जगाने के लिए घंटे बजाने की जरूरत नहीं है। वे तो पहले से जगे हुए हैं। जगना तो आपको है। मंदिर में घंटे-घड़ियाल इसलिए बजाए जाते हैं ताकि उनकी ध्वनि की तरंगें आपके चारों तरफ एक ऐसा अद्भुत वातावरण बना दें कि आपको लगे, आप किसी मंदिर में नहीं, प्रभु के सामने ही खड़े हैं। आपकी अंतश्चेतना जगने लगी है। लेकिन यहाँ तो लकीर पीटी जा रही है। मंदिर में आरती हो रही है, तो लोग बस देखादेखी घंटे-घड़ियाल बजाए चले जाते हैं। उस आवाज के साथ लय में लय नहीं मिलाते। आराधना का यह भी एक तरीका है कि किसी काम में आपकी लय बन जाए। उस समय और कुछ भी दिखाई न दे। ज्ञानी कहते हैं, मंदिर जाओ तो मौन हो जाओ। दुनिया में ऐसे मंदिर तो बहुत हैं जहाँ मूर्तियों की भरमार है लेकिन ऐसे मंदिर कम ही हैं जहाँ केवल सन्नाटा मिल सके, शांति मिल सके; जहाँ जाकर आप शांत भाव से प्रार्थना कर सकें, उस परमपिता परमात्मा से लौ लगा सकें। जहाँ शांति-भाव से प्रार्थना की जा सके, वही स्थान मंदिर है। मैं ऐसे मंदिरों को पसंद करता हूँ जिसमें आवाज न की जाती हो। लोग शांति और मौनपूर्वक भीतर जाएँ। अपने मन की प्रार्थना, भावना के पुष्प समर्पित करें। कुछ देर वहाँ बैठकर वहाँ की शांति का सुकून पाएँ और वापस लौट जाएँ।

ओम् के माध्यम से साधना करें, तो पहला चरण है, ओम् का उच्चारण। मंदिरों के स्तम्भ इसीलिए उपयोगी माने गए हैं। राजस्थान का राणकपुर तीर्थ बड़ा ही अद्भुत तीर्थ है। इसका निर्माण 1440 स्तम्भों से कराया गया है। इसमें एक खास गुम्बद भी है, जिस पर शंख का आकार उत्कीर्ण है। शंख के इस आकार से निकलती एक तरंग दिखाई गई है जो ऊपर तक जाती है। इस गुम्बद के नीचे शंख को बजाया जाता है, तो एक खास तरह की गूँज होती है। यह ध्वनि वापस लौटती है और नीचे खड़े लोगों पर अमृत की तरह बरस जाती है।

इसलिए ओंकार के उच्चारण की बात कही गई। केवल माला फेरने बैठोगे तो संभव है, मन भटके; लेकिन साथ में उच्चारण भी करने लगोगे, तो उस स्थान पर एक अलग ही वातावरण का निर्माण हो जाएगा। ओम् के उच्चारण से होने वाली आवृत्तियाँ लौट कर हम पर भी कृपा बरसाएँगी। मंत्रोच्चारण के साथ यदि संगीत को भी जोड़ दिया जाए, तो मंत्र-साधना और सरस बन जाएगी। संगीत की लय के साथ ही मन एकाग्र होने लगेगा, हमें उसमें आनन्द आने लगेगा। मंत्र का उच्चारण करें, फिर श्वासोश्वास के

साथ उसका जाप करें। उच्चारण को साधकर स्मरण करते हैं, तो मन लगने लगता है। मन की स्थिति विचित्र है। इसे साधने के लिए साधनों की जरूरत होती है।

ओम् जीवन का सार है, यह सबसे छोटा मंत्र है, सबसे सरल मंत्र है। बीज कितना भी छोटा क्यों न हो, उसमें विशाल वटवृक्ष छिपा रहता है। वटवृक्ष की सम्भावनाएँ छिपी रहती हैं। आप किसी पेड़ को लगाने का प्रयास करेंगे, तो मुश्किल आएगी; लेकिन आप किसी बीज को बो देंगे, तो यह काम बड़ी आसानी से हो जाएगा। पेड़ उस बीज में से ही आसानी से निकल आएगा। इसमें थोड़ा समय तो लगेगा लेकिन बात बन जाएगी।

ओम् का उच्चारण करें, फिर स्मरण करें। अगले चरण में दर्शन का प्रयास करें। ओम् के स्वरूप का ध्यान धरें। हृदय-प्रदेश पर या ललाट पर दर्शन का प्रयास करें। भले ही यह आरोपण है, लेकिन किसी-न-किसी आलंबन का सहारा तो लेना ही पड़ेगा। मंदिरों में स्थापित पाषाण-प्रतिमाओं में भी तो हम प्रभु का आरोपण ही तो करते हैं। प्राण-प्रतिष्ठा समारोह का नाम इसीलिए तो दिया गया है कि हम पाषाण में प्राण प्रतिष्ठापित करते हैं। ऐसे ही हमें ओम् के स्वरूप को स्थापित करना चाहिए। ओम् को स्थापित करने के लिए आप विभिन्न रंगों का उपयोग कर सकते हैं। हर रंग की अपनी विशेषता होती है।

ओम् की साधना करते हुए मंत्र का भली-भाँति उच्चारण करते हुए अपने आपको पराशक्ति के समीप ले जाने का प्रयास करें। जितनी श्रद्धा और भक्ति-भाव से ओम् का उच्चारण किया जाएगा, ओंकार की शक्ति वैसा ही प्रतिफल देगी। ओम् का उच्चारण राम को अलग परिणाम देगा और रावण को अलग। दोनों को ही भिन्न परिणाम मिलेंगे। आसुरी शक्ति ओम् की साधना करेगी, तो परिणाम दूसरे होंगे। दैवीय शक्ति ऐसा करेगी, तो परिणाम अलग आना निश्चित है। जैसी जिसकी भावना, कामना, आशा; उसे वैसा ही परिणाम मिलेगा। ओम् का उच्चारण तो इतना प्रभावी है कि बीमारी में भी चमत्कार दिखा सकता है।

अनेक साधकों ने ओम् को गले में धारण किया और उन्हें जल्दी ही इसका परिणाम भी देखने को मिल गया। ओम् में सब कुछ समाहित है। इसमें गुरु-तत्त्व समाहित है, स्वयं परमात्मा इसमें समाहित हैं। ओम् में सभी आ जाते हैं। कहीं, कोई जुदा नहीं है। ईश्वर का नाम लेने में किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती और ओम् का नाम लेते ही समझ लीजिए, आपने ईश्वर का नाम ले लिया। परमेश्वर के नाम पर कोई समस्या नहीं है। गुरु अलग हो सकते हैं, वैसे ही भगवान के भी कई-कई नाम हो सकते हैं। मेरा तो जैन समाज से भी आग्रह है कि गुरु की बजाय, महावीर को ही मानें। हमने गुरुओं को आगे करके एक तरह से महावीर को दूसरे स्थान पर खड़ा कर दिया है। गुरु जिसकी उपासना करता है, आप भी उसी की उपासना करो। गुरु की उपासना के

साथ आपकी उपासना मिलकर दोहरे परिणाम देगी। हालत यह हो गई है कि गुरु तो अपने प्रभु की उपासना करता है और शिष्यों को खुद की उपासना की प्रेरणा देता है।

ऐसा हुआ, एक सम्राट के यहाँ एक फकीर कुछ माँगने पहुँचा। फकीर ने देखा, सम्राट ऊपर हाथ कर परमात्मा से माँग रहे थे कि हे प्रभु, मेरा खजाना भरा रखना। फकीर खाली हाथ लौटने लगा। सम्राट ने उन्हें बिना कुछ माँगे, जाते देखा तो उन्होंने उसे रोका और पूछा, 'क्या बात है, महात्मन्, आप किस आस में यहाँ आए थे और अब बिना कुछ कहे, लिये, लौट क्यों रहे हैं?' फकीर ने कहा, 'मैं एक पाठशाला खोलने के लिए आपसे आर्थिक मदद लेने की इच्छा से आया था, लेकिन मैंने देखा कि आप तो खुद ऊपर वाले से माँग रहे हैं। फिर मैं भी उसी से माँग लूँगा, माध्यम की क्या ज़रूरत है? वह आपको देगा, तो मुझे भी सीधे ही दे देगा।'

मैं जोधपुर में एक आदमी को जानता हूँ, उनका नाम कमाल बाइंडर है। वे एक बार मेरे पास बैठे धर्म चर्चा कर रहे थे। मैं भी उर्दू या कुरान पढ़ने के लिहाज से उनसे चर्चा कर लिया करता हूँ। उस दिन उन्होंने अपनी पुरानी बात बताई। एक बार उनके पास पाकिस्तान से प्रस्ताव आया कि वहाँ 70 रुपए मासिक मजदूरी मिल सकती है। उन दिनों उन्हें हिन्दुस्तान में तीस रुपए प्रतिमाह मिलते थे। उन्होंने अब्बा से पूछा, उनका कहना था, खुदा तेरा भला करे। उनके मन में सवाल उठा, भारत में मजदूरी कौन दे रहा है, खुदा। पाकिस्तान में भी मजदूरी कौन देगा, खुदा। फिर खुदा यहाँ तो तीस रुपए दे रहा है और वहाँ 70 रुपए दे देगा; क्या भारत का और पाकिस्तान का खुदा जुदा-जुदा है?

हम सब उसकी ही तो रचना हैं, वह तो एक ही है। यहाँ भी उसी का नूर है और वहाँ भी उसका ही जलवा। यह तो हमारी नादानी है कि हमने अपने लिए अलग-अलग मालिक बना लिये हैं, असल में तो मालिक एक ही है। कोई भी धर्म हो, सबकी उपासना का तरीका अलग-अलग हो सकता है लेकिन वह परम सत्ता तो एक ही है। हाँ, उसे हमने नाम अलग-अलग दे दिए हैं। इसलिए उसी से माँगें जो मालिक है। जिस भाव से माँगोगे, उसी भाव से वह आपकी झोली भर देगा।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने एक खास कहानी का जिक्र किया है। टैगोर कहते हैं मैं जब गाँव में घर-घर भीख माँगने निकला हुआ था, तब उसका स्वर्णरथ एक सुनहरे सपने की तरह दूर दिखाई दिया। मैं ताज्जुब करने लगा कि यह सम्राटों का महिमामय सम्राट कौन है? मुझे उम्मीद बँधी कि मेरे बुरे दिनों का अंत होने वाला है। मैं बिना माँगे दान की प्रतीक्षा में खड़ा रहा। जहाँ मैं खड़ा था, अचानक वहाँ रथ आकर रुका; उसकी नज़र

मुझ पर पड़ी। वह मुस्कराते हुए नीचे उतर आया। मुझे लगा कि मेरे जीवन का सौभाग्य आखिर लौट आया। उसने दायँ हाथ बाहर निकालकर मुझसे कहा - 'मित्र! क्या दोगे?'

मैं बड़ी उलझन में पड़ गया। कैसा भद्दा मजाक था यह। एक भिखारी के आगे अपने हाथ फैलाना! मैंने अपने झोले में से अन्न का एक छोटा दाना निकाला और उसे दे दिया। मेरे आश्चर्य का तब कोई ठिकाना न रहा, जब सूरज छिपे मैंने जमीन पर अपने झोले को खाली किया, तो एक सोने का दाना उससे आ गिरा। मैं सुबक-सुबक रोते हुए सोचने लगा कि काश, मैंने अपना सर्वस्व तुझे दे डाला होता!

जितना दोगे, उतना पाओगे। झोली में से जितना उलीचोगे, झोले में उतना ही भराव होगा। प्रभु ओंकारमय है। जिस प्रभु को ओम् के साथ याद करोगे, वह उसी में साकार हो उठेगा। ओम् की शक्ति आपको ताकत देने लगेगी। ओंकार की साधना के परिणाम तत्काल दिखाई देने लगते हैं। आपको अपनी इच्छानुसार परिणाम प्राप्त होने लगेंगे। मृत्युदेव कहते हैं, ओम् की ताकत अपार है। ओम् के जरिए आप किसी भी देवता से सम्बन्ध जोड़ सकते हैं। हमारे अंतर के कर्म, जन्मों के कर्म ओम् के उच्चारण से क्षीण होने लगते हैं। हमारे दुखों को कम करने का उपाय है ओम् का उच्चारण, स्मरण और दर्शन। अंतरमन के कषायों को काटने का साधन है ओम्। ओंकार का जाप शुरू करते ही अंतरमन के कषाय कटने लगते हैं, मिटने लगते हैं। हमारे चित्त की विक्षिप्तताएँ, राग-द्वेष मिटने लगेंगे।

हम सब पागल हैं, कोई थोड़ा, तो कोई ज्यादा। हम सब जानते हैं कि धन-सम्पत्ति, जमीन-जायदाद, सब यहीं रह जाने हैं; फिर भी धन के पीछे दौड़ते रहते हैं। चित्त के विक्षेप कैसे काटे जाएँ-इस पर विचार करें। व्यक्ति तय करता है कि अमुक काम कल से नहीं करूँगा, लेकिन अगले दिन भूल जाता है। टीवी की आदत, बीवी की आदत, एक बार पड़ जाए तो नहीं छूटती। व्यक्ति कोशिश तो खूब करता है, लेकिन बात नहीं बनती। कैसे मिटे यह पागलपन? घोषित पागलों के लिए तो पागलखाने खुले हैं, लेकिन जो पागल हैं, परन्तु खुद को पागल कहलाना पसंद नहीं करते, ऐसे पागलों का इलाज तो महामंत्र ओम् ही करेगा। ओम् का उच्चारण करते हैं तो मन कहता है, चोरी नहीं करूँगा, लेकिन चित्त की विक्षिप्तताएँ पीछा नहीं छोड़तीं।

एक किसान को जादुई टब मिल गया। खेत में हल जोत रहा था कि हल किसी चीज से टकराया और वहाँ से खुदाई की तो वह टब निकला। उसके पास लीची का एक पौधा रखा था। उसने वह पौधा टब में रख दिया। टब घर ले जाकर रख दिया। अगले दिन उसने देखा, टब में सौ पौधे रखे थे। उसे आश्चर्य हुआ। उसने दूसरे दिन दो पौधे उसी टब में रखे, तो अगले दिन वहाँ दो सौ पौधे हो गए। किसान को बड़ा मजा आया।

उसने उस टब में जो कुछ रखा, उसे अगले दिन सौ गुना मिला। उसका ऐश्वर्य बढ़ गया। खबर फैली, तो गाँव के जमींदार को पता चला। उसने किसान को धमका कर टब ले लिया। अब ऐश्वर्य बढ़ने की बारी जमींदार की थी। होते, होते खबर वहाँ के राजा तक पहुँच गई। राजा को उस पर यकीन न था। उन्होंने एक मोती टब में डाला। टब ने अगले दिन सौ मोती लौटाए। राजा ने एक प्रयोग किया, अगले दिन खुद ही टब में बैठ गया। दूसरे दिन टब में से एक-एक कर सौ राजा निकल आए। सारे राजाओं के बीच संघर्ष छिड़ गया और एक-एक कर सारे राजा मारे गए। सिंहासन वहीं रह गया। सब कुछ पाने की चाह में कुछ भी नहीं रहा। यह लालच ही तो मन का पागलपन है, जो समझ ले, ज्ञान उसी का हो जाता है, वही ज्ञानी कहलाता है। यदि हम लोग ओम् का जाप करते हैं, मन से करते हैं, तो मन की विक्षिप्तताएँ अवश्य ही कम होंगी।

मैंने संन्यास लिया। आज 27-28 साल हो गए। करोड़ों रुपए मेरी प्रेरणा से खर्च हो गए। कहाँ से आए, कहाँ खर्च हुए आज तक पता नहीं। धन के प्रति मोह नहीं रखा। धन बुरा नहीं है, धन के प्रति मोह का जगना बुरा है। धन के प्रति आसक्ति नहीं हुई, इसीलिए परमार्थ के काम में करोड़ों रुपए खर्च हो गए और एक का भी पता नहीं कहाँ से आए। स्वयं को धन से मत जोड़ो, धर्म से जोड़ो। अगला तो देकर तिर जाएगा, तुम लेकर कहाँ-कहाँ डूबोगे ?

इसलिए धन की बजाय, धर्म को महत्त्व दिया जाए। ओम् का स्मरण हमें इन सारी अपेक्षाओं, लालसाओं से ऊपर उठाता है। पराशक्ति की अनुकम्पा, आशीर्वाद हम पर निश्चित तौर पर बरसा करता है। कठोपनिषद् में यमराज ने नचिकेता को ओम् के माध्यम से मार्गदर्शन दिया है। हम भी इस मार्गदर्शन की राह पर चलकर अपना जीवन धन्य कर सकते हैं। हम सब नचिकेता ही तो हैं। यमराज से जीवन के अध्यात्म के रहस्य को समझने का प्रयास कर रहे हैं। धीरे-धीरे सब बदल जाएगा। अंतर्मन मैला होगा, तो उसकी भी सफाई हो जाएगी। रोशनी करीब है। अध्यात्म की रोशनी से हम जीवन की ऊँचाइयों को पाने का प्रयास करेंगे। यमराज का नचिकेता से संवाद जारी है। दोनों के बीच जो कुछ वार्तालाप हो रहा है, उसकी अगली कड़ियाँ अब ज़्यादा महत्त्वपूर्ण हैं। आने वाले पृष्ठों में हम इसकी और गहराई में उतरने का प्रयास करेंगे।



# 18

## आत्म-दर्शन का सरल तरीका

मृत्युदेव यमराज और बाल-ऋषि नचिकेता के बीच बहुत ही महत्त्वपूर्ण संवाद हो रहे हैं, जिनका आनन्द हम पिछले कुछ दिनों से ले रहे हैं। अब हम मंजिल के बहुत निकट आ गए हैं। यम और नचिकेता के बीच हुए संवाद की ज्योति हजारों वर्षों से मानवता का पथ-प्रदर्शन करती आ रही है। हम भी इसे समझने को उत्सुक हुए हैं और निरन्तर कठोनिषद् के मर्म को समझने की कोशिश कर रहे हैं। इन संवादों की ज्योति आज भी भव-भवान्तर में भटक रहे जीवों को रास्ता दिखा रही है। जन्म-जन्मान्तर के बाद ही ऐसे संयोग बनते हैं कि किसी को साक्षात् मृत्युदेव से संवाद करने का अवसर मिल पाता है। सामान्य तौर पर तो इंसान को इंसान से ही बातचीत का मौका कम मिलता है, लेकिन सामान्य इंसान से हटकर, चाहे वह कोई जीव-जंतु ही क्यों न हो, हमें किसी से संवाद का मौका कहाँ मिलता है? उनकी भाषा हम नहीं समझते और हमारी भाषा उनकी समझ में नहीं आती।

मृत्यु के बारे में लोग इतना ही जानते हैं कि कोई तत्त्व ऐसा होता है, जो मृत्यु के रूप में इंसान के पास आता है। कोई काली छाया होती है, जो इंसान में रहने वाले जीव को लेकर निकल जाया करती है। यह नचिकेता का सौभाग्य था कि उन्हें मृत्युदेव से साक्षात्कार करने का अवसर मिला। हमारा भी सौभाग्य है कि हम कठोपनिषद् के माध्यम से एक तरह से मृत्युदेव से मिल रहे हैं। हम यही समझें कि हमारे सामने मृत्यु खड़ी है और हम मृत्युदेव से मृत्यु का रहस्य समझ रहे हैं क्योंकि आत्मा के बारे में जितना बोध, जितनी जानकारी स्वयं मृत्यु को होती है, उतनी और किसी को नहीं हो सकती।

संसार में रहने वाले प्राणियों को आत्म-तत्त्व के बारे में जानने के लिए कितनी-कितनी साधना करनी पड़ती है, कितनी-कितनी तपस्याएँ करनी पड़ती हैं। जाने कितने वर्षों तक ब्रह्मचर्य और शील-व्रत का पालन करना पड़ता है। इसके बाद भी

आत्म-तत्त्व से आत्म-साक्षात्कार हो जाएगा, इसकी कोई गारंटी नहीं है। मृत्यु ही एक ऐसा तत्त्व है, जो आत्म-तत्त्व के बारे में जानती है। जरा कल्पना करें कि जिस आत्म-तत्त्व को जानने के लिए हम इतनी कठिन साधना किया करते हैं, उस आत्म-तत्त्व को यमदेव आकर एक पल में ही हमसे अलग कर दिया करते हैं। उनके पास वह कला है-ही इज मास्टर पीस।

प्रश्न है - हम मृत्युदेव से क्यों मुखातिब हो रहे हैं? क्योंकि यमदेव को ही आत्म-तत्त्व के बारे में भली-भाँति ज्ञान है। हो सकता है कि संसार में कुछ आत्म-योगियों को आत्म-तत्त्व के बारे में बोध हो। वे आत्म-ज्ञानी भी स्वयं आत्म-तत्त्व को फिर भी जान सकते हैं, लेकिन वे इसे दूसरों को नहीं बता सकते। यदि बताने का प्रयास करेंगे, तब भी जितना स्वयं उन्हें ज्ञान है, उसका दो प्रतिशत भी नहीं बता पाएँगे, क्योंकि ज्ञान तो अनन्त है और अनुभव सीमित है।

अतीत में मैं कभी आत्म-खोज के लिए निकला था। अनेक बड़े-बड़े संतों-ऋषियों से मिला। उन्होंने अपने अनुभवों को कहने की कोशिश भी की, लेकिन मुझे संतोष नहीं हुआ। ठेठ हिमालय तक गया। हिमालय के ऋषि-मुनियों से मिला। अधिकांशतः मैंने पाया कि लोगों के पास अनुभव का आत्म-ज्ञान नहीं है। सभी खोज में लगे हैं। सभी के पास किताबी ज्ञान है। आत्मा के बारे में बोलना अलग चीज है। आत्मा के बारे में अनुभव होना अलग चीज है। अनुभव हो भी तो कैसे? लोगों के भीतर आत्मा की प्यास ही नहीं है। सब ऊपर-ऊपर हैं। सब ऊपर-ऊपर तिर रहे हैं। अंदर पैठने को कोई तैयार नहीं है। आत्म-ज्ञान के लिए जिन शर्तों की जरूरत है, उन शर्तों को पूरा करने के लिए कोई तैयार नहीं है। जनक ने अष्टावक्र से आत्म-ज्ञान के बारे में जानना चाहा, तो अष्टावक्र ने सीधा सवाल किया - 'क्या तुम आत्म-ज्ञान को प्राप्त करने के लिए तैयार हो?' इसके लिए कुर्बानी देनी पड़ती है। मोह-माया की कुर्बानी। अपने-परायों की कुर्बानी। मेरी-तेरी की कुर्बानी। अष्टावक्र के प्रश्न को सुनकर एक बार तो जनक सकपका उठे, पर प्यास गहरी थी; सो कुर्बानी के लिए तैयार हो गए। जनक अष्टावक्र के साथ निकल पड़े। जंगलों में चले गए। राजमहल का मोह छोड़ दिया। परिणाम अद्भुत रहा। अष्टावक्र गीता जैसा महान् शास्त्र प्रकट हुआ। जैसे नचिकेता और यमराज के बीच संवाद हो रहे हैं, वैसे ही जनक और अष्टावक्र के बीच संवाद हुए। न केवल संवाद हुए, बल्कि अनुभव का प्रकाश भी साकार हुआ। अष्टावक्र गीता अध्यात्म-प्रेमियों के लिए एक वरदान की तरह है - ठीक वैसे ही जैसे यह कठोपनिषद्।

कठोपनिषद् में यमराज ने नचिकेता को आधार बनाकर आत्म-तत्त्व के बारे में हमें सम्बोधित किया है। कठोपनिषद् के शब्दों पर गौर करें तो यमराज कहते हैं - यह



नित्य ज्ञान-स्वरूप आत्मा न तो जन्मता है और न मरता ही है। यह न तो किसी से उत्पन्न हुआ है और न इससे कोई हुआ है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत एवं पुरातन है तथा शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मरता। यह अणु से भी अणुतर और महान् से भी महत्तर आत्मा जीव के हृदय रूपी गुहा में स्थित है। निष्काम पुरुष अपनी इन्द्रियों के प्रसाद से आत्मा की उस महिमा को देखता है और शोकरहित हो जाता है।

यमराज उस आत्म-तत्त्व का निरूपण कर रहे हैं कि आत्मा अजन्मा है, शाश्वत है। न तो किसी ने इसे पैदा किया है और न ही इसने किसी को पैदा किया है। हमने अब तक यमराज और नचिकेता के बीच हुए संवाद के माध्यम से वे रास्ते तो नापे हैं जो लोगों को दुनिया की मंजिलों तक पहुँचाया करते हैं, पर कठोपनिषद् के माध्यम से हम जिन रास्तों को तय करने की कोशिश कर रहे हैं, वे हमें अपने-आप तक पहुँचाते हैं। हमें अपना स्वयं का सामीप्य देते हैं। क्या है यह आत्मा? क्या है इसका स्वरूप? क्या हम केवल किताबों के ज्ञान के आधार पर इसे समझ सकते हैं, या कोई और भी इसका तरीका हो सकता है?

इसके लिए बात की शुरुआत एक प्यारे से प्रसंग से करूँगा। गुजरात के एक महान संत हुए हैं श्रीमद् राजचन्द्र। ये ऐसे दिव्य पुरुष हुए जिन्हें अनेक लोगों ने अपना गुरु बनाया। मेरे लिए भी वे गुरु की तरह आदरणीय हैं। मैंने उनके अध्यात्म से कुछ सीखा है। अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों में मैंने इस सत् पुरुष के ज्योति-पुरुष के रूप में दर्शन किए हैं। चाहे कोई इन्हें माने या न माने, पर मैं मानता हूँ। मैं राजचन्द्र जी की इज्जत करता हूँ। हालाँकि उन्होंने गृहस्थी भी बसाई थी। उनके चार-पाँच संतानें भी थीं। इससे क्या फ़र्क पड़ता है कि कोई व्यक्ति गृहस्थ है या संत। कई संत भी ऐसे होते हैं जो फाकामस्ती करते हैं, जबकि कई गृहस्थ भी ऐसे होते हैं, जो आत्म सिद्धियों के मालिक होते हैं। मैं व्यक्ति का मूल्यांकन वेश के आधार पर नहीं, गुणस्थानों के आधार पर करता हूँ। मैंने अनेक गृहस्थ-संत देखे हैं। तुम संत बनकर संत हुए तो कोई बड़ी बात नहीं, पर संसार में रहकर भी संत हो गए, यह मार्के की बात हुई। मैं राम के त्याग से ज़्यादा महत्त्व भरत के त्याग को देता हूँ। वनवासी बनकर घास पर सोना आम बात है। घास पर नहीं सोएगा, तो क्या उसके लिए महलों के राज गद्दे जाएंगे? भरत का त्याग तो देखो कि राजमहलों में हैं, मगर फिर भी राम जैसा वनवासी जीवन जी रहे हैं। जंगल में रहकर ब्रह्मचारी होना अलग बात है, पर स्त्री के साथ रहकर भी ब्रह्मचर्य को जीना एक महान् तपस्या है।

श्रीमद् राजचन्द्र गृहस्थ संत हुए। तुकाराम की तरह। कबीर और सुकरात की तरह। श्रीमद् राजचन्द्र के बचपन की घटना है। उनके परिवार में किसी बुजुर्ग की मृत्यु हो गई। परिवार में लोगों को रोते देखकर बालक राजचन्द्र ने पूछा, सब लोग रो क्यों रहे

हैं ? उन्हें बताया गया कि ताऊजी की मृत्यु हो गई है। जब उन्हें अंतिम संस्कार के लिए अर्थी पर लिटाया जा रहा था तो बालक ने फिर पूछा, ये क्या कर रहे हैं ? पिता ने उन्हें बताया कि मरने के बाद शरीर को इसी तरह ले जाते हैं। श्मशान में शव को जलता देख बालक राजचन्द्र ने फिर सवाल पूछा। उन्हें बताया गया कि सबके साथ ऐसा होता है। वह अवाक् रह गया। क्या मेरे साथ भी ऐसा होगा ? शव जलते देख उन्हें आत्म-ज्ञान हुआ और पूर्व जन्म की स्मृतियाँ जाग्रत हो उठीं ? वे विचार करने लगे-ओह, यह है जीवन की नश्वरता। पिछले जन्म में भी मैं पैदा हुआ था और एक दिन मुझे मरना पड़ा ! मेरे शरीर को जला दिया गया। क्या इस जन्म में भी यही होगा ? एक घटना ने उनका जीवन बदल दिया। चिता किसी और की जलती है और चेतना किसी और की जगती है। महावीर भी ऐसे ही जगे थे। बुद्ध भी इसी तरह आत्म-जागृत हुए। यह तो कोई आत्म-ज्ञानी ही होता है, जो आत्म-ज्ञान के मर्म को समझ लेता है, मृत्यु के रहस्य को समझ लेता है और अपने जीवन में ही अध्यात्म को उपलब्ध कर लेता है।

राजचन्द्र ने तब शरीर की नश्वरता को देखा और इस बात को समझ लिया कि यह उनके ताऊजी का नहीं, स्वयं राजचन्द्र का ही शरीर जल रहा है। जब भी कोई साधक अपने शरीर में मृत्यु का ध्यान करता है, श्मशान का ध्यान करता है, अपने भीतर भाव-अग्नि को प्रज्वलित करता है, तब-तब वह किसी अन्य के शरीर को जलता देखकर अपने को ही जलता महसूस करता है। आखिर अध्यात्म क्या है ? मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाऊँगा ?-इन सवालों में ही अध्यात्म की आत्मा छिपी हुई है।

श्रीमद् राजचन्द्र के भीतर भी यही सवाल उठते हैं। तब श्रीमद् राजचन्द्र के भीतर कुछ अद्भुत पद साकार होते हैं - हूँ कौण हूँ, क्याँ थी थयो, शूँ स्वरूप छै म्हारो खरो। कोना संबंधे वलगणुं छै, राखूँ के हूँ परिहरूँ.... मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मेरा वास्तविक स्वरूप क्या है ? मुझे किन-किन संबंधों को जोड़कर रखना है और किनसे छुटकारा पाना है ? इन सबका भली-भाँति चिंतन कर लेना चाहिए। इस बिन्दु पर निर्णय कर लिया जाना चाहिए। तभी राजचन्द्र जैसा कोई बालक कम उम्र में ही आत्म-साधना के पवित्र पथ पर निकल पड़ता है।

कोई भी व्यक्ति अपनी नश्वरता का ध्यान रखेगा, तो उसे जीवन की अनश्वरता का बोध होगा। अनश्वरता का बोध हमेशा नश्वरता को ध्यान में रखने पर ही हो सकता है। शरीर पर नहीं, शरीर के परिणामों पर गौर करो। केवल भोजन के स्वाद पर नहीं, भोजन के परिणामों पर गौर किया जाए। जीवन में आध्यात्मिक और अनासक्ति के फूल तभी खिलते हैं, जब हम परिणामों पर गौर करते हैं। भोजन करने से आज तक कोई आसक्ति-मुक्त नहीं हुआ। भोगों का उपभोग करने से कोई तृप्त नहीं हुआ। तृप्ति का महान् परिणाम तभी घटित होगा, जब हम भोगों के परिणामों पर ध्यान देंगे। जिन्हें आप

नश्वर समझते हैं, बेहतर होगा कि एक बार उस नश्वरता को अपनी आँखों से गुजरने दीजिए। गुजरने से ही सत्य का बोध होता है।

महावीर से किसी ने पूछा, 'मिथ्यात्व क्या है?' उन्होंने बताया, शरीर और आत्मा को एक मानना ही प्राणी मात्र का मिथ्यात्व है, यही अविद्या है। सम्यक्त्व क्या है? जड़ को जड़ और चेतन को चेतना समझो, यह हंस-दृष्टि ही सम्यक्दृष्टि है। हम जब तक नश्वर तत्त्व को नहीं समझ पाएँगे, अनश्वरता तक नहीं पहुँच पाएँगे। नित्य को नहीं जानेंगे, तब तक अनित्य तक नहीं पहुँच पाएँगे। जो इंसान किसी को जन्मता या मरता देखकर नहीं जगता, वह जीवन में बदलाव की शुरुआत कैसे कर सकता है? मृत्यु को नजदीक से देखने पर ही भीतर वैराग्य के भाव जागृत हो सकते हैं। अपने सामने से कोई लाश निकलती है, श्मशान में उसे जलाया जाता है, तो हमें लगता है कि एक दिन हमारा भी यही होना है। किसी साधक को एक रात श्मशान में जाकर बितानी चाहिए। जब तक श्मशान में बैठने का साहस नहीं कर पाएँगे, तब तक सिर्फ सभागारों में, कमरों में बैठकर आत्म-तत्त्व की साधना नहीं कर पाएँगे। तब तक उस अपरिवर्तनशील तत्त्व तक नहीं पहुँच पाएँगे; राजचन्द्र जगे, उनकी चेतना जगी। हमारी भी चिता जले, उससे पहले हमारे भीतर चिंतन के भाव पैदा हो जाने चाहिए। हमारी अर्थियाँ सजें, उससे पहले हमारी आस्था जग जानी चाहिए।

जीवन में मैंने जब भी किसी की शव-यात्रा निकलती देखी, किसी का शरीर पंचतत्त्व में विलीन होते देखा, सो मैंने अपने शरीर को जलते देखा, तब मैं देह से देहातीत हो गया।

अब कबीरा क्या सीएगा, जल चुकी चादर पुरानी।  
मिट्टी का है मोह कैसा, ज्योति ज्योति में समानी ॥  
तन का पिंजरा रह गया है, उड़ गया पिंजरे का पंछी।  
क्या करें इस पिंजरे का, चेतना समझो सयानी ॥  
घर कहाँ है, धर्मशाला, हम रहे मेहमान दो दिन।  
हम मुसाफिर हों भले ही, पर अमर मेरी कहानी ॥  
जल रही धू-धू चिता, और मिट्टी मिट्टी में समानी।  
चन्द्र आओ हम चलें अब, मुक्ति की मंजिल सुहानी ॥

हम सब यहाँ मेहमान की तरह रहने आए हैं। एक बात तो तय है कि नश्वरता का बोध प्राप्त किए बगैर हम अनश्वरता को उपलब्ध नहीं कर सकते। लोग मुझसे पूछते हैं - मैं कौन हूँ? यह पागलपन है कि हम गुरुजनों के पास जाकर उनसे पूछें कि हम कौन हैं? होना तो यह चाहिए कि जो प्रश्न हम गुरुजनों से पूछ रहे हैं, क्यों न वही प्रश्न हम

अपने-आप से पूछें कि हम कौन हैं, कहाँ से आए हैं, कहाँ जाएँगे ? गुरुजनों से पूछोगे, तो वे तुम्हें इसका शाब्दिक सत्य ही बता पाएँगे। वास्तविक सत्य तो तभी मिलेगा, जब हम खुद से पूछेंगे - जीवड़ा! तू कौन है ? जन्म से पहले तू क्या था, मृत्यु के बाद तू कौन होगा ? यह जीव आखिर है कौन ? कभी यह पिता है, तो कभी पुत्र है। कभी भाई कहलाता है, तो कभी बहिन बन जाता है। ये सब ऊपर के आरोपण हैं। सोने के सौ तरह के गहने बन जाने से सोना कोई बदलता तो नहीं है।

प्रश्न अपने-आप से करो। जब तक कोई व्यक्ति अपने-आप से समाधान नहीं चाहेगा, सारे समाधान अधूरे कहलाएँगे। प्रश्न अपने-आप से करो, एकांत में बैठो और खुद से पूछो, मैं कौन हूँ ? नचिकेता यमराज से पूछ रहे हैं। यह तो नचिकेता को एक ऐसा अवसर मिल गया कि वे यमराज के सम्मुख पहुँच पाए, वरना एक बुद्धिमान व्यक्ति को अपनी समस्याओं के समाधान अपने-आप में ही ढूँढ़ने चाहिए। तुम खुद अपने आप से जुदा कहाँ हो। एक झेन कहानी है, एक व्यक्ति मठ में पहुँचा। वहाँ जाकर वह गुरु से सवाल पूछने लगा, बताइए, मैं कौन हूँ ? गुरु ने उसे एक लात मारी और वहाँ से निकाल दिया। वह बड़े गुरु के पास गया। उनसे शिकायत करने लगा, आपका शिष्य कैसा बदतमीज़ है ! मैं उनसे ज्ञान प्राप्त करने गया था, मैंने उनसे इतना ही पूछा था, बताइए - मैं कौन हूँ ? उन्होंने मुझे लात मारकर वहाँ से निकाल दिया। बड़े गुरु ने उसे पहले से भी जोरदार लात मारी और फिर उसे अपने पास बिठाकर कहने लगे, पहली लात तो तुझे इसलिए पड़ी कि तूने इस तरह का सवाल गुरु से किया। दूसरी लात इसलिए मारी कि तू पहली लात मारने का मतलब नहीं समझा। वत्स, अध्यात्म का ज्ञान दूसरों से नहीं मिला करता, उसे अपने भीतर ही खोजना पड़ता है। जो सवाल अपने-आप से करना चाहिए अगर वह सवाल दूसरों से करोगे, तो लात नहीं तो क्या अभिनंदन-पत्र मिलेगा।

मैं कौन हूँ, इसका ज्ञान प्राप्त करना है तो जाओ, एकांत में बैठो। किसी नदी के तट पर बैठो। ध्यान में उतरो। अपने भीतर स्वयं से पूछो, 'मैं कौन हूँ ?' वहाँ से ही तुम्हें उत्तर मिलेगा। प्रश्न को सरल होने दो। मैं कौन हूँ कि जिज्ञासा को ठेठ अंतःकरण से उठने दो। खुद की अंतरात्मा से जवाब उठने दो। जब तक अर्जुन पैदा नहीं होगा, तब तक कृष्ण की गीता कैसे साकार हो पाएगी ? मैं कौन हूँ - इस वाक्य को किसी मंत्र की तरह भीतर गूँजने दो। इसी से अध्यात्म का जन्म होगा।

अच्छा होगा कभी श्मशान में भी जाओ। वहाँ जलती हुई लाशों को देखो। पल भर में ही यह बोध हो जाएगा कि आप वास्तव में कौन हैं ? शरीर हैं या आत्मा ? धीरे-धीरे आपको शरीर की नश्वरता का ज्ञान होगा। फिर आत्म-तत्त्व तक पहुँच सकोगे। शरीर का अहसास समाप्त होने लगेगा। ध्यान करने बैठोगे तो धीरे-धीरे मन-वचन-काया

का निरोध करते हुए अपने भीतर उतरने लगोगे। भीतर ही आत्म-ज्योति का अनुभव होगा। कभी भीतर कोई तरंग उठेगी तो हो सकता है, ध्यान से विचलित हो जाओ, लेकिन घबराना मत, भीतर उतरने की यही शुरुआत है। मन-वचन-काया यहीं रह जाते हैं जब मृत्यु आती है। बार-बार मृत्यु का उल्लेख करने का अर्थ यह है कि इससे हम जीव और शरीर को अलग-अलग देखने में सक्षम हो पाएँगे। मृत्यु जीव को शरीर से अलग करती है। हम भी शरीर और जीव को अलग-अलग देखने का प्रयास कर रहे हैं। आत्म-ज्ञान प्राप्ति का यही तरीका है।

आत्म-ज्ञानियों के ज्ञान देने के तरीके भी अलग-अलग होते हैं। किसी शिष्य को गुरु ने लात मारी, तो उसमें भी कुछ रहस्य छिपा था; लेकिन शिष्य उस भाव को समझा ही नहीं। वह तो उनसे भी बड़े गुरु के पास जाकर शिकायत करने लगा। गुरु का लात मारना भी शिष्य के लिए शक्तिपात की वजह बन जाया करता है, जागरण का कारण बन जाया करता है। रामकृष्ण परमहंस के पास पहुँचकर नरेन्द्र ने पूछा, 'मैं भगवान को जानना चाहता हूँ।' परमहंस ने उसे एक लात दे मारी। नरेन्द्र को तीन दिन बाद होश आया। उसने अपने आपको प्रकाश से भरा पाया। गुरु की लात सहन करने वाले भी विरले ही हुआ करते हैं। गुरु भी हर एक को लात नहीं मारा करते। केवल मंदिरों में आरती करते रहने से आत्मा से साक्षात्कार नहीं हुआ करता। यह तो झेन गुरु का डंडा है, जो सोए को जगाने के काम आता है। जन्मों से मूर्च्छा में पड़ी चेतना को जगाना आसान नहीं है। केवल साधना में बैठने से ही सिद्धत्व उपलब्ध नहीं होता, और जिसे होना होता है, उसे सांसारिक जीवन में भी उपलब्ध हो जाया करता है। सिद्धत्व कोई और ही चीज होती है।

एक आदमी गुरु के पास पहुँचा और सवाल करने लगा। गुरु एक सवाल का जवाब देते, तो वह दूसरा सवाल पूछने लगता। प्रश्न-दर-प्रश्न पूछने के कारण गुरु कुछ ही देर में झुंझला उठे। आखिर गुरु ने शिष्य को धक्के देकर बाहर निकाल दिया। रात को गुरु को स्वप्न आया। स्वप्न में भगवान ने उन्हें कहा, 'आज तुमने बहुत बड़ी गड़बड़ कर दी। एक जिज्ञासु तुम्हारे पास आया था, लेकिन तुमने उसकी कद्र नहीं की। तुम सिद्ध नहीं हुए। कोई भी सिद्ध अपने द्वार पर आए किसी जिज्ञासु को निराश नहीं लौटाता। जो अपने द्वार पर आने वाले का हृदय बदल डाले, वही सिद्ध होता है।' आत्म-योग रेवड़ी की तरह बाजार से खरीदी जाने वाली चीज नहीं है। मनुष्य को अपने आपको महत्त्व देना होगा, तभी हम आत्म-तत्त्व से रू-ब-रू हो पाएँगे। हमें इसके लिए अंतर्दृष्टि उपलब्ध करनी होगी। शरीर में रहने वाले इस आत्म-तत्त्व को हम पलभर में जान सकते हैं। श्मशान में जब कभी कोई शव जलता देखें, तो मन में अहसास करें कि हमारे साथ भी एक दिन ऐसा होने वाला है। हम आत्मा हैं। यह जो जल रहा है, यह शरीर है। शरीर को इसीलिए जलाया जा रहा है क्योंकि इसके भीतर रहने वाला चेतन

तत्त्व मुक्त हो चुका है। प्राण-तत्त्व, ऊर्जा-तत्त्व ने ही इस शरीर को धारण कर रखा था। लाश से तुलना कर लो, लाश देखकर बोध हो जाएगा कि नश्वरता क्या है ?

जीवन कभी मरता नहीं है, केवल नश्वरता मरती है। जो अनित्य है, वह तो शरीर छोड़कर चला गया है। नदी और नाव साथ-साथ रहते हैं, लेकिन फिर भी जुदा-जुदा होते हैं। गन्ने में मिठास होती है, दूध में मिठास होती है। मिठास इनके भीतर समाहित होती है। इसी तरह देह में प्राण-तत्त्व समाहित है। कोई मछली सागर को ढूँढ़ने निकले, तो हर कोई उसे पागल ही कहेगा। हम भी आत्म-तत्त्व ढूँढ़ने निकले हैं तो पागल ही कहलाएँगे। बाहर कैसे मिलेगा, आत्मा तो हमारे भीतर ही विराजमान है। हम स्वयं आत्मा ही तो हैं। फूल में खुशबू व्याप्त होती है, दिखती नहीं, महसूस होती है। मक्खन दूध में व्याप्त होता है, लेकिन दिखता नहीं है। उसे तकनीक से निकाला जा सकता है। आत्मा को बाहर ढूँढ़ने जाएँगे, तो ऊपरवाला हम पर हँसेगा कि आत्मा तो तुम खुद ही हो और अपने आपको ही ढूँढ़ने जा रहे हो ? आत्मा यानी तुम स्वयं। तुम अपनी आत्मा पर ही संदेह कर रहे हो। इसी तरह आदमी भगवान को ढूँढ़ने मंदिर-मस्जिद जा रहा है। आत्मा तो भीतर ही है, लेकिन कषायों ने उसे ढक दिया है। हमें आत्मा पर नहीं, अपने मन के दुगुणों पर विजय प्राप्त करनी है।

यमराज कहते हैं - 'आत्मा अनित्य है, ज्ञान स्वरूप है। आत्मा न तो मरता है और न ही जन्मता है।' नेवर बोन, नेवर डाइड। जन्म-मरण तो शरीर का होता है, साँसों के स्तर पर उदय-विलय होता है। आत्मा तो वही है, शरीर बदल जाता है। आभूषण बनवाते हैं तो सोना तो वही रहता है, आकार बदल जाता है। इस जन्म में किसी को पुरुष का स्वरूप मिला है, तो किसी को नारी का। पिछले जन्म में न जाने क्या स्वरूप था ? इस जन्म में पुरुष हैं, अगले जन्म में नारी हो सकते हैं। जन्म-मरण की धारा यूँ ही चलती रहती है। पता ही नहीं चलता, कौन, कब, क्या बन जाता है। आज उच्च जाति में हो, अगले जन्म में निम्न जाति में जन्म हो सकता है ? ऊँची जाति वाले भी निम्न स्तर के हो सकते हैं और निम्न जाति के लोग भी उच्च विचार के हो सकते हैं। साधना ऐसी करें जिससे हम अपने आत्म-तत्त्व की तरफ बढ़ सकें। गीता में भगवान कहते हैं - नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः। बात वही है जिसे सब ग्रंथ दोहराते हैं। सभी धर्म-शास्त्र एक ही बात कहते हैं। सत्य तो एक ही है, ज्योति एक ही है। हमारा नजरिया जैसा होगा, हर चीज हमें वैसी ही दिखेगी।

कोई धर्म नहीं कहता, झगड़ा करो। प्रेम को, ईमान को, सदाचार को जीवन का हिस्सा बनाओ। हर धर्म इंसान को अच्छा बनने का ही संदेश देता है। यह तो मानव ने बँटवारे कर डाले। जन्म से तो हर कोई इंसान ही होता है। जन्म के बाद वह हिन्दु, मुसलमान या कुछ और बन जाता है। आत्म-तत्त्व तो ऐसा होता है जिसकी नित्यता, नश्वरता, जागरूकता से ही समझ में आती है। जागरूकता आत्मवान् होने के लिए

पहली सीढ़ी है। जागरूकतापूर्वक जीएँगे, तो हम प्रत्येक तत्त्व को समझते चले जाएँगे। देह क्या है? शरीर क्या है? इंद्रियाँ क्या हैं? मन के गुण-धर्म क्या हैं? मन कब किस पर मोहित हो जाए, कब चिड़चिड़ा हो जाए, कहा नहीं जा सकता। जागरूकता से ही जीवन को समझ पाएँगे। संसारी कौन है? जो मूर्च्छा में जीता है। संत कौन, जो सजगता से जीता है। सारे प्राणी सोते हैं, तब संत जगा करते हैं; आत्म-जागरूक होते हैं। आत्मवान् होने या आत्म-मुक्ति की राह पर बढ़ने का प्रथम और अंतिम रास्ता है जागरूकता।

जागरूकतापूर्वक जीओ; लापरवाही बहुत हो चुकी, अब सम्भलो। हमें अपना व्यवहार बदलना होगा, शिष्टाचार को आचरण में उतारना होगा। अपना व्यवहार ही ऐसा रखो ताकि कोई आपका अपमान करने की हिम्मत न कर सके। निमित्त-प्रधान जीवन जीते हैं तो जब जैसा निमित्त बनेगा, हमारा आचरण वैसा ही हो जाएगा। सम्बन्धों को जोड़ो, निमित्तों को गौण करो। अपना हर कार्य जागरूकतापूर्वक सम्पादित करो। हो सकता है, किसी बात पर नाराज हो जाओ और मुँह से अपशब्द निकल जाएँ। इंसान हैं, तो गलती तो हो सकती है। गालियाँ भीतर हैं, इनसे मुक्त होना है; आसक्तियों से मुक्त होना है। मुक्त हो जाओ। दुर्गुण है तो कोई मुक्त नहीं हो पाता। जहाँ कमजोरी है, उस पर विजय पाने की कोशिश करो। विजय प्राप्त करने के लिए तपना पड़ता है। व्यापार करते हैं तो लाभ के लिए प्रयास करते हैं; लाभ होता भी है, लेकिन कभी नुकसान भी हो सकता है। कभी सफलता, कभी असफलता; ये जीवन के रंग हैं। जागरूकता ही जीवन का पहला मापदंड है। सोने, उठने, बैठने, भोजन करने सहित सभी कार्यों में जागरूकता जरूरी है। भोजन कर रहे हैं। जागरूकता नहीं रखेंगे, तो हो सकता है, जीभ दांतों के बीच आ जाए। जागरूकता से कार्य करना, आत्मवान् बनने का पहला चरण है और आत्म-चिंतन दूसरा चरण है। आत्म-तत्त्व हर जगह जुड़ता है, भले ही बात आत्म हत्या की हो या आत्म-सम्मान की। बैठकर चिंतन करो, जीवन के बारे में, जगत् के बारे में। देखो और समझो, आखिर क्या है जीवन?

हमारा निर्माण माँ की कोख में होता है और अंत श्मशान में। अपनी तलाश में, खोज में हम गहराई में जाएँगे, तो धीरे-धीरे पता चलेगा कि आखिर हम हैं कौन? शुक्राणु की एक बूँद से हमारा निर्माण हुआ। उस बूँद में जीवन कहाँ से प्रवेश हुआ? तब हमें पता चलता है कि हमारी शुरुआत अपवित्र स्थान से होती है, अपवित्र कर्म से ही होती है। इसीलिए तो हम अपवित्र होते हैं। मनुष्य इसीलिए भोग-वासना में लिप्त हो जाता है। जो इन सारी सच्चाइयों को समझ लेता है, वह इनसे उपरत होने के बारे में सोचने लगता है और एक दिन इनसे उपरत हो जाता है। आत्म चिंतन करने वाला धैर्यपूर्वक समझेगा कि जन्म क्या है और मृत्यु क्या है? धीरे-धीरे उसके कदम

अनासक्ति की तरफ बढ़ते चले जाएँगे। जागरूकता होगी, तो नमक कम होने पर भी खाना खा लगे। कभी नमक बिलकुल नहीं होगा, तब भी शिकायत नहीं करोगे। अनासक्ति की शुरुआत यँ ही हुआ करती है। अन्यथा कब तक क्रोध करते रहोगे ? हम अपनी इस तरह की व्यक्तिगत कमज़ोरियों पर विजय पाते चले जाएँगे, तो आत्म-चिंतन में मुक्ति की राह मिल जाएगी।

राजा भर्तृहरि की प्रसिद्ध कहानी है, राजा को एक संत ने अमृत-फल लाकर दिया। उनकी मंशा थी कि राजा बहुत ही चरित्रवान और सुशासन करने वाले हैं; उनका जीवन अमर हो जाना चाहिए। राजा फल पाकर प्रसन्न हुए। कोई भी व्यक्ति जिसे सबसे ज्यादा प्यार करता है, उसके लिए अपनी सबसे क़ीमती चीज़ देने को तैयार हो जाता है। राजा अपनी रानी को बहुत प्यार करते थे। उन्होंने वह अमृत-फल रानी को दे दिया। रानी अमृत-फल पाकर बहुत खुश हुई, लेकिन उसने उस फल को खाया नहीं। असल में रानी राज्य के सेनापति से बहुत प्यार करती थी। उसने वह फल सेनापति को दे दिया। रानी तो सेनापति को चाहती थी, लेकिन सेनापति की आसक्ति राज्य की सबसे सुन्दर वेश्या में थी। सेनापति वह फल लेकर वेश्या के पास गया और उसे प्यार से भेंट किया। वेश्या तो वेश्या ही थी। अमृत-फल देखकर उसे बोध हो गया। उसने विचार किया, अरे, मैं अधम तो इस योग्य कहाँ हूँ कि यह फल खाकर अमर होऊँ। अमर हो भी गई, तो यही दलदल-भरा जीवन जीना पड़ेगा। लेकिन इस राज्य के राजा भर्तृहरि बहुत ही अच्छे शासक हैं; उनका जीवन अमर होगा, तो राज्य को ही लाभ होगा, राज्य के हर आदमी का भला होगा। यह सोचकर वह अगले दिन राजदरबार पहुँची और सबके बीच उसने वह अमृत-फल राजा को भेंट किया। वहाँ सेनापति और रानी भी मौजूद थे। वे शर्म से गड़ गए और राजा भर्तृहरि को इस घटना से वैराग्य हो गया।

पूरा घटनाक्रम सामने आया। राजा ने सोचा - अरे, मैं जिसे इतना प्यार करता था, वह सेनापति को चाहती है। रानी ने विचार किया, मैं जिस सेनापति को अपने पति से ज्यादा चाहती हूँ, वह वेश्या को चाहता है। सेनापति ने विचार किया, अरे, मुझसे तो यह वेश्या भी ज्यादा चरित्रवान है। बस, एक साथ चार जनों के मन में वैराग्य जग गया। ज़रा चिंतन करें, हम अपने बुरे कर्मों से कब तक बचेंगे ? ज़रा आत्म-तत्त्व के बारे में चिंतन करें। बुरा काम करते समय हमें उसकी बुराई का अहसास होगा तब ही हम पाप और पुण्य में अंतर कर पाएँगे। तब ही हम भलाई के मार्ग पर चल पाएँगे। इसलिए चिंतन करो - मैं कौन हूँ, क्या हूँ, कहाँ से आया हूँ ? ये जो रिश्ते हैं, इनके बारे में सोचोगे तो पाओगे कि ये सब मिथ्या हैं। इस पृथ्वीलोक पर हम आए हैं तो यहाँ की व्यवस्था में जुड़ गए हैं इसलिए माँ, पत्नी, पिता, पुत्र के रिश्ते भी जुड़ गए हैं। यह तो अवश्यंभावी है। संयोग था इसलिए रिश्ते जुड़ गए। हम एक-दूसरे से बँध गए लेकिन इतना होने के



बाद भी अनासक्तिपूर्वक जीओ, अपने भीतर मोक्ष की मुमुक्षा पैदा करो कि मुझे मुक्त होना है, भीतर जागरूकता पैदा करो। पुनः पुनः जन्म-मरण की प्रक्रिया से नहीं गुजरेंगे, ऐसा विचार मन में आते ही बदलाव की शुरुआत हो जाएगी। जरा विचार करो, कब तक यूँ ही जन्मते और मरते रहोगे? कब तक क्रोध, कषाय से संलिप्त रहोगे? चंडकौशिक को भगवान महावीर ने एक ही संदेश दिया – बुझ्ज। अपने क्रोध को बुझा दो। यही संदेश मैं आपको देना चाहता हूँ। कब तक गुस्सा करोगे? बहुत हो गया, प्रशंसा खूब प्राप्त कर ली। अब तो लौट चलो। खुद पर नियंत्रण करो। कब तक भेजा लड़ाते रहोगे? रोज-रोज का छातीकूटा तो मिटे।

इसलिए भीतर मुमुक्षा होनी चाहिए, मोक्ष की गहरी तमन्ना होनी चाहिए। शुरुआत हो गई, तो आज नहीं तो कल मोक्ष के मार्ग की तरफ बढ़ते चले जाओगे। सब-कुछ धीरे-धीरे होता है। माना बहुत अंधेरा है, लेकिन अपने भीतर ज्ञान का दीपक जला लो, तो रोशनी हो जाएगी। मुमुक्षा का संकल्प ले लो, तो रोशनी मिलेगी। चिंतन बनाए रखोगे, तो बात बनती चली जाएगी, क्रांति घटित होती चली जाएगी, चेतना जग जाएगी। व्यक्ति की चेतना में बदलाव आएगा ही, उसे कोई नहीं रोक सकता! धैर्य रखो, जीवन के सारे काम जागरूकतापूर्वक करते जाओ। मंदिर तो खूब जाकर आ गए, मंत्र भी खूब बोल लिए, अब तो मौन हो जाओ। संकल्प करो कि जी रहा हूँ, जितने संस्कार व कर्म हैं, उन्हें जीतने का प्रयास कर रहा हूँ। विचार के साथ ही उन्हें कर्म का जामा पहनाना होगा; केवल विचार से या सोचने से कुछ नहीं होने वाला। भटके तो हैं ही, राह पर आने का प्रयत्न प्रारम्भ कर देंगे, तो अपने-आप बदलाव शुरू हो जाएगा। संस्कारों की, कर्मों की बेड़ियाँ अपने आप कटती चली जाएँगी। खुद पर विजय पाने का प्रयास करो। हार गए तो बड़ी बात नहीं है, जीत गए तो बड़ी बात होगी। मौन का उपयोग करो, उदारता बरतो, अपने आपको जितना बेहतर बना सकते हो, बनाने में जुट जाओ। शिखर पर चढ़ने के प्रयास में गिर भी गए, तो परवाह नहीं। आपने उस दृढ़ निश्चयी चींटी की कहानी तो सुनी ही होगी। निन्यानवे बार नीचे गिरने के बाद आखिर सौवीं बार चींटी ऊपर चढ़ने में कामयाब हो ही गई। प्रयत्न करोगे तो परिणाम मिलेगा ही, इसमें लेश मात्र भी संदेह नहीं है। प्रयास करते रहोगे तो नित्य तक भले ही न पहुँच पाओ, अनित्य तक तो पहुँच ही जाओगे और यही असली पहुँचना होगा।



# 19

## आत्म-साक्षात्कार के लिए क्या करें?

आज की बात को सरल तरीके से समझने के लिए छोटे-से प्रसंग से चर्चा की शुरुआत करेंगे। एक अधिसम्पन्न व्यापारी था। उसके पास अथाह पैसा था। खुद उसे भी पता नहीं था कि उसके पास कितनी सम्पत्ति हो गई है। सब-कुछ होने के बावजूद उसके मन में शांति और जिंदगी में सुकून नहीं था। वह अपने अतंमन की समस्या के समाधान की चाह में एक संत के पास पहुँचा। संत उस समय प्रवचन दे रहे थे। संत-महात्मा ने प्रवचन में इस बात पर जोर दिया कि परमात्मा की तलाश करें, उनकी प्राप्ति से ही आत्मा की शांति मिलेगी। इस प्रकार संत से प्रेरणा पाकर व्यापारी ईश्वर की तलाश में निकल पड़ा। कई वर्ष तक भटकने के बाद एक दिन वह व्यापारी एक गाँव में पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि गाँव के प्रवेश से पूर्व ही जंगल में एक संत बैठे प्रवचन दे रहे हैं। बहुत से ग्रामीण वहाँ आए हुए हैं। कुछ देर तक वह संत को देखता रहा। एकाएक उसे याद आया कि ये तो वही संत हैं जिन्होंने उसे कई साल पहले कहा था कि शांति और सुकून चाहिए तो परमात्मा की तलाश करो। वह संत के चरणों में गिर पड़ा। उसने संत से कहा, 'बहुत भटक लिया, मुझे तो परमात्मा कहीं नहीं मिले; अब मैं क्या करूँ?' संत मुस्कुराए, कहने लगे, 'परमात्मा कहीं बाहर नहीं मिला करता, तुम उसे यहाँ-वहाँ ढूँढ़ रहे हो। परमात्मा बाहरी स्थलों पर नहीं मिलेंगे, वे तो तुम्हारे भीतर ही हैं, वहाँ उतरो और परमात्मा को प्राप्त कर लो।'

यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए बुनियादी बात है। हरेक को यह बात समझ में आ जानी चाहिए कि हमारी सारी समस्याओं का समाधान ईश्वर के जरिए हो सकता है, लेकिन परमात्मा कहीं और नहीं, हमारे भीतर ही मौजूद हैं। मंदिरों में जाकर प्रार्थना करना बुरा नहीं है। वहाँ जाने में कोई घाटा नहीं है, लेकिन परमात्मा वहाँ प्रतिष्ठित प्रतिमाओं में नहीं, तुम्हारे स्वयं के भीतर ही है। प्रभु का निवास मनुष्य के हृदय में है। जब भी प्रार्थना करनी हो, प्रभु से बातचीत करनी हो, प्रभु को अपनी ओर आकर्षित करना हो, उन्हें अपनी प्रार्थना समर्पित करनी हो-तो सबसे पहले अपने-आप से

सम्बन्ध जोड़ना चाहिए। अपने भीतर जो प्रभु रहते हैं, उनके प्रति अपना संबंध जोड़ना चाहिए। निश्चित तौर पर परमात्मा तब हमारी प्रार्थना सुनेंगे। प्रभु हमें रास्ता दिखाते हैं कि वे हमारे आध्यात्मिक संरक्षक हैं। वे सर्वशक्तिमान हैं। वे सर्वत्र हैं। वे हमारे दिल में हैं, अंतर आत्मा में हैं। जब यह बात हमें समझ आ जाएगी, तो जीवन का आध्यात्मिक रहस्य मिल जाएगा कि 'तेरो तेरे पास है, अपने मांही टटोल।' मंदिर-मस्जिद, गुरुद्वारे जाओ, लेकिन पहले अपने भीतर देखो। अपने भीतर जर्रे-जर्रे में उसकी झाँकी दिखेगी। अपने पर विश्वास रखना, अपने प्रभु पर विश्वास रखना है। इसके लिए खुद को ध्यान में उतारना होगा। ध्यान मार्ग है स्वयं से मुलाकात करने का, परमात्मा से लौ लगाने का।

ध्यान अध्यात्म की कुँजी है। ध्यान व्यक्ति के भीतर रहने वाली शांति को महसूस करने, समझने का साधन है। कस्तूरी कुण्डली बसै, सब कुछ आपके भीतर ही है। पहली दोस्ती स्वयं से करें, पहला प्रणाम खुद को करें। यह अहम् भाव की नहीं, समर्पण की बात है कि हम अपने प्रति अपनी आस्था को जगाएँ। हमारी स्वयं के प्रति आस्था जगेगी, तो हम प्रभु को अपने भीतर ही खोज पाएँगे। अपनी समस्याओं के समाधान के लिए हमें इधर-उधर जाने की आवश्यकता नहीं है। अपने भीतर ही उतरेंगे, तो समाधान मिल जाएँगे। खुद को समझेंगे, तो हम समझ पाएँगे कि हमारे भीतर कौन-सी कमजोरी है और उसे दूर करने के लिए क्या करें? उन कमजोरियों, बुराइयों पर विजय पाने का प्रयास करें। भगवान महावीर ने हर किसी के लिए जोर देकर कहा कि सच्ची-तीर्थ यात्रा यही है कि आप अपनी आत्मा में रमण करें। खुद को सुधारें, खुद को अपने वश में करें। कोई व्यक्ति अपने आपको ही नहीं सुधार पाएगा, तो दूसरों को सुधारने की बात करना व्यर्थ है। दुनिया में किसी भी सुधार की शुरुआत अपने-आप से ही होती है।

एक व्यक्ति गुरु के पास पहुँचा और उनसे कहने लगा, 'गुरुजी, मुझे ऐसा कोई मंत्र दीजिए, जिससे मैं देवताओं को अपने वश में कर सकूँ।' गुरु चौंके, ये कैसा आदमी है जो भगवान को वश में करना चाहता है। गुरु ने उससे पूछा, 'पहले तो यह बताओ कि क्या तुम्हारा परिवार तुम्हारे वश में है?' उसने जवाब दिया, 'नहीं।' संत ने पूछा, 'क्या तुम्हारी संतान तुम्हारे वश में है?' उसने फिर जवाब दिया, 'नहीं।' संत ने दुबारा पूछा, 'क्या तुम्हारी पत्नी तुम्हारे वश में है?' व्यक्ति ने फिर नकारात्मक जवाब दिया। संत ने फिर पूछा, क्या तुम खुद स्वयं के वश में हो? वह कहने लगा, इनमें से किसी पर मेरा वश नहीं चलता। गुरु ने उसे समझाया, जब तुम्हारा परिवार तुम्हारे वश में नहीं है और तुम खुद भी स्वयं के वश में नहीं हो, तो देवताओं को वश में कैसे कर पाओगे? तुम्हारा मन ही तुम्हारे वश में नहीं है। पहले खुद को तो वश में करो।' इसीलिए मैंने कहा, सुधार की शुरुआत स्वयं से कीजिए।

ध्यान और अध्यात्म की यात्रा स्वयं के ही ईर्द-गिर्द होती है। बाहर की तलाश का तो पहला क्रम ही गलत है। अध्यात्म पथिक वही हो सकता है जिसने अपने आपसे

दोस्ती कर ली। हमारे स्वर्ग-नर्क हमारे भीतर ही हैं। गिरते भी हम ही हैं और ऊपर उठते भी हम ही हैं। तुम ही अपने मित्र हो और तुम ही अपने शत्रु। बुनियादी रहस्य है-‘तेरो तेरे पास अपने मांही टटोल।’ हम अपने भीतर देखने के आदी नहीं हैं, बाहर ही बाहर देखते हैं; इसीलिए तो विफल हो जाते हैं। संतों के भी ज्ञान देने के अपने-अपने तरीके होते हैं। सूफी संत राबिया के बारे में अनेक कहानियाँ कही-सुनी जाती हैं। एक बार राबिया के यहाँ कुछ संत ज्ञान की चर्चा करने आए। राबिया ने उन्हें कहा, ‘जरा थोड़ी देर घूम आइए, शाम को चर्चा करेंगे।’ संतों की टोली वापस लौटी, तो उन्होंने देखा कि राबिया अपनी झोपड़ी के बाहर कुछ ढूँढ़ने का प्रयास कर रही थी। संतों ने पूछ लिया, ‘क्या ढूँढ़ रही हो राबिया?’ राबिया ने बताया, ‘मेरी सूई खो गई है, उसे ही ढूँढ़ रही हूँ।’ काफी देर हो गई और अंधेरा घिर आया तो संतों ने पूछ लिया, ‘राबिया, तुम्हारी सूई कहाँ खोई थी?’ राबिया ने कहा, ‘सूई तो झोंपड़ी के भीतर खोई थी।’ तब संतों ने ठहाके लगाते हुए पूछा, ‘राबिया, हम तो समझते थे तुम विदुषी हो, ज्ञानी हो, लेकिन तुम तो झोंपड़ी के भीतर खोई सूई को बाहर ढूँढ़ रही हो।’ राबिया ने पलटकर संतों से कहा, ‘आप लोग भी तो उस नूर को ढूँढ़ने के लिए जंगलों में भटक रहे हो। जो तुम्हारे भीतर ही है और तुम लोग पता नहीं उसे कहाँ-कहाँ ढूँढ़ रहे हो।’ ज्ञान देने का राबिया का यह तरीका था। संतों की आँख खुल गई। उनकी अपने-आप से मुलाकात हो गई।

यमराज नचिकेता को कठोपनिषद् के माध्यम से समझा रहे हैं कि हम अपनी पहचान कैसे करें? अपना बोध कैसे करें? इसीलिए तो नचिकेता यमदेव से सारी बातें कुरेद-कुरेद पर पूछ रहे हैं। वे गुरु की शरण में आए हैं तो गुरु के पास जितना ज्ञान है, उसे पा लेना चाहते हैं। यमराज नचिकेता को आधार बनाकर हमें सम्बोधित कर रहे हैं। कठोपनिषद् का यह श्लोक वजनदार है, इसमें रहस्य उद्घाटित हुआ है कि यह आत्मा हमें कैसे प्राप्त हो सकती है? यमराज कहते हैं, ‘यह आत्मा न तो प्रवचन से, न बुद्धि से, न बहुत सुनने से ही प्राप्त हो सकती है। जिसको यह स्वीकार कर लेती है, उसके द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। यह आत्मा उसके लिए अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकट कर देती है।’ यह आत्मा हमें तब ही उपलब्ध हो सकती है जब हम प्रभु की कृपा के पात्र बनते हैं। प्रभु की कृपा के बिना प्रभु को उपलब्ध नहीं किया जा सकता। चाहत तो खुद की ही काम आएगी। केवल प्रवचन सुनने से आत्मा उपलब्ध नहीं हो पाती। कथाएँ कितनी भी क्यों न सुन लो, पर कितने लोग आत्मा को उपलब्ध कर पाते हैं। इसे कोरी बुद्धि से भी नहीं प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह तो अपनी इच्छा से ही प्रकट होती है।

पहली बात तो यह है कि हमारी आत्मा हमसे जुदा नहीं है। आत्मा यानी हम, और हम यानी आत्मा। आत्मा हमसे जुदा हो भी कैसे सकती है, उसके बिना हम जीवित कैसे रह सकते हैं? हमारे तीन मुख्य आधार हैं - शरीर, मन और आत्मा। यह आत्मा ही तो है, जो हमारे शरीर को ऊर्जा देती है। हमें शरीर का तो ज्ञान है, लेकिन आत्म-तत्त्व के बारे

में बहुत ज़्यादा जानकारी नहीं है। आत्मा की पहचान के रास्ते तभी मिलते हैं, जब हम आस्थापूर्वक यात्रा प्रारम्भ करें। इसके बाद ही आत्मानुभूति के द्वार खुलते चले जाएँगे। आत्मा प्रवचनों, कथाओं को सुनने से प्राप्त नहीं हुआ करती। फिर कैसे प्राप्त हो सकती है? क्या हम प्रतीक्षा करें, या पुरुषार्थ करें। योगी तो गुफाओं में जाते हैं, वर्षों तप करते हैं। पंचाग्नि तप, हठयोग सहित अनेक तरीके अपनाने हैं लेकिन आत्मा तक कहाँ पहुँच पाते हैं? सारे प्रयासों का एक ही उद्देश्य होता है, आत्म-तत्त्व को पाना। क्या आत्मा को प्राप्त किया जा सकता है? लोग कहते हैं कि तपस्या में बड़ा आनन्द आता है, लेकिन यह आनन्द उन्हें ही आता है जिनके भीतर प्यास होती है। प्यास की व्यग्रता से ही किसी की चाहत का पता चलता है।

एक सियार तालाब पर पानी पीने गया। तालाब में रहने वाली मछली ने सियार से पूछा, 'तुम तो बड़े प्रेम से पानी पी रहे हो। पानी तो मैं भी पीती हूँ, मुझे इतना मज़ा क्यों नहीं आता?' सियार ने मछली की मनोदशा को समझा और अचानक उसे मुँह में पकड़कर बाहर जमीन पर फेंक दिया। मछली बिना पानी के तड़पने लगी। मछली सोचने लगी, यह क्या पागलपन किया मैंने? मेरी जान पर ही बन आई। यह सियार तो बड़ा नालायक निकला। सियार ने मछली को तड़पते देखा, तो उसे फिर से पानी में डाल दिया। मछली की साँस में साँस आ गई। उसने पानी के दो घूँट पीए, तो पता चला कि प्यास की कीमत क्या होती है? प्यास होगी, तब ही तो पानी की कीमत का पता चलेगा। पानी के प्रति यह व्यग्रता ही पानी की कीमत है। साधकों को याद रखना चाहिए कि ऐसी ही व्यग्रता परमात्मा के लिए पैदा होनी चाहिए। व्यग्रता चाहिए, उत्कंठा चाहिए। प्यास ऐसी होनी चाहिए कि जिसे तृप्त किए बगैर चैन न मिले। एक ऐसी लगन लग जानी चाहिए कि आदमी हर हाल में उसे प्राप्त करेगा; चाहे उसके लिए कुछ भी क्यों न करना पड़े। साधना के मार्ग पर ऐसी व्यग्रता होगी, तो मनुष्य के सामने आत्मानुभूति के द्वार खुलते चले जाएँगे। नहीं तो आत्मा को पाना तो दूर, उसके बारे में जानना तक मनुष्य के हाथ में नहीं है।

यमराज कहते हैं, 'सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा भी न तो यह मनुष्य इस आत्मा को प्राप्त कर सकता है और न ही वह जो बुरे आचरणों से निवृत्त नहीं हुआ है। न वह प्राप्त कर सकता है जो अशांत है, न वह जिसकी मन, इंद्रियाँ आदि संयत नहीं हैं और न वही प्राप्त कर सकता है जिसका मन शान्त नहीं है।' यमराज हमें समझाना चाहते हैं कि जब तक व्यग्रता पैदा न होगी, सिर्फ आत्मा-आत्मा करते रहेंगे तो आत्मा की प्राप्ति नहीं होगी। कड़ी मेहनत, पक्की लगन हो, तो किसी भी चीज को प्राप्त किया जा सकता है, मनचाहा फल प्राप्त किया जा सकता है। हम ऊँचे लक्ष्य बनाएँ, पर उन लक्ष्यों को पूरा करने के लिए कड़ी मेहनत करें अन्यथा शेखचिल्ली की तरह केवल सपने ही देखते

रहने से कुछ नहीं होगा। सपने पूरे करने के लिए प्राणपण से जुटना पड़ता है। शेखचिल्ली तो सोचता ही रहता है। शेखचिल्ली की कथा बड़ी मजेदार है। शेखचिल्ली सिर पर तेल की कुप्पी रखे कहीं जा रहा था। रास्ते में एक पेड़ देखकर उसके नीचे विश्राम के लिए रुक गया। उसने कुप्पी अपने पाँव के निकट रख ली। वह सो गया, आँख लग गई। स्वप्न देखने लगा। मन में लगातार उधेड़बुन चल रही थी—यह तेल बेचकर चार पैसे मिलेंगे। उन चार पैसों से चार अंडे खरीदूँगा। अंडे बेचकर कुछ पैसे एकत्र हो जाएँगे, तो मुर्गी खरीद लूँगा। फिर बहुत से अंडे हो जाएँगे। अंडे बेचकर कुछ और मुर्गियाँ खरीद लूँगा। धीरे-धीरे रोजाना बहुत-से अंडे होने लगेंगे और मेरी आय बढ़ जाएगी। समय आने पर शादी कर लूँगा। किसी दिन पत्नी कहना नहीं मानेगी, तो एक लात मारूँगा। यह सोचकर उसने लात मारी और उसकी लात तेल की कुप्पी से टकरा गई। तेल नीचे गिर कर जमीन पर फैल गया। सारे सपने धूल में मिल गए। केवल ऐसे सपने देखने का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

जीवन में कुछ करने व बनने के लिए सपने देखें, निर्णय भी लेवें; लेकिन उनकी पूर्ति के लिए मेहनत भी तत्काल शुरू कर दें। मेहंदी का रंग सात दिन रहता है, पर मेहनत का रंग जीवन-भर साथ देता है। देखेंगे, देखते हैं - ऐसा कहने से कभी किसी परिणाम को नहीं देख पाएँगे। परिवार हो या देश, हर स्थान पर कड़ी मेहनत से ही परिणाम मिलेंगे। यमराज यह सत्य स्थापित कर रहे हैं कि आत्म-तत्त्व को महज सूक्ष्म बुद्धि से हासिल नहीं किया जा सकता। अगर हमारा आचरण बुरा है, तो इस आत्म-तत्त्व को प्राप्त नहीं किया जा सकता। सीधी-सी बात है। यमराज हमें आत्म-तत्त्व प्राप्ति के लिए जो पात्रता चाहिए, उस पात्रता को विकसित करने के बारे में बता रहे हैं। यमराज बता रहे हैं कि वे कौन लोग हैं जो इस आत्म-तत्त्व को प्राप्त नहीं कर सकते? इस कड़ी में पहला व्यक्ति वह है जो अभी तक बुरे आचरण से निवृत्त नहीं हो पाया है। दुराचारी कभी आत्म-तत्त्व को प्राप्त नहीं कर सकता। वह प्रभु की कृपा का पात्र नहीं बन पाता। वह भी इस आत्म-तत्त्व को नहीं पा सकता, जो अशांत है। ऐसा व्यक्ति भी इस आत्म-तत्त्व को नहीं पा सकता, जो अपने मन और इंद्रियों पर संयम नहीं रख पाया है। चौथा वह व्यक्ति भी आत्म-तत्त्व प्राप्ति से वंचित रहेगा, जिसका मन स्थिर नहीं है।

यमराज एक तरह से मनुष्य मात्र को जीवन जीने का रहस्य बता रहे हैं। आत्म-तत्त्व तो बाद की बात है। पहले तो स्वयं को शुद्ध करना आवश्यक है। जो दुराचारी है, अशांत है, संयम नहीं रख पा रहा, भीतर से अस्थिर है, वह आत्म-तत्त्व को प्राप्त नहीं कर सकता। आत्म-तत्त्व प्राप्ति की अनिवार्यता यही है कि हमें इन चारों कमजोरियों पर विजय प्राप्त करनी होगी। जो व्यक्ति बुरे आचरण से मुक्त नहीं हुआ है, जिसके जीवन में सदाचार की शक्ति नहीं है, वह आत्म-तत्त्व को कैसे प्राप्त कर

पाएगा ? सदाचार की ताकत न होने से व्यक्ति के सारे पुण्य नष्ट हो जाया करते हैं । चरित्र तो वह दीपक है, जो हमें अँधेरे में भी रोशनी दिखाता है । भले ही कितना भी अंधकार क्यों न हो, मनुष्य सात्विक गुणों की बदौलत अपने तमोगुण और रजोगुण पर विजय प्राप्त कर सकता है । अगर हमने अपनी प्रामाणिकता को, चरित्र को खो दिया तो जरा सोचो, हमारे पास कौन-सी ताकत रह जाएगी, कौन-सी दौलत रह जाएगी ? विचार कीजिए, क्या पैसा ही सबसे बड़ी ताकत है ? पैसा न हो, तो क्या इंसान को इंसान नहीं कहेंगे ?

ताओ के पास चीन के महान सम्राट पहुँचे । उन्होंने ताओ को अपना परिचय दिया, 'मैं अमुक राज्य का सम्राट हूँ ।' ताओ ने उनसे कहा, 'तुम सम्राट कैसे हो सकते हो ? तुम्हारे पास सब कुछ होते हुए भी तुम्हारा मन अशांत है, तुम्हारा मन पल-पल बदलता रहता है, तुम सम्राट कैसे हो सकते हो ? सम्राट तो वह है जिसका मन शांत हो गया है । जिसे किसी चीज की चाह नहीं रही । जो दुराचार में प्रवृत्त रहेगा, वह सम्राट बनने के बाद भी असलियत में सम्राट नहीं कहला सकता ।'

राजपुरोहित अपने मित्र राजा ब्रह्मदत्त के यहाँ सेवाएँ दे रहे थे । एक दिन उनके मन में प्रश्न उठा कि मेरा मित्र मेरे ज्ञान की वजह से मेरा सम्मान करता है या सदाचार की वजह से ? उन्होंने खुद का मूल्यांकन किया, लेकिन किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके । इसका पता लगाने के लिए उन्होंने एक प्रयोग किया । उस राज्य के राजदरबार में प्रवेश के लिए बाहर बने कोषालय में प्रतिदिन एक मोहर देनी पड़ती थी । राजपुरोहित इस व्यवस्था से मुक्त थे । लेकिन एक दिन उन्होंने कोषालय में प्रवेश किया और वहाँ कोषाधिकारी के पास बने मोहरों के ढेर में से एक मोहर उठाकर आगे बढ़ गए । कोषाधिकारी ने इस घटनाक्रम को देखा तो विचार में पड़ गए; एक तो राजपुरोहित, दूसरे राजा के मित्र, भला उन्होंने एक मोहर क्यों उठाई ? जरूर इसमें कोई गहरी बात है । कोषाधिकारी चुप रहे । अगले दिन राजपुरोहित ने दो मोहरें उठाईं और चलते बने । यह क्रम बढ़ता गया । पाँचवें दिन राजपुरोहित ने मुट्ठी भर मोहरें उठा लीं, तो कोषाधिकारी के आदेश पर सैनिकों ने उन्हें बंदी बना लिया । उन्हें राजा के समक्ष पेश किया गया । राजा आश्चर्य में पड़ गए । मेरे मित्र और इस राज्य के राजपुरोहित का ओहदा सम्भालने वाले व्यक्ति के मन में इतना लालच आया, तो कैसे ? वे चुप रहे और दूसरों पर गलत प्रभाव न पड़े, इसलिए उन्होंने राजपुरोहित के पचास कोड़े लगाने का आदेश दिया । कोड़े लगाने को एक सैनिक आगे आया, तो राजपुरोहित ने अपना कुर्ता उतारा और पीठ उस सैनिक की तरफ करके खड़े हो गए । जैसे ही सैनिक कोड़े मारने को प्रवृत्त हुआ, राजपुरोहित हँस पड़े । राजा ने सैनिक को कोड़े लगाने से रोका और राजपुरोहित से उनकी हँसी का कारण पूछा । राजपुरोहित ने पूरा किस्सा बयान किया कि महाराज, मेरे मन में एक शंका उत्पन्न हो गई थी, जिसके समाधान के लिए ही मैंने मोहरें उठाकर ले

जाना शुरू किया था। मैं जानना चाहता था कि मेरा सम्मान मेरे ज्ञान की वजह से है या सदाचार की वजह से। अब मुझे अहसास हो गया कि ज्ञान अपने स्थान पर है, लेकिन सदाचार के बिना सब बेकार है। सदाचार ही वह ताकत है जो ज्ञान से ज्यादा महत्वपूर्ण है। किसी भी व्यक्ति का सम्मान सच्चरित्रता की दौलत से ही होता है।

यमराज कहते हैं, 'कोई व्यक्ति यदि दुराचार से मुक्त नहीं हुआ है तो वह आत्म-तत्त्व की प्राप्ति का अधिकारी नहीं है।' किसी को आत्म-तत्त्व का प्रकाश चाहिए तो ईमान रखना होगा, सच्चरित्रता रखनी होगी, बुराइयों को तिलांजलि देनी होगी। चोरी या व्यभिचार से परे रहना होगा। अन्य बुराइयों की तरह क्रोध और घमण्ड भी बुराई ही है। इनसे भी मुक्त होना होगा। अपने भाई के साथ सद्व्यवहार नहीं कर रहे हो, तो यह भी बुराई ही है। तन-मन को सजाना भी एक बुराई हो सकती है। इन बुराइयों को छोड़ देंगे, तो आत्म-तत्त्व की प्राप्ति में आसानी हो जाएगी। आत्म-तत्त्व प्राप्ति के लिए पहली शर्त यही है कि हम जीवन में पलने वाली बुराइयों से मुक्त हो जाएँ। बुराइयों को छोड़कर लिया जाने वाला संन्यास ही असली संन्यास है। गुस्सा नहीं करूँगा, यह संकल्प करना भी संन्यास लेने जैसा ही है। बुराई छोड़नी है, तो जीवन में व्रत धारण करो। महावीर, गांधी ने पंच शील व्रत धारण किए। ये पंच शील व्रत हैं - अहिंसा, अचौर्य, सत्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य। हम भी ये पाँच व्रत धारण करें। हम इन्हें धारण करते ही बुराइयों से निवृत्त होते चले जाएँगे। बुराइयों से निवृत्ति ही सच्चा संन्यास कहलाएगा। एक साथ न छोड़ सकें, तो एक-एक कर बुराइयों से खुद को अलग करें। पहले सप्ताह एक बुराई को छोड़ो, दूसरे सप्ताह दूसरी बुराई को। इस तरह एक-एक कर सारी बुराइयों से निवृत्त हो जाएँ।

जीवन का पल-पल मूल्यांकन करते चले जाएँ। दिन, महीने, साल लग जाएँ तो कोई बात नहीं, लेकिन एक बार शुरुआत कर ली, तो समझो बुराइयों पर विजय प्राप्ति की शुरुआत हो गई। जिस दिन कोई सार्थक काम हो जाए, तो समझना आज का दिन सार्थक रहा। जिस दिन ऐसा न हो, वह दिन निरर्थक चला गया। इस तरह मूल्यांकन करते रहेंगे, तो असली जीवन का पता चल जाएगा। मनुष्य की असली उम्र वही होती है, जो सार्थक कार्यों में गुजरती है। जिस दिन किसी गरीब की मदद कर पाए तो समझो, दिन सार्थक हो गया।

तो पहला कदम सदाचार की तरफ बढ़ाओ। यमराज नचिकेता को समझा रहे हैं कि दुराचारी के अलावा अशांत रहने वाला भी आत्म-तत्त्व की प्राप्ति नहीं कर सकता। जो व्यक्ति तनावग्रस्त है, वह आत्म-तत्त्व को क्या समझेगा? वह तो उसका मूल्य ही नहीं समझ पाएगा। जैसे किसी व्यक्ति को फैक्ट्री में घाटा लग गया। वह परेशान, अशांत बैठा है। इतने में भगवान वहाँ प्रकट हो गए, उन्होंने उससे पूछा, 'बोलो क्या



चाहते हो ?' वह आदमी बोला, ' भगवान मेरी फैक्ट्री चलवा दो।' आदमी इससे ऊपर उठ ही नहीं पाता। भगवान को साक्षात् देखकर उसे भगवत्ता या मोक्ष माँगना चाहिए था, लेकिन वह तो अब भी फैक्ट्री में ही फँसा है। इसलिए प्रभुता का आनन्द लो। यह आनन्द तो नचिकेता जैसे लोग ही ले पाएँगे। अशांत व्यक्ति लालसाओं के भंवर में ही डूबता-उतरता रहेगा। वह यश, यौन, जमीन, स्वाद और नींद की कामनाओं में ही उलझा रहेगा। अशांति और दुराचार आत्म-तत्त्व की प्राप्ति में बाधक रहेंगे।

एक बात मान कर चलो। प्रभु जो भी कार्य करता है, उसमें हमारा कोई-न-कोई भला छिपा रहता है। बस, हम समझ नहीं पाते क्योंकि हम वहाँ तक सोच नहीं पाते। जो कुछ भी होता है, उसमें प्रभु की मंशा रहती है। हम अपनी तुच्छ बुद्धि के कारण उसे समझ नहीं पाते। प्रभु हमारा अहित कभी नहीं करते। हमारी हर चीज के पीछे कोई-न-कोई हित छिपा रहता है। किसी ने मकान बनवाया, गृह प्रवेश किया। अचानक मकान ध्वस्त हो गया, आप रोने लगे। कभी ऐसा कुछ हो जाए, तो विचार करो कि इसमें प्रभु की कोई-न-कोई मंशा रूख है। भगवान यही चाहता है तो यही सही। भगवान सर्वज्ञ हैं। उन्हें हमारे बारे में सब कुछ पता है। भगवान से ज़्यादा भी मत माँगना। वे सब जानते हैं। उन्हें पता है कि किसको क्या देना है, किससे क्या लेना है ? भगवान ने तुम्हें अगर कुछ नहीं दिया है, तो उसमें भी उनकी रज़ा समझना। आपके लिए उन्होंने तय कर रखा है कि कब देना है ? बस, आप अपनी प्रार्थना में कमी मत रखना। श्रद्धापूर्वक प्रभु की हर इच्छा का सम्मान करें। हे प्रभु, तुम जो चाहते हो, हम उसी में राजी हैं। तुम हमें जिस हाल में रखना चाहते हो, हम उसी में खुश हैं। इतना विचार करते ही देखना, वह हम पर किस तरह अपना अनुग्रह बरसाना प्रारम्भ करते हैं। मनुष्य चाहता है कि अमुक काम होना ही चाहिए। प्रभु हमारे गुलाम थोड़े ही हैं। उन्हें तो अपना संरक्षक बनाने की जरूरत है। उनकी रज़ा में राजी रहो। प्रभु ने आपको जो भी दिया है, उसमें खुश रहो। अशांत, असंयमित, अस्थिर मत रहो। जिनका मन चंचल है, उन्हें आत्म-तत्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। ऐसे लोग आत्म-तत्त्व का साक्षात्कार कैसे कर पाएँगे ? हमारे पास जो कुछ भी है, उसमें खुश रहना सीखो, हर चीज के बारे में संयमित दृष्टिकोण रखो।

जीवन के नाम पर हमारे पास आने वाली मृत्यु ही तो परमात्म-तत्त्व की प्राप्ति से हमें वंचित रख रही है। धन, जमीन-जायदाद तो शरीर की तरह ही नश्वर तत्त्व हैं; फिर भी हर इंसान इनके पीछे भागता रहता है। हर समय कुछ-न-कुछ एकत्र करने में लगा रहता है। इस तरह के सामान के प्रति भी आसक्ति टूटनी चाहिए।

तीन जनों के मन में सवाल उठा कि मृत्यु क्या है ? मृत्यु से साक्षात्कार कैसे हो सकता है ? वे इसका उत्तर पाने के लिए एक गुरु के पास गए। उनके सामने सवाल रखा

तो गुरु ने कहा, उस सामने वाली गुफा में चले जाओ; लौटकर आओगे तो बताऊँगा कि मृत्यु क्या है ? तीनों गुफा में चले गए। वहाँ जाकर उनकी आँखें चौंधिया गई। गुफा में तो सोने की अशर्फियों का ढेर लगा था। तीनों अपना सवाल तो भूल गए और इस पर विचार करने लगे कि इस खजाने को बाहर कैसे ले जाएँ ? इतना सोना कंधे पर तो ले जा नहीं सकते थे। तीनों ने फ़ैसला किया कि एक साथी बाहर जाकर भोजन भी ले आए और साथ में एक बैलगाड़ी भी। वह साथी गुफा से बाहर निकला, तो पीछे दोनों साथियों के मन में आया कि इतना सोना हम दोनों ही बाँट लें, तो मजा आ जाए। लेकिन तीसरे साथी का क्या करें ? दोनों ने योजना बनाई कि जैसे ही वह भोजन और बैलगाड़ी लेकर आएगा, हम उस पर हमला बोल देंगे। उसे मारकर यहीं ज़मीन में दफना देंगे। साथी बैलगाड़ी लेकर आया तो उन्होंने ऐसा ही किया। साथी की हत्या कर उसका शव गुफा में ही गड़ढा खोदकर दबा दिया। इस काम से निवृत्त हुए, तो उन्हें भूख लग आई। उन्होंने साथी द्वारा लाया भोजन किया। भोजन करते ही उनके भी प्राण-पखेरू उड़ गए। हुआ यूँ कि बैलगाड़ी लाने वाले साथी के मन में भी लालच जग गया कि दोनों साथियों को मार डालूँ, तो सारा सोना उसका अकेले का हो जाएगा। इसलिए उसने साथियों के लिए जो भोजन बनवाया, उसमें जहर मिलवा दिया। इस तरह तीनों का वास्तव में मृत्यु से साक्षात्कार हो गया। सोना पीछे ही पड़ा रह गया। यह सोना-ख़ाना ही तो हमारा शोषण करते हैं, हमें बहलाते हैं और ललचाते हैं। मोह-माया की आड़ में ही मृत्यु हमारे निकट आती चली जाती है। इसलिए धन के पीछे पागल होने की बजाय, संयम का जीवन जीने की आदत डालें। दुराचार को जीवन से निकालें, सदाचार को अपने भीतर स्थान दें। भीतर की अशांति को हटाएँ, शांति से जीवन जीने का आनन्द लें। जीवन में वैराग्य, अनासक्ति के फूल खिलाने का प्रयास करें। अपनी वाणी, व्यवहार, धनार्जन में भी संयम रखें। दैनन्दिन कार्य शांति और संयम से करें। जल्दबाजी नहीं करेंगे, तो नुकसान से बच जाएँगे।

यमराज कहते हैं कि जो इन चार शर्तों को पूरी करता है, वह आत्म-तत्त्व के करीब पहुँच सकता है। साधना करना हमारे हाथ में है। इसका प्रतिफल कब मिलेगा, यह परमात्मा पर छोड़ दें। संत बनना और संत होना, दोनों अलग-अलग बातें हैं। ऊपर वाला चाहेगा तब ही महावीर, बुद्ध बन पाएँगे, उसकी कृपा के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है और कृपा के लिए पात्रता चाहिए। अपने भीतर उस पात्रता को पैदा कीजिए, भगवान का आशीर्वाद आप पर अपने-आप बरसने लगेगा।



# 20

## मन के सूक्ष्म रहस्य

इंसान का शरीर किसी रथ के समान होता है और उसमें रहने वाली आत्मा किसी सारथी के समान। यह एक ऐसा रथ है जिसका सारथी हमारी बुद्धि हुआ करती है। हमारा मन लगाम की तरह होता है और हमारी इंद्रियाँ घोड़ों की तरह। ज्ञानी और प्रज्ञाशील पुरुष अपने विवेक और संयम द्वारा जीवन रूपी रथ को विधिवत् रूप से संचालित कर लेता है। इसके लिए जरूरी यह है कि हमारी बुद्धि रूपी सारथी मजबूत हो, परिपक्व हो। किसी भी रथ का सारथी मजबूत नहीं है, तो उस रथ का संचालन सही तरीके से नहीं हो पाएगा। केवल रथ पर सवारी करने वाला अर्जुन ही परिपक्व हो, इससे काम नहीं चलेगा, बल्कि उससे भी कहीं ज्यादा आवश्यकता इस बात की है कि रथ का संचालन करने वाला सारथी कृष्ण ज्यादा मजबूत और परिपक्व हो। सारथी कमजोर होगा, तो रथ के सवार का जीवन खतरे में समझो। मजबूत सारथी ही यह कह सकते हैं कि हे पार्थ, तू अपने हृदय की तुच्छ दुर्बलताओं को त्याग दे। नपुंसकता तुझे शोभा नहीं देती। तू घबरा मत, मैं तेरे साथ हूँ। हम जीएँगे तो साथ और मरेंगे तो साथ।

बुद्धि और आत्मा, बुद्धि और चेतना समन्वय स्थापित कर ले, तो जीवन के संग्राम में व्यक्ति की विजय निश्चित है। आज हम जिस मुद्दे पर चर्चा करेंगे, वह बुद्धि से दो कदम आगे है। सारथी मजबूत हो और रथ में दौड़ने वाले घोड़ों की लगाम कमजोर हो, घोड़े कमजोर हों तो अच्छे-से-अच्छा सारथी भी क्या कर लेगा? जीवन के सुव्यवस्थित संचालन के लिए शरीर रूपी रथ का मजबूत होना भी जरूरी है। बुद्धि का स्वस्थ होना जरूरी है तो रथ की लगाम और घोड़ों का मजबूत भी होना जरूरी है। न तो अकेला शरीर ही जीवन है, और न ही उसमें निवास करने वाली आत्मा। जीवन विभिन्न घटकों का समन्वय है, संतुलन है। हरेक का महत्त्व समान है और उसकी उपयोगिता भी है। प्रभु कोई भी चीज निरर्थक नहीं देते। जो कुछ भी है, जैसा भी है, उसमें

कोई-न-कोई राज अवश्य है। हमारी समझ में तो इतनी-सी बात आ जानी चाहिए कि लगाम, घोड़े, रथ मजबूत हों; साथ ही हमारा मन भी मजबूत हो। हमारी इंद्रियों पर मन रूपी लगाम रहनी चाहिए, ताकि घोड़े हमारे अधिकार में रहें। लगाम ढीली होते ही मन के घोड़े इधर-उधर दौड़ने लगेंगे और तब चाहे कितना ही छोटा युद्ध क्यों न हो, हम नहीं जीत पाएँगे। ये घोड़े मजबूत हों, तो एक राजा को दूसरे राज्य पर अधिकार जमाने में मददगार साबित हो सकते हैं। ये ही दुर्बल निकल जाएँ, तो राजा को दूसरे राज्य में कैद में भिजवा सकते हैं।

महाराणा प्रताप का घोड़ा चेतक इतना मजबूत था कि मरते-मरते भी कमाल दिखा गया, लेकिन अपने मालिक का सिर नीचा नहीं होने दिया। ऐसा चेतक मर जाता है, तब भी एक इतिहास लिख जाता है। मन और इंद्रियों का निग्रह नहीं, उनको संस्कारित करें, ताकि ये हमारे जीवन के लिए सहयोगी बन सकें। कठोपनिषद् कहता है, बुद्धि रूपी सारथी जिस पर अपना नियंत्रण करे, ऐसा हमारा मन हमारे लिए लाभ देने वाला हो सकता है। हमारा मन सही दिशा में सोचेगा, तो ऊर्जा उत्पन्न करेगा और यही मन नकारात्मक भूमिका में उतर आएगा, तो इससे बड़ा अवसाद मनुष्य के लिए और कोई दूसरा नहीं होगा। हमारा मन ही हमारा सबसे करीबी सहयोगी है जिसकी प्रेरणा से हम हमारा जीवन जीया करते हैं। सच्चाई तो यह है कि मन ही हमारा मित्र है और मन ही हमारा शत्रु। नियंत्रित मन मित्र है, अनियंत्रित मन शत्रु है। मन में ही स्वर्ग है और मन में ही नरक है। सहज सकारात्मक मन स्वर्ग है। उद्विग्न और नकारात्मक मन नरक है।

मन की गतिविधियाँ पाँच स्तरों पर चला करती हैं। मन के भीतर सारे व्यापार इन्हीं स्तरों पर चलते हैं। ये स्तर हैं - विचार, वासना, भावना, संकल्प और मनोबल। कठोपनिषद् कहता है कि मन को संचालित करने वाले कारकों में सबसे पहला है विचार, वह धरातल जहाँ से विचार का जन्म होता है। विचार एक बीज की तरह है। समुद्र में उठने वाली सारी लहरें, किसी-न-किसी तरह से उपयोगी होती हैं। हर लहर दूसरी लहर को आगे बढ़ाती है। जैसे विचार हमारे मन में आएँगे, वैसे ही शब्द बनेंगे और उन शब्दों से वैसी ही वाणी और उसी वाणी के अनुरूप हमारा व्यवहार होगा। व्यवहार हमारी आदतों को परिभाषित करेगा। कोई भी विचार व्यर्थ नहीं होता। विचार मन की प्रकृति का परिणाम होते हैं। जिसका जैसा स्वभाव, उसके मन में वैसे ही विचार पैदा होंगे। विचार अच्छे भी हो सकते हैं और बुरे भी। यह तो हमारे मन की दशा पर निर्भर करता है। अपनी बुद्धि, अपना विवेक हमें इसी काम में लगाना चाहिए कि हम दुर्विचारों को सद्विचारों में कैसे बदलें? निर्विचार हो जाना तो सिद्धों की बात है, ज्ञानियों की बात है। हमें तो अपने दुर्विचारों को सद्विचारों में बदलना है। अच्छे विचार

पैदा होना मन की उर्वरा धरती पर अच्छी फसल उगाने जैसा है। बुरे विचार आने का अर्थ यह है कि जमीन तो उर्वरा है, लेकिन हमने उस पर कँटीले झाड़ बो दिए हैं।

राजा प्रसन्नचन्द्र ने शासन से मन भरने के बाद राज्य पुत्र को सौंप कर संन्यास ले लिया। गुफा में लम्बे समय तक तपस्या की। राजा थे, इसलिए उनकी सुरक्षा के लिए गुफा के बाहर दो प्रहरी लगा दिए गए थे। एक दिन राजा दोनों प्रहरियों का वार्तालाप सुन लेता है। एक प्रहरी दूसरे से कह रहा होता है, अपने राजा कितने अच्छे हैं ! पुत्र को राजा बनाकर स्वयं तपस्या करने लग गए, लेकिन ये नहीं जानते कि उनके पुत्र की अनुभवहीनता का लाभ उठाकर पड़ोसी राजा हमारे राज्य पर हमले की तैयारी कर रहा है। यह सुनकर राजा का मन उचाट हो जाता है। भीतर-ही-भीतर विश्लेषण प्रारम्भ हो जाता है, मेरे होते मेरे पुत्र पर कौन आक्रमण कर सकता है ? मैं ऐसा नहीं होने दूँगा। विचारों का उद्वेग इतना तेज हो जाता है कि बुद्धि रूपी सारथी रथ से अलग हो जाता है। केवल मन रह जाता है और उस पर किसी का नियंत्रण नहीं रहता। अब राजा के मन-ही-मन में घोड़े दौड़ने लगते हैं। युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। घमासान लड़ाई होने लगती है। मैदान सैनिकों की लाशों से पट जाता है। एकाएक राजा को बोध होता है, अरे मैं तो गुफा में बैठा तपस्या कर रहा था, यह युद्ध क्षेत्र कहाँ से आ गया ? कौन बेटा, कैसा राज्य ? मैं ये कहाँ से युद्ध के बारे में सोचने लगा ? मैं तो प्रभु के मार्ग पर चल पड़ा हूँ। पीछे क्या हो रहा है, मुझे इससे क्या लेना-देना। मैं इसमें क्यों उलझूँ ? दुर्विचार फिर से सद्विचार में बदल गए। पहले नाला था, अब गंगा हो गया।

यही होता है। मन के बहकावे में आ जाते हैं तो मन हमें फिसलाते हुए जाने कहाँ-कहाँ ले जाता है। प्रसन्नचन्द्र के मन में आने वाले दुर्विचारों पर तत्काल रोक लग गई। जैसे ही बुद्धि रूपी सारथी ने अपना काम शुरू किया, मन और इंद्रियों पर लगाम कसने लगी और शरीर रूपी रथ के घोड़े सही दिशा में चलने लगे। इसलिए कहते हैं, बाहर-बाहर तो खूब संवर लिए, भीतर का शृंगार बाकी है। भीतर से संस्कारित होना ज़रूरी है। झड़ गई पूँछ, झड़ गए रोम, पशुता का झड़ना बाकी है। बाहर से तो शिक्षा खूब प्राप्त कर ली, अब भीतर की पढ़ाई करना बाकी है। भीतर को संस्कारित करना आवश्यक है। इसलिए विचारों को नई दिशा दो। संकल्प करो - मुझे अपने मन के दुर्विचारों को बदलना है। मन गलत रास्ते पर जाएगा तो गलत परिणाम देगा और सही रास्ते पर जाएगा, तो अच्छे परिणाम देगा। अच्छे रास्ते पर जाएगा, तो कृष्ण और गांधी का जन्म होगा और बुरे रास्ते पर जाएगा, तो कंस और गोडसे उभर कर आएँगे।

मन तो अलबेला है। उस पर नियंत्रण कर लेने वाला वास्तव में संत कहलाने योग्य है। मन में अच्छी और बुरी, दोनों तरह की संभावनाएँ उभर सकती हैं। इसलिए जब भी

फूल खिलते हैं, तो काँटे भी उग आते हैं। अपने सबके जीवन में फूल और काँटे दोनों समान रूप से रहते हैं। हमारी कला इसी में है कि हम शूल को फूल में बदल लें। हमारे काँटे फूल बन जाएँ, हमारे कँटीले विचार सद्विचारों में बदल जाएँ। हो सकता है किसी के प्रति हमारे मन में गलत विचार आ गए हों, हम किसी को पंसद नहीं कर पा रहे हों। हमें इस भावना को बदलना होगा। मेरा रूपान्तरण मैं करूँगा, आपका रूपान्तरण आप करेंगे।

मन में जब भी कुछ गलत करने का विचार आए, तो मन को दूसरी दिशा में ले जाएँ। सोचें, जो कुछ करने जा रहे हैं, क्या उससे किसी का कोई भला होने वाला है? गलत विचार आदमी को आत्महत्या की सलाह दे सकते हैं। ऐसी स्थिति में हमें अपने आपको समझाना चाहिए। कुछ देर विचार करेंगे, तो हो सकता है कि हम आत्महत्या करने से हट जाएँगे। मनुष्य अपनी ओर से पूरा प्रयास करता है लेकिन मन बार-बार भटक जाता है। मन पर नियंत्रण पाना किसी जीवन-संग्राम से कम नहीं है। जब कोई दोराहे पर होता है, तब उसका मन भी दो दिशाओं में जाने की जिद करता है। कभी एक दिशा में जाने की जिद करता है, तो कभी दूसरी दिशा की तरफ जाने का आग्रह करता है। ऐसे अवसर पर ही हमारी परीक्षा होती है। तब इंसान को बुद्धि रूपी सारथी की आवश्यकता होती है। यदि हम बुद्धि रूपी सारथी की लगाम का उपयोग नहीं करेंगे, तो लगाम ढीली पड़ जाएगी और घोड़े अनियंत्रित हो जाएँगे। इसलिए जीवन में मर्यादाओं की, व्रत-नियमों की रूरत होती है। कभी विफल हो जाओ तब भी चिंता मत करना। दस बार प्रयास करोगे, तो ग्यारहवीं बार चंचल घोड़े आपके नियंत्रण में आ ही जाएँगे। ज्ञान रूपी, बोध रूपी सारथी की जरूरत है। निरंतर अभ्यास से सारी चीजें सध जाती हैं - करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान। मन पर नियंत्रण से इसकी गति सही दिशा में बढ़ेगी। गलत दिशा में जाने वाली इंद्रियाँ सही सोच के साथ सात्विक विचारों पर अमल करने लगेंगी। माना कि मन भटक जाता है, लेकिन उस पर सही अंकुश हो, तो उसे लाइन में लाया जा सकता है। घोड़ों को सही समय पर ऐड़ लगाई जाए, तो वे उसी हिसाब से चलते हैं।

एक राज्य में संत जिनदास जी रहा करते थे। वहाँ के राजा ने एक बार प्रसन्न होकर उन्हें एक घोड़ा भेंट कर दिया। घोड़ा समझदार था। संत सुबह उस पर सवारी के लिए निकलते। वह संत की कुटिया से खाना होकर कबूतरखाने पहुँच जाता। वहाँ संत कबूतरों को दाना डालते। फिर घोड़े को एक ऐड़ लगाते, घोड़ा वहाँ से खाना होकर मंदिर पहुँच जाता। वहाँ संत पूजा करते और बाहर निकल कर घोड़े को ऐड़ लगाते, तो वह संत की कुटिया पहुँच जाता। इतना बढ़िया घोड़ा। इस घोड़े की ख्याति पड़ोसी राजा

तक पहुँची। उनके मन में घोड़े को अपने कब्जे में करने का विचार आया। राजा ने अपने विश्वस्त अनुचर को उस घोड़े को लाने का काम सौंप दिया। अनुचर ने घोड़े की गतिविधियों पर छिप कर नज़र रखी। एक दिन मौका देखकर वह घोड़ा ले उड़ा। घोड़ा वहाँ से कबूतरखाने पहुँचा। चोर ने उसे रुका देखकर घोड़े के ऐड़ लगाई। घोड़ा वहाँ से खाना होकर मंदिर के आगे जा ठहरा। चोर ने फिर ऐड़ मारी। इस बार घोड़ा संत की कुटिया पर जा पहुँचा। संत ने अपने घोड़े को देखा, तो तत्काल बाहर आए। उन्हें देखकर चोर भाग गया। इसके बाद वह घोड़ा जिनदास जी के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

हम अपने मन रूपी घोड़े को इसी तरह प्रशिक्षित कर लें तो हमारी ऐड़ पर वह वहीं जाकर रुकेगा, जहाँ के लिए उसे तैयार किया गया होगा।

गुरु के इशारे को जो समझे, वही सच्चा शिष्य। इसी तरह मन जिसके इशारे पर चले, वह मन का मालिक। एक तो वह आदमी होता है जो इशारे से समझ जाता है और दूसरा वह होता है जिसे समझा दिया जाए, तो उसे समझ में आ जाता है; लेकिन तीसरे ऐसे भी होते हैं जो समझाने पर भी नहीं समझ पाते। ऐसे आदमी की इंद्रियों के घोड़े अनियंत्रित हो जाया करते हैं। हमारे विचार भी इसी तरह के होते हैं। हर घोड़ा तो जिनदास जी का घोड़ा हो नहीं हो सकता, सभी इंद्रियाँ तो महावीर की इंद्रियों जैसी हो नहीं सकतीं, हरेक का मन तो बुद्ध का मन हो नहीं सकता। लेकिन निराश होने की भी आवश्यकता नहीं है। प्रयास जारी रखें, पुनः पुनः मन पर बुद्धि का अंकुश लगाने की कोशिश जारी रखें। जैसे-जैसे हमारी समझ बढ़ेगी, हमारी अंतर्दृष्टि बढ़ती जाएगी। मन पर हमारा नियंत्रण होता चला जाएगा।

मन का पहला गुण-धर्म है विचार। दूसरा गुण-धर्म है वासना। दुनिया में इससे कोई नहीं बचा। दुनिया में प्राणी मात्र में वासना समाहित है। विचार से ज्ञान-विज्ञान का जन्म होता है और वासना से संसार का सृजन होता है। याद रखो, अपनी वासना पर नियंत्रण सबसे कठिन काम है। किसी भी व्यक्ति के लिए धन-सम्पत्ति को छोड़ना आसान हो सकता है, लेकिन वासना से मुक्ति आसान नहीं है। जो केवल हवा और पत्तों पर निर्भर रहकर तप करते थे, वे ऋषि पाराशर और विश्वामित्र भी पतित हो गए थे। हमारी तो बिसात ही क्या है? विश्वामित्र की तपस्या को मेनका ने भंग कर दिया था। मन के विकृत रूप, वासना के विकृत रूप ही हमें बार-बार जन्म लेने को मजबूर करते हैं। वासना का अपना महत्त्व है लेकिन उतना ही, जब तक वह सृजन के लिए हो। भोग के लिए वासना के दलदल में उतरने वालों को व्यभिचारी कहा जा सकता है। ऐसे लोग वेश्यागामी हो जाया करते हैं। उलटे काम करने लगते हैं।

वासना भी मन का उद्वेग ही तो है। वासना में भी ऊर्जा खर्च होती है। वासना के दौरान जगने वाली ऊर्जा अनियंत्रित हो जाए, तो व्यक्ति को अंधा बना दिया करती है। दुनिया में सबसे बड़ा अंधा कौन है? वह जो जन्म से अंधा है या काम का अंधा है? काम में जो लिप्त है, उससे बड़ा अंधा कोई नहीं हो सकता। कामांध प्राणी जन्मांध से भी बड़ा अंधा होता है। वासना व्यक्ति के जीवन में नकारात्मक नहीं है, लेकिन तब ही तक, जब तक वह अनियंत्रित नहीं होती। सृष्टि के संचालन को गति देने के लिए वासना का उपयोग करेंगे, तो इसे कतई अनुचित नहीं कहा जा सकता, लेकिन कोई भोग को ही जिंदगी बना ले, तो उसकी वासना उसके लिए दुखदायी बन जाया करती है।

सुकरात ने उनके पास पहुँचे एक युवक से यही तो कहा था कि भोग जीवन में एक बार किया जाए तो पर्याप्त है, लेकिन युवक की जिज्ञासा शांत नहीं हुई। उसने पूछा कि एक बार से मन न भरे तो भोग जीवन में कितनी बार किया जा सकता है? सुकरात ने उसे जीवन में दो बार या वर्ष में एक बार अथवा माह में एक बार भोग की सलाह दी; लेकिन युवक को संतोष न हुआ। उसने फिर सवाल पूछ लिया। इस बार सुकरात का जवाब था कि सिर पर कफ़न बाँध लो, फिर चाहे जितनी बार भोग करो।

वाकई इंसान वासना का पुतला बन चुका है। वासना उसके रग-रग में समा चुकी है। वह उससे उपरत नहीं हो पा रहा। हमारी शिक्षा-पद्धति भी ऐसी हो गई है कि भोग कम करने का संदेश नहीं देती। आजकल हर तरफ भोग को, वासना को बढ़ाने के सामान बढ़ते जा रहे हैं। फिल्मों और टीवी धारावाहिकों में दिखाए जाने वाले अश्लील दृश्य हमारे मन-मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव डाल रहे हैं। लोग अब शुद्धि की तरफ नहीं जा रहे। काम-वासना हमारे जीवन से इस तरह चिपट गई हैं जैसे कोई जोंक चिपट जाया करती है। मन को शुद्ध नहीं कर पा रहे हैं इसीलिए घर में बहन भी सुरक्षित नहीं है, पड़ोसन सुरक्षित नहीं है। घरों में दीवारों के पीछे होने वाला व्यभिचार हमें कहाँ ले जाएगा? वासना सात्विकता में कैसे बदले - यह बताने वाला भी कोई नहीं है। बड़े-बड़े ज्ञानी भी वासना की चपेट में आ चुके हैं, आम आदमी की बात तो छोड़ ही दें। जो स्वयं के नियंत्रण में रह पाता है, वही इंसान सच्चा इंसान कहलाने का अधिकारी है।

मनुष्य के मन की तीसरी स्थिति है भावना। प्रेम, करुणा, दया, भाईचारा - ये सब हमारी भावनाएँ हैं। जब कोई हमारे सामने निमित्त बनकर आता है, तो हमारे भीतर जिस तत्त्व का उदय होता है, वही भावना कहलाता है। किसी को परेशान देखकर उसके प्रति हमारे मन में करुणा, दया जगती है। हम रास्ते पर जाते समय किसी जानवर को



घायलावस्था में तड़पता देखते हैं, तो उसे अस्पताल ले जाते हैं, उसका इलाज कराने का प्रयास करते हैं। यह क्या है? इसी को ही तो भावना कहते हैं। दुनिया में हर किसी को प्रेम करना आना ही चाहिए। वे लोग दुराग्रह बुद्धि के हुआ करते हैं, जो प्रेम का विरोध करते हैं। लोगों ने प्रेम का केवल नकारात्मक अर्थ निकाल लिया है। प्रेम तो एक महान् धर्म है, प्रार्थना है, सद्गुण है। व्रत, तपस्या, सब में प्रेम समाया है। लेकिन मनुष्य प्रेम को वासना के द्वार पर लाकर छोड़ देता है और तब प्रेम उसके लिए घातक बन जाया करता है। प्रेम लेना नहीं देना जानता है। प्रेम का नाम है - कुर्बानी, फिर चाहे वह ईश्वर के प्रति हो या इंसान के प्रति। प्रेम करने वाला यह नहीं देख पाता कि प्रतिफल में क्या मिलेगा? वह तो जिससे प्रेम करता है, उस पर अपना सब-कुछ लुटाने को तत्पर हो जाया करता है।

एक व्यक्ति संत के पास पहुँचा और उनसे कहने लगा, 'मैं प्रभु को प्राप्त करना चाहता हूँ, मुझे क्या करना चाहिए?' संत ने कहा, 'तुम प्रेम करो, अपने-आप प्रभु के पास पहुँच जाओगे।' उसने फिर पूछा, 'किसे प्रेम करूँ?' संत ने कहा, 'सबसे प्रेम करो लेकिन याद रखना, जब तक अपने-आप से प्रेम नहीं करोगे, दूसरों से किया गया प्रेम निरर्थक होगा।' खुद से प्रेम करो और फिर दूसरों से भी प्रेम करना सीख लो। प्रभु से प्रेम करना सीख लिया, तो उसे पाने का रास्ता भी सूझ जाएगा। लेकिन इतना ध्यान रखना, प्रेम, प्रेम ही रहे, वासना न बन जाए; अन्यथा तुम्हारे लिए मुक्ति का मार्ग नहीं खुल पाएगा। प्रेम करने के लिए भावना की जरूरत होती है, इसलिए भावना पर जोर दिया गया। मनुष्य भावों के आधार पर पार लग जाया करता है - जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूर्त देखी तिन तैसी।

हमारी भावना जैसी होगी, उसी तरह पार उतरने के रास्ते मिल पाएँगे। मंदिर में जाएँ तो वहाँ माँ दुर्गा की प्रतिमा में हमें वहीं दिखाई देगा, जैसी हमारी भावना होगी। हमारे मन में काम या वासना की भावना है तो हमें दुर्गा माँ की प्रतिमा भी किसी नवयुवती की प्रतिमा दिखेगी। हम उसमें भी वे चीजें तलाशने लगेंगे, जो वासना का निमित्त बनती हैं। अपनी पड़ोसिन में भी माँ दुर्गा को देखें, तो उसके प्रति हमारे मन में सम्मान की भावना पैदा होगी। भावना ऐसी ही होती है। जैसे मन में विचार, वैसी भावना। जीवन में हर चीज के दो पहलू होते हैं - सद्भाव और दुर्भाव। मन की इंद्रियों को साध लेंगे, तो वे अच्छी राह दिखाएँगी और इंद्रियों ने हमको साध लिया, तो वे हमें गलत रास्तों पर ले जाएँगी।

भारत के राष्ट्रपति रहे एपीजे अब्दुल कलाम ने विवाह नहीं किया। वे हमेशा कुछ-न-कुछ नया करते ही रहते हैं। फालतू मन वासना की तरफ मुड़ जाता है। कभी

चोरी करने की सोचेगा, तो कभी वासना के दलदल में उतरने के बारे में विचार करेगा। व्यस्त रहेगा, तो बेकार के काम नहीं करेगा। यदि तुम दुःखों से मुक्त रहना चाहते हो, तो अपने-आप को हमेशा व्यस्त रहो।

एकांत सुखदायी है तो दुःखदायी भी। व्यक्ति के भीतर निरंतर भावनाओं का उद्वेग उठता रहता है। इसलिए बुद्धि रूपी सारथी की रूरत होती है। कठोपनिषद् जैसा शास्त्र पढ़ें, तो चिंतन-मनन होने लगता है। ऐसा ज्ञान प्राप्त करने की भूख भीतर जग जाए, तो हमारा सारथी भी परिपक्व होता रहेगा। मन तब तक ही हमारे लिए ठीक है, जब तक उस पर हमारा नियंत्रण रहे। मन जिसे अच्छा कहे, उस काम को करें और मन जिसे गलत बताए, उसे छोड़े दें लेकिन मन पर अपना नियंत्रण रूरी है। संयमित मन ही जीवन का संन्यास है। मन आपसे अच्छा काम भी करवा सकता है और बुरा काम भी। मन में बंधन और मोक्ष - दोनों की ताकत है।

चौथा चरण है - संकल्प। जीवन में मजबूत संकल्प करने वालों को ही श्रम करने की प्रेरणा मिलती है। संकल्प मजबूत है, तो समझिए आदमी मजबूत है। जिसके संकल्प कमजोर हैं, तो वह आदमी भीतर से भी कमजोर होगा। परमात्मा को ढूँढ़ने, उनसे बात करने से पहले अपने संकल्पों को मजबूत करो। हर नए साल के पहले दिन हर कोई संकल्प तो कर लेता है लेकिन उनमें से कोई-कोई ही निकलता है, जो अपने संकल्पों पर खरा उतर कर दिखाता है। ऐसे लोगों का संकल्प करने का कोई अर्थ नहीं है। यह मन की कमजोरी है। मन किसी भी मनुष्य के लिए ऊर्जा का काम करता है। मन मजबूत है, तो संकल्प भी मजबूत होगा। मजबूती का मतलब कठोरता नहीं होना चाहिए। फूल की तरह कोमलता भी जीवन में होनी चाहिए। जहाँ जैसी ज़रूरत हो, वहाँ वैसी कोमलता और कठोरता का प्रदर्शन हो जाना चाहिए। आदमी का मनोबल वज्र की तरह मजबूत होना चाहिए। आत्म-विश्वास मजबूत होना चाहिए। आदमी को संकल्प तब ही लेना चाहिए, जब उसके मन में उन संकल्पों को पूरा करने की हिम्मत हो। या तो संकल्प करो मत और संकल्प कर लो, तो उसे मरकर भी पूरा करो। किसी की रोटी तब ही खानी चाहिए, जब हम बदले में उसे कुछ देने की व्यवस्था रखते हों। किसी के यहाँ भोजन करके आओ, तो इतना ख्याल रखना कि तुम पर उसके अन्न का ऋण न चढ़े। किसी का नमक खाओ, तो उसे चुकाने का हौसला रखना। आप किसी से लेते ही रहोगे, तो देने वाला तो दे-दे कर तिर जाएगा लेकिन आप ले-लेकर कहाँ जाएँगे? संत पहले जंगलों में रहते थे, कंदमूल खाकर काम चलाते थे। अब शहरों में रहने वाले संत गृहस्थी के व्यंजनों का स्वाद लेने चले जाते हैं। खिलाने वाला तो आपको खिलाकर पुण्य कमा लेगा, लेकिन आप उस ऋण को कहाँ उतारेंगे?

एक सम्राट की कहानी मशहूर है। एक बार वह युद्ध करते समय जंगल में भटक गया। दुश्मनों से बचते-बचाते वह एक झोंपड़े तक पहुँचा। वहाँ एक बुढ़िया रहती थी। उसने भूखे-प्यासे सम्राट के लिए भोजन बनाया। सम्राट वहाँ दो दिन तक छिपा रहा, तीसरे दिन उसके सैनिकों ने उसे ढूँढ़ लिया, तो सम्राट अपने महल चला गया। महल में पहुँचते ही उसने आदेश जारी किया कि जंगल में उस बुढ़िया का झोंपड़ा गिरा दिया जाए और वहाँ एक पक्का मकान बना दिया जाए। सम्राट उस झोंपड़े में ढाई दिन तक रहे थे इसलिए उसके मकान को ढाई दिन का झोंपड़ा नाम दिया गया। इसे कहते हैं, किसी का ऋण चुकाना।

अपने संकल्प मजबूत कर लोге, तो मौत भी आएगी तब भी परवाह नहीं रहेगी। मृत्युदेव के समक्ष घबराने की आवश्यकता नहीं है। उनके संदेश तो हमारे जीवन को सार्थक परिणाम देते रहेंगे। चौबीस घंटों में जितना समय सार्थक काम में खर्च करते हो, उतने घंटे ही तुम्हारा वास्तविक जीवन कहलाएगा। हर दिन अपने कार्यों का मूल्यांकन करते रहें। अपनी आलोचना खुद करें। मन के व्यवहार सही रास्ते पर होंगे, तो व्यक्ति को महावीर और गांधी बना देंगे और गलत रास्ते पर चलेंगे, तो शैतान को जन्म दे देंगे। इंसान तब गिरता चला जाएगा। मन अहिंसावादी होगा, तो जीवन को सुधार लेंगे और मन आतंकवादी होगा तो जीवन को सही दिशा नहीं दे पाएगा। मन तब मनुष्य को हिंसा के रास्ते पर ले जाएगा। हम मन को सही दिशा दें, मत-मजहब को किनारे रखें, मन को सुधारें। मन ही सबसे बड़ा मजहब है। मन अगर अंतर्मुखी है, तो मन ही मंदिर है; मन अगर बहिर्मुखी है तो मन ही बंदर है।

मन के अपने पागलपन हैं। मन नियंत्रण में न रहे तो तुरन्त गलत रास्तों की तरफ़ ताकने लगता है और उसे न रोका जाए, तो उन पर चल पड़ता है। सबके मन के अलग-अलग रोग हैं। चिंता, लोभ, अवसाद - ये मन ही पैदा करते हैं। मानसिक विकारों से गलत काम होते हैं और गलत कामों से चिंताएँ बढ़ती हैं। चिंताओं से शरीर का क्षरण होता है, मनुष्य का आत्म-विश्वास कमजोर होता है, संकल्प-शक्ति कमजोर होती है। अपने उज्वल भविष्य के लिए मन पर नियंत्रण करें।

मन की दुरावस्थाओं में एक है लोभ। इससे दूसरी बीमारियों का रास्ता खुल जाता है। लोभ को पाप का बाप कहा गया है। पाप से बचने का सीधा-सा रास्ता है, जीवन में लोभ को प्रवेश ही न करने दो। लोभ की तरह ही गुस्सा भी दूसरों के

कारण नहीं होता। गुस्सा व्यक्ति के स्वयं के ही भीतर होता है। इसी गुस्से को तो जीतना है। गुस्से को तब ही जीत पाएँगे, जब जीवन में त्याग को महत्त्व देंगे, लालसाओं को कम करेंगे। कहा भी गया है - 'तेन त्यक्तेन भुञ्जिताः।' वस्तुओं का उपयोग त्याग-भाव से करो, अनासक्त-भाव से करो। किसी भी चीज को काम में लो, जीवन के लिए यह जरूरी है, लेकिन उसके प्रति आसक्ति का भाव मत रखो। आसक्ति ही वासना है। वासना के हजार रूप हैं। ऐषणाएँ मनुष्य को जीने नहीं देतीं। एक पूरी होती है, तो दूसरी सिर उठा लेती है। वासना केवल भोग से ही नहीं जुड़ी है, वासना का मतलब है : आसक्तिपूर्ण व्यापार। वासना शरीर के ही प्रति नहीं होती। वासना खाने की, पहनने की, अच्छा दिखने की, कुछ भी हो सकती है। नशे की वासना सबसे बुरी है। हेरोइन या चरस की लत लग जाए, तो आदमी यह नशा न मिलने पर तड़पने लगता है। नशा पाने के लिए पत्नी के गहने तक बेचने को तैयार हो जाता है, घर बेच देता है। फिर सड़क पर आ जाता है और तिल-तिल कर मरता है।

अगर हमारा मन हमारे नियंत्रण में नहीं रहता, तो हमें अपने नियंत्रण में ले लेता है। प्रश्न है - यह मन किससे नियंत्रित होता है? यमराज कहते हैं, इस मन को विवेकयुक्त बुद्धिवाला, संयमित चित्त वाला ही नियंत्रित कर सकता है। ये दो गुण मन को सही रास्ते पर ला सकते हैं। व्यक्ति के जीवन की तमाम उठापटक को देखने, समझने से यही निष्कर्ष निकलता है कि विवेक ही हमारा गुरु है। विवेक हमारी अंतर्दृष्टि है। विवेक हमें प्रकाश देता है, हमारा सद्गुरु है। यह ऐसा गुरु है, जो हमें ज्ञान की दृष्टि से परिपक्व बनाता है। विवेक और संयम, मन और वाणी पर संयम -ये दो बिन्दु हमारे लिए हमारी दो आँखों की तरह काम करते हैं। हम इनसे अपने मन को संस्कारित कर सकते हैं। मन में जैसे ही गलत भाव उठे, बुद्धि रूपी सारथी तत्काल अंकुश लगा दे, 'नहीं, मुझे यह काम नहीं करना; यह गलत है।'

मन के कई रोग हैं। इन रोगों का समय रहते इलाज हो जाना चाहिए। चिंता, भावुकता में खुद को न फँसने दें। वासना और भावुकता ऐसे रोग हैं, जो व्यक्ति को आसानी से अपने चंगुल में ले लेते हैं। इनसे बचने के लिए ही मन को मजबूत करने की आवश्यकता है। भावुक होना अच्छी बात है, लेकिन भावुकता में पिघल नहीं जाना है, विवेक रखना है। इसी तरह क्रोध भी रोग है। क्रोध करते समय सोचें, क्यों क्रोध कर रहा हूँ, इससे मुझे क्या लाभ होने वाला है? क्रोध का

दुष्प्रभाव क्या हो सकता है? अपने आपसे प्रश्न करेंगे, तो जवाब भी सही मिलेंगे; दिल से जवाब मिलेंगे। जवाब मिलेगा कि क्रोध करने से कोई लाभ नहीं है तो क्रोध करूँ ही क्यों? बस, आप क्रोध करने से बच जाएँगे।

मन पर विवेक रूपी सारथी का अंकुश रहेगा, तो हम अपने दुर्गुणों पर अंकुश लगा पाएँगे। बार-बार अपना मूल्यांकन करते रहें। रोज-रोज मंदिर जा रहे हो, परिणाम नहीं मिल रहा, तो विचार करो, कहाँ चूक हो रही है? मन की कौन-सी गतिविधि सही नहीं हो रही? निरंतर मूल्यांकन से जीवन को सही रास्ते पर लाने में मदद मिलती है। कोई भी काम कर रहे हैं और उसका परिणाम क्या निकल रहा है- इस पर भी विचार करते रहें। हम मन के राजा कैसे बन सकते हैं, इस पर भी विचार करते रहें।

एक व्यक्ति गुरु के पास गया। उनसे पूछने लगा, 'गुरुजी, मन को शुद्ध करना है, कैसे करूँ?' मन की शुद्धि, आत्म-शुद्धि की बात सुनकर गुरु हँस पड़े। उन्होंने कहा, 'जा मैं तुझे आशीर्वाद देता हूँ, तू अंधा हो जा, बहरा हो जा, गूंगा हो जा, तेरा मन शुद्ध हो जाएगा।' शिष्य ने पूछ लिया, 'ये आपने कैसा आशीर्वाद दिया, ये तो श्राप हैं।' गुरु ने उसे समझाया, 'भले आदमी इस श्राप में ही तेरे लिए आशीर्वाद छिपा है। तू अंधा हो जा, इसका अर्थ यह है कि पराई नारी को मत देख। बहरा हो जा, इसका अर्थ है, दूसरों की बुराई मत सुन, अपनी प्रशंसा मत सुन। गूंगा हो जा, इसका अर्थ यह है कि किसी को बुरा मत बोल। इन तीनों बातों पर अमल कर लेगा, तो तेरा मन शुद्ध हो जाएगा। तेरे चित्त की चिंताएँ दूर हो जाएँगी। तेरे भीतर अहंकार को सिर उठाने का अवसर नहीं मिलेगा। मन के विकारों पर विजय पा लेंगे, तो मृत्यु आएगी तब भी हमें कोई परेशानी नहीं होगी। हम यही कहेंगे-मृत्यु आओ, तुम्हारा स्वागत है।' मन की ये तमाम दशाएँ हमें जीवन को सफल बनाने में मदद करेंगी।



# 21

## कठोपनिषद् का सार-संक्षेप

**बी**स दिन से हम लोग कठोपनिषद् की अध्यात्म गंगा में उतरते रहे हैं, आनन्द लेते रहे हैं। हमने न केवल अध्यात्म की गंगा में उतरने का प्रयत्न किया और इसका आनन्द लिया, अपितु जी-भर डुबकियाँ लगाते हुए स्नान भी किया है और इस गंगा का गंगोदक की तरह आचमन भी किया है। मैं सभी का हृदय से आभारी हूँ। आप सभी का अभिनन्दन करता हूँ कि आप सभी ने दत्त चित्त होकर कठोपनिषद् के सूत्र-दर-सूत्र ज्ञान को इस तरह पीने का प्रयास किया मानो ये सूत्र नहीं, कोई महामंत्र हों। महान् शास्त्रों की बातें किसी महामंत्र की तरह ही हुआ करती हैं। जिस प्रकार मंत्र अपनी चमत्कारिक शक्तियों द्वारा उसका उच्चारण या जाप करने वाले का भला किया करते हैं, उसी तरह महान् शास्त्रों की बातें इंसान के कल्याण के लिए ही हुआ करती हैं।

दुनिया में किताबें अनगिनत हैं। किताबें मनुष्य की सबसे अच्छी दोस्त हुआ करती हैं। परन्तु हम कठोपनिषद् की बात करें, तो यह सारी किताबों की किताब है। इसमें दिया गया हर सूत्र अध्यात्म रूपी खजाने की चाबी है, अध्यात्म की कुंजी है। जब भी कठोपनिषद् जैसे शास्त्रों की चर्चा करते हैं, तो केवल वह किताब नहीं होती। उसमें जिन महापुरुषों की चर्चा की गई है, वे हमारे सामने साकार हो जाया करते हैं। रामायण पढ़ते हैं, तो उसके पात्र हमारी आँखों के सामने आ खड़े होते हैं, हमसे आत्म-संवाद करने लगते हैं। गीता पढ़ते हैं, तो साक्षात् कृष्ण और अर्जुन हमारे समक्ष आ जाते हैं। मानो कृष्ण हम सब अर्जुनों को जीवन के कल्याण के लिए, संघर्षों पर विजय पाने के लिए हमारा उत्साहवर्द्धन कर रहे हैं। हमारी श्वास-श्वास में विश्वास भर रहे हैं।

हम जब आगम पढ़ते हैं, तो स्वयं महावीर और धम्मपद पढ़ते हैं, तो स्वयं बुद्ध सामने उपस्थित हो जाते हैं। ये सभी मानो कुछ ऐसी बातें कह रहे हैं जिनसे हमारी मूर्च्छित चेतना जागृत हो सके। हम जब कठोपनिषद् पढ़ते हैं और इसके सूत्रों के भीतर

उतरते हैं, तो लगता है स्वयं मृत्युदेव यमराज हमारे सामने उपस्थित होकर हमारे कल्याण की बातें हमें बता रहे हैं। कठोपनिषद् में मृत्युदेव के संदेश हैं। जीव के बारे में, मृत्यु के बारे में जितना बारीक और गहन ज्ञान यमराज को है, और किसी को नहीं हो सकता। स्वयं देवताओं को आत्म-तत्त्व जानना हो, तो बरसों बरस तक समाधि लगानी पड़ती होगी, लेकिन मृत्युदेव तो पलक झपकते आते हैं और हृदय के भीतर रहने वाले आत्म-तत्त्व को लेकर चले जाते हैं। जिस प्रकार कोई बाज किसी चिड़िया पर झपटता है और उसे चोंच में दबा कर फुर्र हो जाता है, उसी तरह यमराज का आना और जाना होता है। यह पलक झपकने जितनी कहानी है। आप सोचते होंगे कि यमराज किसी काले भैंसे पर सवार होकर आते होंगे। यह सिर्फ हमारी खाम-खयाली है। मृत्यु भैंसे जैसी काली और डरावनी होती होगी; इसीलिए हमने इस तरह की कल्पनाएँ कर रखी हैं। लेकिन हमें मृत्यु से निडर हो जाना चाहिए। मृत्यु हमारे मित्र की तरह है। मृत्यु न हो, तो इस बूढ़ी काया को ढोना भारी हो जाएगा। जो व्यक्ति इस पृथ्वीग्रह पर आता है, उसे समय रहते वापस लौट जाना चाहिए। अमरता किस काम की। हर व्यक्ति एक अज्ञात लोक से पृथ्वी ग्रह पर आता है और वापस उसी अज्ञात लोक की ओर लौट जाता है। जीवन एक आँख-मिचौनी की तरह चलता है। बाकी जीवन की सनातन धारा को समझ लें, तो किसका जन्म है और किसकी मृत्यु? न जन्म है, न मृत्यु। जीवन एक शाश्वत धारा है। यह एक अमर तीर्थ-यात्रा है। मृत्युदेव हमें कठोपनिषद् में यही संदेश दे रहे हैं। मृत्युदेव तो हमें इस जर्जर काया से मुक्त कराने आते हैं। साँप से अगर केंचुली उतर जाएगी, तो इससे साँप का ही भला है।

जो लोग मृत्यु से डरते हैं, उन्हें समझ लेना चाहिए कि मृत्यु कभी डरावनी नहीं हो सकती। जो हमें इस दुनिया के मिथ्या जंजालों से मुक्त करती हो, वह भला डरावनी कैसे हो सकती है? मृत्यु तो हमें मुक्ति देती है। कठोपनिषद् तो यह कहता है कि मनुष्य को मृत्यु के आने से पहले अपने मोक्ष का प्रबंध-कर लेना चाहिए ताकि जन्म-मरण का चक्र तो छूटे। कठोपनिषद् तो मृत्युदेव को याद करने का एक बहाना है। कठोपनिषद् तो एक माध्यम है - मृत्यु से मुलाकात करने का। हम रामायण पढ़ेंगे, तो राम के करीब होंगे और कठोपनिषद् पढ़ेंगे, तो मृत्यु की सच्चाई के निकट होंगे। सच्चाई तो यह है कि हर किसी को जीवन और मृत्यु को हमेशा याद रखना चाहिए। तभी हमारे भीतर अनासक्ति का जन्म होगा।

पुराने संतों की कहानियाँ हमें बताती हैं कि जीवन में अनासक्ति कहाँ से आती हैं। एक आदमी को पता चलता है कि सात दिन बाद उसकी मृत्यु होने वाली है। वह विचलित हो जाता है, उसका मन किसी काम में नहीं लगता। वह एक संत के पास पहुँचता है। संत उसकी पीड़ा समझकर उसे कहते हैं, 'सात दिन बाद ही मरना है, तो

सब-कुछ छोड़कर प्रभु की प्रार्थना में समय लगा दो।' सात दिन बाद उसकी मृत्यु तो नहीं होती, लेकिन तब तक वह प्रभु के पथ का राही बन चुका होता है।

एक सज्जन ने पूछा, 'आप दिन भर में कई काम एक साथ कर लेते हैं, ऐसे में प्रभु को याद कब करते हैं?' मैंने उसे बताया, एक महिला पनघट से पानी भरकर कलश सिर पर रखकर घर लौटती है, तो रास्ते में कई काम एक साथ करती चलती है। वह अन्य महिलाओं से बतियाती भी है, अपने दुधमुँहे बच्चे को चलते-चलते दूध भी पिला देती है, रास्ते में सब्जी भी खरीद लेती है। इतने काम करते हुए भी उसका ध्यान पानी के कलश की तरफ से नहीं हटता। यह तो आत्म-बोध है। ठीक उसी तरह संत सब-कुछ करते हुए भी प्रभु की प्रार्थना भी कर लेते हैं। जो व्यक्ति जीवन में तृप्त हो चुका है, वह यदि मृत्यु की पदचाप भी सुन लेता है, तो विचलित नहीं होता। वह तब भी प्रभु की भक्ति में अपने को लीन रखने में सफल हो जाता है। उसके लिए मृत्यु जीवन का उपसंहार हो जाया करती है।

एक मुस्लिम फ़कीर की कहानी है। मुहम्मद सैय्यद एक बड़े संत थे। वे निर्वस्त्र रहते थे। पूरी तरह अपरिग्रही। सम्राट शाहजहाँ इन्हें बहुत मानता था। दारा शिकोह भी इनका भक्त था। वे कहा करते थे - मैं यहूदी भी हूँ, हिन्दू भी, मुसलमान भी। मस्जिद और मंदिर में लोग एक ही भगवान की उपासना करते हैं। जो काबे में संग-असवद है, वही दैर में बुत है।

सम्राट औरंगज़ेब दारा और सैय्यद साहब से चिढ़ता था। उसने उन्हें पकड़ मँगाया। मज़हबी मुल्लाओं ने उन्हें धर्मद्रोही घोषित कर सूली की सज़ा सुना दी, पर सैय्यद साहब को इससे बहुत खुशी हुई। वे तो सूली की बात सुनकर आनंद से उछल पड़े! सूली पर चढ़ते हुए वह बोले - 'आज का दिन मेरे लिए बड़े सौभाग्य का है। जो शरीर प्रियतम से मिलने में बाधक था, आज वह इस सूली की बदौलत छूट जाएगा।' सैय्यद साहब ने कहा - 'मेरे दोस्त, तू किसी भी रूप में क्यों न आ, मैं तुझे पहचानता हूँ। आज तू सूली के रूप में आया, मैं फूल के रूप में तुम्हारे पास आ रहा हूँ।'

जो लोग सूली में भी साहब को देखते हैं, उनकी तो बात ही निराली है। ऐसे लोग मृत्यु का स्वागत करते हैं। जो लोग देश की आज़ादी के नाम पर शहीद होते हैं। उनकी शहादत भी शीश को गौरवान्वित करती है। जिन्हें जीवन और मृत्यु की समझ है, वे कहते हैं - धन्य है मृत्यु तुम को, तुम आती हो और हमें पाप-मुक्त कर यहाँ से ले जाती हो। हमारे कल्याण में तुम सहयोगी बन जाती हो। मृत्यु हमारी मित्र है। वह शरीर से मुक्त कर हमें एक बाना, वेश दे दिया करती है जिसे कभी बदलने की इच्छा नहीं होती। कठोपनिषद् की इस इक्कीस दिन की यात्रा में हमने मृत्यु के कई रूप देखे और मेरा



विश्वास है कि हमारे भीतर निश्चित रूप से मृत्यु का खौफ कुछ सीमा तक कम हुआ ही होगा। हमारे भीतर निडरता बढ़ी होगी। अब मौत से बचने या डरने की कोई ज़रूरत नहीं रही होगी।

मृत्युदेव के संदेश पाकर हम इतना साहस तो अपने भीतर पैदा कर ही पाएँ होंगे कि अब मिटना पड़े तो तैयार हैं, खुद को मिटाना पड़े तो भी तैयार हैं। अब हम भयभीत नहीं, आत्म-विश्वासी जीवन के मालिक बनेंगे। सबके साथ रहेंगे, हँसेंगे, खिलेंगे, पर अनासक्त जीवन जीएँगे। निश्चित तौर पर कठोपनिषद् में मृत्युदेव के उपदेश हमारे भीतर उतरे होंगे। ये वे उपदेश हैं, जो केवल सुनकर दूसरे कान से नहीं निकल पाए। उपदेश वे महान् नहीं होते जिन्हें सुनकर लोग हमारी तारीफ़ करें; उपदेश तो वही सार्थक होते हैं, जो मनुष्य को भीतर से बदल दें, जिन्हें सुनने के बाद व्यक्ति सोचने के लिए मजबूर हो जाए। कठोपनिषद् एक महान् रहस्यमय शास्त्र है। मैंने भी इसे पिया है। इसने केवल आपको ही नहीं, मुझे भी आनंद दिया है। ऐसे शास्त्र या ऐसी किताबें कम मिलती हैं। इस आध्यात्मिक किताब के जरिए एक-दो समाधान तो मेरे भी हुए हैं। इसलिए मैं भी कठोपनिषद् का आभारी हूँ। हालाँकि कठोपनिषद् शब्द को सुनकर लगता है कि यह कोई कठिन उपनिषद् होगा, पर यह वास्तव में कठिन नहीं, आनंददायी शास्त्र है, अध्यात्म का शास्त्र है। यह शास्त्र सबका कल्याण करे, अध्यात्म-प्रेमियों के लिए अमृत का काम करे - यही शुभकामना है।





# मृत्यु से मुलाकात

जीवन की पूरी मुलाकात केवल जीवन के तल पर  
नहीं होती। पूरी मुलाकात के लिए हमें मृत्यु से भी  
मुलाकात करनी होगी। मृत्यु जीवन का उपलंहाल है।  
लोग मृत्यु का नाम सुनते ही घबराते हैं।  
कठोपनिषद आफ तौल पर मृत्यु से मुलाकात है।  
मृत्यु से अगल एक बार अही तौल पर मुलाकात हो जाए  
तो शेष बचे जीवन को जीने का मजा ही कुछ और होगा।  
तब हम मृष्य को नहीं, चिन्मय को लिएंगे।  
मिट्टी को नहीं फूलों को और फूलों की सुवाज को लिएंगे।



श्री चन्द्रप्रभ

9473 E

ISBN10:81-223-1227-6  
ISBN978-81-223-1227-0



9 788122 312270

₹ 100/-



**पुस्तक महल®**

दिल्ली • मुंबई • बेंगलुरु • पटना • हैदराबाद  
[www.pustakmahal.com](http://www.pustakmahal.com)